विविध प्रसंग
१

१

संकलन और
रूपांतर
अमृतराय

हंस प्रकाशन
इलाहाबाद

भूमिका

सब जानते हैं, प्रेमचंद ने अपने साहित्यिक जीवन का आरंभ उर्दू से किया था। बरसों केवल उर्दू में लिखते रहने के बाद वह हिन्दी की तरफ़ आये। उपन्यास और कहानियाँ तो लिखीं ही, साहित्य, संस्कृति, समाज, राजनीति से संबंध रखनेवाले विविध प्रसंगों पर ढेरों लेख भी लिखे। इस प्रकार के लेखन का उनका क्रम आजीवन चला और मुंशीजी के पूर्ण साहित्यिक व्यक्तित्व और देन को समझने के लिए उसका महत्व मुंशीजी के कथा-साहित्य से अणुमात्र कम नहीं है।

इस ख़ज़ाने की तरफ़ अब तक किसी का ध्यान नहीं गया था, और शायद इन पंक्तियों के लेखक का भी न जाता अगर मुंशीजी की प्रामाणिक जीवनी लिखने के तक़ाज़े ने उसे मजबूर न किया होता कि वह उन सब चीज़ों की छान-बीन करे जो-जो मुंशीजी ने जब-जब और जहाँ-जहाँ लिखीं। पुरातत्व-विभाग की इसी खुदाई में यह दफ़ीना हाथ लग गया!

यह लगभग सोलह सौ पृष्ठों की सामग्री है जो 'विविध प्रसंग' के तीन खण्डों में दी जा रही है।

पहले खण्ड में १९०३ से लेकर १९२० तक के लेख और समीक्षाएँ हैं, काल-अनुक्रम से। 'तुर्की में वैधानिक राज्य' शीर्षक लेख भूल से ग़लत जगह पर लग गया है।

दूसरे और तीसरे खण्ड में १९२१ से लेकर १९३६ तक के लेख, टिप्पणियाँ और समीक्षाएँ हैं जिनको 'राष्ट्रीय राजनीति' 'अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति' 'हिन्दू-मुसलमान' 'छूत-अछूत' 'किसान-मजूर' 'साहित्य-दर्शन' 'धर्म-समाज' 'महिला-जगत्' 'समीक्षाएँ' 'श्रद्धांजलियाँ' आदि शीर्षकों के अन्तर्गत विषय-क्रम से प्रस्तुत करना अधिक सार्थक जान पड़ा।

छोटी टिप्पणियों को भी हमने वही स्थान दिया है जो बड़े लेखों को, सिर्फ़ इसलिए नहीं कि मुंशीजी ने उन्हें लिखा है बल्कि इसलिए कि वह देखने में चाहे जितनी छोटी हों पर घाव गहरा करती हैं। अपने उस छोटे-से कलेवर में भी उनका वक्तव्य स्पष्ट है, महत्वपूर्ण है और उनकी उपेक्षा नहीं की जा सकती।

समीक्षाएँ कुछ छोड़ दी गयी हैं। जो दी जा रही हैं, उनमें दो प्रकार की समीक्षाएँ हैं। कुछ तो बहुत जानी-मानी पुस्तकों की समीक्षाएँ हैं। उनके संबंध में कुछ कहने की जरूरत नहीं है। कुछ अज्ञात-सी पुस्तकों की समीक्षाएँ हैं। उनको देना इसलिए जरूरी समझा गया कि उन पुस्तकों को निमित्त बनाकर मुंशीजी ने अपनी कोई बात कहनी चाही है।

'विविध प्रसंग' के पहले खण्ड में अधिकांश लेख उर्दू के प्रसिद्ध पत्र 'जमाना' से लिये गये हैं जिससे मुंशीजी का आजीवन बहुत आत्मीय संबंध रहा। 'जमाना' की पूरी फ़ाइल किसी एक जगह नहीं मिल सकी—'जमाना' के अपने घर में भी नहीं। इस कमी को लखनऊ विश्वविद्यालय और अलीगढ़ विश्वविद्यालय के संग्रहों से काफ़ी हद तक पूरा कर लिया गया है, तो भी कुछ अंक छूट गये जो शायद आगे कभी मिलें। इस खोज में मुझे उर्दू के प्रसिद्ध आलोचक प्रोफ़ेसर एहतेशाम हुसेन, जो सम्प्रति प्रयाग विश्वविद्यालय में उर्दू विभाग के अध्यक्ष हैं, और डाक्टर क़मर रईस से, जिन्होंने प्रेमचंद के उपन्यासों पर काम करके डाक्टरेट ली है और जो इन दिनों दिल्ली विश्वविद्यालय में उर्दू के अध्यापक हैं, बहुत मदद मिली है और मैं हृदय से उनका आभारी हूँ।

इस अवधि में मुंशीजी ने 'जमाना' के अलावा और भी अनेक उर्दू पत्रों में, जैसे मौलाना मुहम्मद अली के 'हमदर्द', और 'इम्तयाज अली ताज' के 'कहकशाँ' 'जमाना' आफ़िस से ही निकलनेवाले सप्ताहिक 'आजाद' और चकबस्त के मासिक पत्र 'सुबहे उम्मीद' में काफ़ी नियमित रूप से लिखा। दुर्भाग्यवश अब तक उनकी और दूसरे अनेक उर्दू पत्रों की फ़ाइलें नहीं मिल सकी हैं जिनको देखना बिल्कुल जरूरी है क्योंकि उनमें कहानियों के साथ-साथ यदा-कदा कुछ लेख होने की भी पूरी संभावना है। बहरहाल, उर्दू पत्रों की तलाश और छानबीन का यह काम लंबा है और काफ़ी दिनों तक चलते रहना होगा।

'रफ़्तारे जमाना' के नाम से एक स्थायी स्तंभ मुंशीजी ने 'जमाना' में बहुत अर्से तक लिखा, लेकिन बदक़िस्मती से उस पर मुंशीजी का नाम नहीं जाता था और कब से कब तक यह स्तंभ उनके हाथ में रहा, इसका भी कहीं कोई संकेत नहीं मिलता। १९३८ में जब 'जमाना' का प्रेमचंद-स्मृति अंक निकला था, तभी जमाना-संपादक मुंशी दयानरायन निगम के लिए यह बतलाना असंभव हो गया था कि प्रेमचंद के लिखे हुए 'रफ़्तारे जमाना' के कालम कौन-से हैं, अब तो इसकी पड़ताल का कोई सवाल ही नहीं उठता। असहयोग के दिनों में, नौकरी छोड़ने के ठीक पहले, मुंशीजी ने तालीमी नान-कोआपरेशन पर एक लेख लिखा था पर वह अब तक कहीं मिला नहीं।

उर्दू के इन सब लेखों को ज्यों का त्यों छाप देना हिन्दी पाठकों के लिए बहुत कठिनाई उपस्थित करता इसलिए उनका हिन्दी रूपान्तर जरूरी हो गया।

हाँ, रूपान्तर करते समय इस बात का विशेष ध्यान रखा गया है कि मुंशीजी की भाषा और शैली की पूरी तरह रक्षा हो और केवल ऐसे ही शब्द और वाक्यांश बदले जायँ जिनको बदले बिना काम न चलता हो ।

'विविध प्रसंग' के दूसरे और तीसरे खण्डों में मूल हिन्दी सामग्री है। कुछ फुटकर लेख और टिप्पणियाँ और समीक्षाएँ माधुरी, चाँद, मर्यादा, स्वदेश आदि पत्रों से ली गयी हैं (जिसका संकेत भी लेख के अंत में दे दिया गया है) लेकिन अधिकांश सामग्री 'हंस' और 'जागरण' से संकलित है। मासिक पत्र होने के नाते, 'हंस' से ली गयी सामग्री के अंत में केवल महीना और सन मिलेगा, 'जागरण' साप्ताहिक था, उसमें तारीख़ भी मौजूद है ।

'हंस' और 'जागरण' की इस सामग्री के लिए मैं पंडित विनोद शंकर व्यास का अनन्य आभारी हूँ जिन्होंने अपनी जतन से रखी हुई फ़ाइलें मुझे सौंपकर इस कार्य को संभव बनाया । जहाँ तक मैं जानता हूँ, 'हंस' और 'जागरण' की पूरी फ़ाइल, विशेषतः 'जागरण' की, और कहीं भी उपलब्ध नहीं है ! उनके सौहार्द और सहयोग से ही प्रेमचंद का यह तेजस्वी पत्रकार का रूप हिन्दी संसार के सामने प्रस्तुत करना संभव हो रहा है ।

इस लंबे शोध-कार्य में, जिसका सूत्रपात जीवनी लेखन से हुआ, भाई महादेव साहा की निरंतर प्रेरणा का मैं कितना ऋणी हूँ, इसकी स्वीकृति शब्दों से नहीं, मौन से ही की जा सकती है ।

भाई श्रीनाथ पाण्डेय ने कुछ लेख कलकत्ते से ढूंढ़कर भेजे । मैं उनका आभारी हूँ ।

दूसरे भी कई मित्रों का मुक्त सहयोग मुझे इस कार्य में मिला है । उन सबके प्रति मैं अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ ।

अमृत राय

क्रम

★

वि
वि ध
प्र
सं ग

ओलिवर क्रामवेल

यह दुनिया एक थिएटर है जहाँ ऐक्ट करनेवाले तो बहुत कम और तमाशाइयों की भीड़ बहुत ज़्यादा है। मगर इस थिएटर की दिलचस्पियाँ, उसके आकर्षण उन्हीं थोड़े से ऐक्टरों के जादूभरे कारनामों और जादूभरी बातों पर निर्भर हैं। यह चन्द ऐक्टर अपने जादूभरे भाषणों और मोहिनी अदाओं से हमारे दिलों पर क़ब्ज़ा किये हुए हैं और हम खुशियों की एक अजीब कैफ़ियत में उनकी कोशिशों की दाद देते हैं। बेशक इंग्लिस्तान के मशहूर कवि और दार्शनिक कार्लाइल का यह कहना सही है कि दुनिया का सच्चा परिचय केवल उन बड़े लोगों के कारनामे हैं जो समय-समय पर दुनिया में पैदा हुए। हमारे मनोरंजन की वस्तुएँ और वह तमाम चीज़ें जो हमारी प्रशंसा और सम्मान की अधिकारी हैं उन्हीं बड़े आदमियों की मेहनतों और सोच-विचार का नतीजा हैं। जिस दुनिया में हम रहते हैं वह उन्हीं सजग लोगों के सुन्दर प्रयत्नों का फल है। हमारी आत्माएँ, जिनसे हमारा जीवन है, उन्हीं के इशारों पर चलती हैं। हमारे विचार, हमारा सांस्कृतिक रूप, हमारे तौर-तरीके उसी साँचे में ढलते हैं जो यह आदमी हमारी नज़रों के सामने पेश करता है। जब हमारी अन्दरूनी आँखें अंधी हो जाती हैं, हमारे खयालात गन्दे हो जाते हैं, हमारे बुरे काम बढ़ जाते हैं, हमारी खुशहाली हमारा साथ छोड़ देती है, हमारा धर्म पुराना हो जाता है और समय की दीर्घता उसमें बहुत से परिवर्तन करके उसे बनावटी लोकाचार का संग्रह बना देती है, हमारे ज्ञान की परिधि संकीर्ण हो जाती है और हम अज्ञान के अथाह समुद्र में डुबकियाँ खाने लगते हैं तो हम अनायास चाहते हैं कि कोई गौतम बुद्ध, कोई शंकराचार्य, कोई अरस्तू, कोई मुहम्मद, कोई न्यूटन पैदा हो, अपनी अलौकिक योग्यता से हमारी सोसायटी को लाभ पहुँचाये, जितने अनिष्टकारी तत्व एकत्र हो गये हों उनको दूर कर दे, नये विचारों की सरिता बहा कर हमारी प्यास को बुझाये और हमारे विवेक के बुझे हुए दीपक को प्रज्वलित करे। जब हमारी प्रार्थनाएँ लक्ष्य-भ्रष्ट तीर हो जाती हैं और कोई ऐसा आदमी सामने आता है तो हम उसका अनुसरण करते हैं और जैसे एक होशियार जादूगर अपने जादू के ज़ोर से कठपुतलियों को नचाता है, जिस कल चाहता है बिठाता है, उसी तरह यह हीरो हमको

अद्‌भुत चमत्कार दिखाकर हमारी आत्मा को अपने बस में कर लेता है; उसके चरित्र में भगवान जाने ऐसी कौन सी शक्ति होती है जो हमारे दिलों पर उसके बड़प्पन का सिक्का बिठाती है; उसकी बातों में भगवान जाने क्या असर होता है जो हम पर जादू का काम करता है। वह बड़ा ज़बर्दस्त मेस्मराइज़र होता है और उसकी महज़ आँखें ही नहीं बल्कि हर बात और हर काम हम पर मेस्मरेज़िम का असर डालते हैं। मनुष्य को परमात्मा ने बहुत-से अच्छे गुण दिये लेकिन ऐसे लोग थोड़े ही हैं जिन्हें उसने आविष्कारक शक्तियाँ दीं। अगर साधारण जनों को अनुसरण की शक्ति के बदले आविष्कार की शक्ति मिली होती तो आज दुनिया का कुछ और ही ढंग होता। हरेक आदमी अपने ज़ोम में ख़ुद ही बहलोल बना बैठा होता। यह इस अनुसरण-शक्ति का ही परिणाम है कि हम एक बड़े हीरो के पीछे चलते हैं और उसकी विस्तृत अलौकिक शक्तियों से लाभ उठाते हैं। मगर यह समझना ग़लतफ़हमी से ख़ाली न होगा कि भगवान ने हमारी घुट्टी में हीरो-वर्शिप का माद्दा डाला तो हममें यह क़ाबलियत भी पैदा कर दी कि हम एक सच्चे हीरो को रंगे हुए सियारों से अलग करके पहचान सकें। बहुत बार ऐसा हुआ कि मामूली रग और पुट्ठे के लोग सांसारिक इच्छाओं और वासनाओं के वश में आकर हीरो बन बैठे, जनता ने उन पर विश्वास किया, उन्हें अपना नेता बनाया और उनके इशारों पर चले मगर जब विद्वानों ने उन बने हुए हीरोओं की बातों और कामों को अक़्ल की कसौटी पर कसा तो उनकी सारी क़लई खुल गयी। अगर ऐसा हीरो उस वक़्त तक ज़िन्दा रहा तो जीते जी और मरा तो मरने के बाद लानतों का शिकार बनाया गया। यह नक़ली हीरो दुनिया में इतने ज़्यादा हुए और इतनी बार उनके भांडे फूटे कि हमको एक सच्चे हीरो का अनुसरण करते हुए भटक जाने का ख़तरा लगा रहता है और यही कारण है कि कभी-कभी सच्चे हीरो अवतरित हुए, हमारी बुरी दशा को सुधारने के लिए इतनी माथापच्ची करते रहे, हमारी भलाई के लिए गला फाड़-फाड़ चिल्लाये, हमको भटका हुआ पाकर सीधा रास्ता दिखाने की कोशिश की मगर हमारे कान पर जूं तक न रेंगी। हम उनको भी नक़ली हीरो समझा किये। निरन्तर असफलताओं ने उनके दिल तोड़ दिये और वह अपने दृढ़ संकल्पों और बुलन्द अरमानों को लिये हुए इस दुनिया से सिधार गये। अगर उनका सच्चा हाल उनकी मौत के बाद सर्वसाधारण को पता चला तो हमने अफ़सोस के साथ हाथ मले और जिनसे जीवनकाल में दूर-दूर रहते थे उनके मरने के बाद उनकी समाधि की पूजा की और उनके स्मारक बनाये ताकि उनका नाम क़ायम रहे। जूलियस सीज़र जब तक ज़िन्दा रहा

लोग उस पर यह लांछन लगाते रहे कि वह अपने अधिकारों का अनुचित उपयोग कर रहा है और रोम के प्रजातन्त्र को धूल में मिलाकर खुद बादशाही किया चाहता है। आख़िर बेरहमों ने उसको क़त्ल किया मगर उसके मरने के बाद जब उसकी बातें और उसके काम जाँचे गये तो उनमें सच्चाई और नेकी कूट-कूटकर भरी पायी गयी और लोग उसे हीरो मानने लगे।

क्रामवेल, जिसके हालात हम आगे चलकर संक्षेप में बतलायेंगे, जब तक ज़िन्दा रहा ग़लतफ़हमियों की बौछारें सहता रहा। मरने के बाद उसके दुश्मनों ने उसकी मट्टी पलीद करने में कोई कसर नहीं छोड़ी। आख़िरकार उन्नीसवीं सदी में कार्लाइल ने उसका उचित सम्मान किया, उसके विचारों और कार्यों और सिद्धान्तों को दुनिया के सामने निष्पक्ष भाव से प्रस्तुत किया और उसकी मेहनतों का नतीजा यह हुआ कि आज क्रामवेल का नाम इज़्ज़त से लिया जाता है और अब इतनी ही बात पक्की नहीं है कि वह सच्चा हीरो था बल्कि सच्चे हीरोओं में उसको एक विशिष्ट स्थान दिया गया है। बाज़ारों में कभी-कभी खोटे सिक्के भी चालू सिक्कों के पर्दे में छिपे रहते हैं मगर उनकी असलियत परख ली जाती है और वह बड़ी बेदर्दी से फेंक दिये जाते हैं। काश भगवान हमें कोई ऐसी तेज़ कूवत देता कि हम इस सूरत में भी खोटे-खरे को परख लिया करते। क्या खूब कहा है ज़ौक़ ने—

गौहर को जौहरी और सर्राफ़ ज़र को परखे
ऐसा कोई न देखा वह जो बशर को परखे ॥

क्रामवेल की पैदाइश, बचपन और शिक्षा

ओलिवर क्रामवेल २५ अप्रैल सन् १५९९ ई० को हंटिंगडन में पैदा हुआ। उसके बाप का नाम राबर्ट क्रामवेल था और उसकी माँ का नाम एलिज़ाबेथ स्टुअर्ड। क्रामवेल और स्टुअर्ड दोनों ख़ान्दान मठों के टूटने के बाद उन्नति की सीढ़ी पर चढ़े थे और प्राचीनता व कुलीनता की दृष्टि से इंग्लिस्तान के ऊँचे से ऊंचे ख़ान्दानों की बराबरी कर सकते थे।

क्रामवेल का चचा सर ओलिवर क्रामवेल जो इस नवजात क्रामवेल का धर्मपिता भी था, हंचिनब्रुक का प्रतिष्ठित ज़मीन्दार था और अमीरों की तरह बड़े ठाठ-बाट से रहता था। वह अपने पास-पड़ोस में ही प्रतिष्ठित नहीं गिना जाता था बल्कि शाही दरबारों में भी उसकी बड़ी आवभगत थी। महारानी एलिज़ाबेथ ने कई बार इस क़स्बे को अपनी चरण-धूलि से पवित्र किया था और उसकी मृत्यु के बाद जेम्स भी यदा-कदा यह सम्मान उस क़स्बे को देता रहा।

जिस वक़्त क्रामवेल पाँच बरस का था जेम्स बड़ी शान-शौकत से वहाँ पहुँचा था और कई दिन तक महफ़िलें खूब गर्म रहीं, शीशा-ओ-शराब का दौर चला।

क्रामवेल का बाप औसत दर्जे का आदमी था। उसके अधिकार में हंटिंगडन की छोटी-सी काश्तकारी थी जिससे हज़ार पौंड सालाना का फ़ायदा हो रहता था। क्रामवेल की माँ के क़ब्ज़े में ढाई सौ पौंड सालाना के मुनाफ़े की ज़मीन थी जो वह अपने मैके से दहेज के रूप में लायी थी। गो मौजूदा ज़माने की माली हैसियत के लिहाज़ से इस आमदनी का शुमार औसत आमदनियों के आख़िरी दर्जे में होगा, मगर उस ज़माने में रोज़ की ज़रूरतें इतनी ज़्यादा न थीं और यह आमदनी एक शरीफ़ ख़ान्दान के गुज़र-बसर के लिये काफ़ी थी।

राबर्ट क्रामवेल एक सुलझा हुआ, गंभीर और समझदार आदमी था। उसकी सहज प्रवृत्ति एकान्तवास की ओर थी और इस आदत ने उसे सर्वसाधारण की दृष्टि में घमण्डी बना दिया था। उसे बहुत से इल्मों में काफ़ी दख़ल था और गो आज के ज़माने में इल्मी क़ाबलियत कोई असाधारण बात नहीं मगर उस ज़माने में यह बेशक असाधारण बात थी। अमीरों और ऊँचे घरवालों की रुचि ज्ञानार्जन की ओर न थी बल्कि अकसर अमीर लोग इसको नीची दृष्टि से देखते थे। अगर उन्हें बाइबिल पढ़ना आ गया तो बस पंडित हो गये, फिर उन्हें कुछ और जानने की ज़रूरत नहीं। हाँ, सैनिक-शिक्षा उनको ख़ूब दी जाती थी और जानवरों का शिकार करना उनका प्यारा शग़ल था।

एलिज़ाबेथ स्टुअर्ड, क्रामवेल की माँ, सर टामस स्टुअर्ड की बहन थी। चूँकि सर टामस के कोई सन्तान न थी उसने ओलिवर को गोद लेकर उसे अपना उत्तराधिकारी घोषित कर दिया था। एलिज़ाबेथ की शादी विलियम लिन से हुई थी मगर वह कुछ ही दिनों बाद परलोक सिधारा। तब इस विधवा ने राबर्ट क्रामवेल से शादी की और भगवान ने उनको दस सन्तानें दीं मगर कई लड़के, एक के बाद एक, अपने माँ-बाप को दाग़ देकर स्वर्ग सिधारे। बेटों में सिर्फ़ क्रामवेल जो पाँचवाँ लड़का था जीता-जागता बचा था। क्रामवेल की माँ बहुत नेक, गम्भीर, सच्चरित्र और सादगी पसन्द करनेवाली स्त्री थी। यह अन्तिम गुण उस ज़माने की औरतों में बिरलों ही में पाया जाता था। टीमटाम का चारों तरफ़ ज़ोर था और बनावट, आडम्बर, एक सर्वव्यापी बीमारी थी।

राबर्ट और एलिज़ाबेथ दोनों हंटिंगडन के देहाती मकान में बहुत इत्मीनान से ज़िन्दगी बसर करते थे और अपनी समझदारी, किफ़ायतशारी और सादगी से एक लम्बे-चौड़े ख़ान्दान की, जिसमें दस बच्चे थे, बख़ूबी परवरिश करते थे। यह उनके प्रबन्ध-कौशल की ख़ूबी थी कि उन्हें ग़रीबी या मुहताजी की तकलीफ़ें न उठानी

पड़ती थीं । यह नेक बीवी अपने प्यारे शौहर की मौत के बाद सैंतीस बरस तक ज़िन्दा रही और अपनी लड़कियों की शादियाँ अच्छे ख़ान्दानों में कीं । बहुत कम माँएँ ऐसे बच्चे जनती हैं जो अपने मज़बूत इरादों से उनकी बेइन्तहा तकलीफ़ें हरते हैं । जब उसकी ज़िन्दगी के दिन पूरे होने को आये तो उसने क्रामवेल से दर्ख़्वास्त की कि मुझे मेरे ख़ान्दानी क़ब्रिस्तान में दफ़न कीजो, मगर क्रामवेल को यह कब गवारा हो सकता था कि उसे एक गुमनाम जगह पर दफ़न करे । चुनांचे बादशाहों की सी आन-बान से उसकी अंतिम क्रिया की गयी और वह वेस्टमिंस्टर में ही दफ़न हुई । जब शाही ताक़त एक बार फिर नये सिर से लौटी तो दुश्मनों और जासूसों से यह भी न देखा गया कि उसको ज़मीन के एक कोने में ख़ामोश पड़ा रहने दें । बेचारी की हड्डियाँ खुदवाकर बड़ी ज़िल्लत के साथ एक गड्ढे में फेंक दी गयीं ।

ऐसे माँ-बाप का होनहार बच्चा ओलिवर क्रामवेल था । उसके बचपन के हालात बहुत कम मालूम हैं । हाँ, उस ज़माने की कुछ जनश्रुतियाँ अलबत्ता प्रसिद्ध हो गयी हैं । यह एक आम क़ायदा है कि प्रसिद्ध व्यक्तियों के बारे में कुछ जन-श्रुतियाँ प्रसिद्ध हो जाया करती हैं । इसका कारण या तो यह है कि बचपन ही से आगामी महानता के लक्षण दिखायी पड़ने लगते हैं या नासमझ जनता उनकी चमत्कारिक उपलब्धियों को देखकर भौचक रह जाती है और उनके बारे में कुछ जनश्रुतियाँ गढ़कर अपनी तसकीन कर लिया करती है । हम बड़े लोगों के जीवन-चरितों में चमत्कारिक बातों के देखने के इतने आदी हो गये हैं कि हमारी आँखें शुरू ही से उनकी तलाश करने लगती हैं । यह शायद इन्सान की नेचर में शामिल है कि वह हर एक महान् कार्य को असाधारण बातों से जोड़ लेता है और यह एक हद तक सही भी है क्योंकि कोई महान् कार्य असाधारण गुणों के बिना नहीं किया जा सकता ।

कहते हैं कि एक बार ओलिवर क्रामवेल को सपने में यह पुकार सुनायी पड़ी कि तू इंग्लिस्तान का सबसे बड़ा आदमी होगा । जब उसने अपने बाप से यह क़िस्सा कहा तो उसने उसका ख़ूब कान गरम किया ।

दूसरी जनश्रुति यों है कि जब शहज़ादा चार्ल्स अपने शानदार बाप जेम्स के साथ नार्थब्रुक को आया था तो वहाँ उसकी और क्रामवेल की किसी बात पर अनबन हो गयी । नौबत हाथापाई तक पहुँची और आख़िरकार क्रामवेल मीर रहा । एक और किंवदन्ती यों प्रसिद्ध है कि वह आसपास के अंगूरिस्तानों पर बड़ी आज़ादी से हमले किया करता था और बाग़बानों ने उसकी लूटपाट से तंग आकर उसे सेबों का शैतान कहकर पुकारना शुरू किया था ।

क्रामवेल की आरम्भिक शिक्षा हंटिंगडन के फ्री स्कूल में हुई। उस वक़्त इस स्कूल में हेडमास्टर टामस बेयर्ड था और अपने इस नये छात्र की नैसर्गिक विशेषताओं को देखकर वह उसका दोस्त हो गया। बेयर्ड अपने देहान्त के समय तक इस स्कूल के प्रधान के पद पर रहा और हंटिंगडन में लेक्चर देता रहा। क्रामवेल भी उसको उचित मान देने में अपनी तरफ़ से कुछ उठा न रखता था। फ्री स्कूल का कोर्स ख़त्म करने के बाद क्रामवेल हंटिंगडन के ग्रामर स्कूल में भेजा गया था और यहाँ उसने अपने विद्यार्थीकाल का बड़ा हिस्सा ख़त्म किया। सत्रहवें बरस में उसने यहाँ अपनी शिक्षा पूरी की और केम्ब्रिज यूनिवर्सिटी में दाख़िल हुआ। इसका कोई विश्वसनीय साक्ष्य नहीं कि वह कितने दिनों यहाँ पढ़ता रहा मगर यह मालूम है कि उसने कोई बड़ी सनद नहीं हासिल की। उसके भाषणों और पत्रों से अलबत्ता पता चलता है कि उसको अंग्रेज़ी और लैटिन भाषाओं पर अधिकार था और कुछ इतिहासकार कहते हैं कि वह यूनान और रोम का इतिहास बहुत अच्छी तरह जानता था। क्रामवेल के कालेज के ज़माने की ज़िन्दगी के हालात भी सन्देहपूर्ण हैं। इतिहासकारों का कथन भी एक दूसरे से भिन्न है। कुछ कहते हैं कि वह बड़ा स्वच्छन्द और हठीला छात्र था और अपना समय खेल-तमाशे में काटता था। दूसरे कहते हैं कि वह बड़ा परिश्रमी छात्र था। क्रामवेल का मन चाहे शिक्षा की ओर प्रवृत्त रहा हो या न रहा हो मगर इसमें कोई सन्देह नहीं कि वह नेचर के पन्नों का अध्ययन बहुत जी लगाकर करता था; बजाय इसके कि शेक्सपियर के काल्पनिक चित्रों का अध्ययन करे, वह प्रकृति के जीते-जागते चित्रों का अध्ययन करता था। ज़माने की तबदीली को बड़े ग़ौर से देखता था और मानव हृदय के आकस्मिक उलट-फेर को ख़ूब जानता था। उसके ज़माने में ऐसी ऐसी घटनाएँ हो गयीं जो किसी उन्नत विचारों के दृढ़व्रती हृदय पर प्रभाव डाले बिना नहीं रह सकती थीं। सोलहवीं सदी के साथ शानदार ट्यूडर वंश का अन्त हुआ और स्टुअर्ट वंश के अत्याचारी बादशाह उनके उत्तराधिकारी हुए। जब वह छः बरस का था गन पाउडर प्लाट ने तमाम देश में हलचल मचा दी। ग्यारह ही बरस का था कि फ्रांस के बादशाह हेनरी चतुर्थ को अपनी रिआया के हाथों क़त्ल होते देखा। धार्मिक लड़ाइयाँ भी बड़ी सरगर्मी से लड़ी जा रही थीं। प्यूरिटन दल के लोगों ने, जिनका पार्लमेंट में इस वक़्त बड़ा ज़ोर था, जेम्स को धार्मिक मामलों में यहाँ तक तंग किया कि आख़िरकार उसको हैम्पडेन कोर्ट में एक अधिवेशन बुलाना पड़ा। जेम्स धार्मिक बातों को काफ़ी समझता था और शिक्षा भी ऊँचे दर्जे की पायी थी, उसने इस अधिवेशन में प्यूरिटन दल की सबल युक्तियों के ऐसे मुँहतोड़ जवाब दिये। मगर नतीजा इतना हुआ कि बाइबिल का तर्जुमा इबरानी से अँग्रेज़ी ज़बान में किया जाने लगा।

उन्नीसवें साल में था जब सर वाल्टर रैले तेरह बरस लंदन टावर (जेलख़ाना) में क़ैद रहने के बाद फाँसी पर चढ़ाया गया और उसी ज़माने में तीसवर्षीय युद्ध का आरम्भ आस्ट्रिया में हुआ जिसने तमाम योरप में तहलका मचा दिया।

क्रामवेल केम्ब्रिज में मुशकिल से एक बरस रहा होगा कि अनाथ हो गया। अब मजबूर होकर शिक्षा को अन्तिम नमस्कार करना पड़ा क्योंकि उसकी मौरूसी जायदाद का इन्तज़ाम करनेवाला कोई न था। अतः वह हंटिंगडन को वापस आया और बड़ी मेहनत से अपनी जायदाद का इन्तज़ाम करना शुरू किया।

क्रामवेल की शादी

ठीक जवानी के उठान के वक़्त पिता की छाया सर से उठ जाना अकसर घर की बर्बादी का कारण होता है और सम्पन्न वर्ग के स्वच्छन्द युवकों के लिए तो माँ-बाप की मृत्यु दुराचार और इंद्रियभोग की भूमिका है। क्रामवेल भी इसी वर्ग का नवयुवक था और चूँकि उसको अपने सच्चरित्र होने पर पूरा विश्वास न था इसलिए उसे हरदम यह डर लगा रहता था कि कहीं बुरी वासनाएँ उसको सीधे रास्ते से विमुख न कर दें। उसे मालूम हो गया कि इन खतरों की बुनियाद आज़ादी है। लिहाज़ा उसने अपनी आज़ादी ही पर हाथ साफ़ करने का पक्का इरादा किया। इंग्लिस्तान में अमूमन् मर्दों की शादियाँ पच्चीसवें बरस के बाद हुआ करती थीं मगर क्रामवेल ने अपने इक्कीसवें ही साल में यह तौक़ अपने गले में ला डाला। २२ अगस्त १६२० को उसकी शादी एलिज़ाबेथ बोर्चियर से हुई। यह स्त्री बहुत समझदार, दृढ़चित्त, आडम्बरहीन और स्नेही थी। अपने जीते जी उसने क्रामवेल के साथ मुहब्बत क़ायम रखी, यहाँ तक कि शादी होने के पच्चीस बरस बाद जब कि अक्सर पति-पत्नी में एक तरह की उदासीनता आ जाया करती है, जो ख़त क्रामवेल ने अपनी बीवी को लिखा है वह प्रेम की उमंग में लिपटे हुए शब्दों से ऐसा भरा हुआ है कि जैसे किसी युवक पति के क़लम से निकला है।

क्रामवेल अपनी बीवी को लेकर हंटिंगडन को आया और ज़ोर-शोर से अपनी खेती-बाड़ी में लग गया। ऐसा बहुत कम संयोग हुआ है कि एक साधारण, शान्तिप्रेमी किसान के रोज़ाना हालात विस्तार के साथ लिखे हुए मिल सकते हों या उनमें क़िस्सों की सी दिलचस्पी और अजब-अनोखी बातें पायी जाती हों। क्रामवेल की ज़िन्दगी यहाँ कुछ ऐसी सादगी और खमोशी से बसर होती थी कि उसके बहुत कम हालात मालूम होते हैं। यह अलबत्ता मालूम है कि वह अपने ख़ान्दान के साथ सच्चा और निःस्वार्थ प्रेम रखता था। उसके ख़ान्दान का हरएक मेम्बर उसकी आँखों का तारा था और इसके बदले में क्रामवेल भी तमाम कुनबे के

स्नेह और आदर के मजे लेता था। इस आपसी मेल-मुहब्बत और बेलौस रहन-सहन ने बेशक उसके जीवन को स्पृहणीय बना दिया है। वह जनसाधारण से बड़ी बेतकल्लुफ़ी और सादगी से मिलता था और आसपास के तमाम लोग उसका आदर करते थे। हंटिंगडन में वह ग्यारह बरस रहा। इस बीच वह सिर्फ़ एक बार, सन् १६२८ में, अपने क़स्बे से निर्वाचित होकर पार्लमेण्ट में शरीक हुआ था। जब वह निश्चित अवधि यानी एक साल के बाद लौटा तो फिर वही साधुओं जैसा जीवन व्यतीत करने लगा। १६३२ में उसने हंटिंगडन को बय कर दिया और सेण्ट आयूलेस में आकर रहने लगा। यहाँ भी उसने काश्तकारी का नक़्शा जमाया मगर शायद उसकी तबीयत यहाँ से उचाट हो गयी क्योंकि उसने चार ही बरस बाद इस खेती को भी बेच दिया और अपने मामा के घर को, जो इलाई नाम के क़स्बे में था, अपना निवास बनाया। इस क़स्बे में वह अमन-चैन से सन् १६४२ तक रहा। खेती करवाता था और उसकी आमदनी से अपने बड़े कुनबे की परवरिश करता था। और फिर क्रामवेल की उदारता सिर्फ़ अपने ख़ान्दान तक ही सीमित न थी, अकसर वह मुसीबत के मारे ग़रीबों की तकलीफ़ और मुसीबत में शरीक होता था। जो कुछ वह अपनी रोज़मर्रा की ज़रूरतों से बचा सकता था, मुसीबत के मारे हुओं के साथ हमदर्दी करने में ख़र्च करता था। भगवान् ने उसको सहानुभूतिशील और मैत्रीपूर्ण हृदय दिया था। कहते हैं कि वह दिन भर में दो बार अपने खेतों के तमाम मज़दूरों को अपने चारों ओर जमा करके बाइबिल से दुआ पढ़ता था और गो इस मज़हबपरस्ती से उसको माली नुक़सान पहुँचता था मगर वह अपने मजहब और उसके प्रचार के लिए जान-माल को कुछ न समझता था। क्रामवेल प्यूरिटन धर्म का पक्का अनुयायी था। दुनिया में जितनी चीज़ें हैं सभी में अच्छी और बुरी दोनों बातें पायी जाती हैं। प्यूरिटन भी इस नियम के अपवाद न थे। उनके धर्म में सदाचार, आस्तिकता, इंद्रियदमन, स्वतंत्रता-प्रेम, सहानुभूति और कर्तव्यपालन की शिक्षा, सब कुछ था। लेकिन इसके साथ-ही-साथ धार्मिक कट्टरता और विध्वंसकारी धार्मिक आवेश अकसर उनकी और सब ख़ूबियों को दबा लेते थे। प्यूरिटनों को अगर लड़ाई के मैदान में देखिए तो दृढ़ता, साहस और वीरता की ज़िन्दा तसवीर पाइएगा और अगर हुकूमत के दरबार में देखिए तो समझदारी, दूरंदेशी और सचाई का आला नमूना पाइएगा। मगर लड़ाई के मैदान में उनका हद से बढ़ा हुआ धार्मिक कट्टरपन हज़ारों घरों को बेचिराग़ कर देता है और हुकूमत के दरबार में उनका हद से बढ़ा हुआ स्वतंत्रता प्रेम पार्लमेण्ट की सत्ता और प्राचीन अधिकारों पर घातक हमला करता है।

प्यूरिटन धर्म स्पष्ट रूप में सभी दिखावे और आडम्बर की चीजों से घृणा

करता था। उसका मन्दिर, उसका कलीसा, जो कुछ था, बाइबिल थी। यह कहा जा चुका है कि जेम्स के राज्यकाल में इस देव-ग्रन्थ का अनुवाद इबरानी से अंग्रेजी भाषा में किया गया। इसके अनुवादक बहुत बुद्धिमान, परमात्मा से डरने वाले और विद्वान लोग थे। कई महीने तक निरन्तर परिश्रम करने के बाद यह अनुवाद पूरा हुआ। एक ऐसे समय में जबकि व्यापार को दिन दूनी रात चौगुनी तरक़्क़ी ने सबका ध्यान रुपया हासिल करने की तरफ़ खींच लिया था और ईसाई धर्म समय के फेर में पड़कर बनावटी और नुमाइशी रस्मों का ढेर हो गया था, इस किताब का छपना सर्वसाधारण के लिए अमृत का काम कर गया, उनकी धार्मिक प्राणरक्षा का कारण हो गया। यह तो ज़ाहिर ही है कि इबरानी ज़बान पर इतना अधिकार होना कि इंजील समझने की योग्यता हो जाय जनसाधारण के वश की चीज नहीं थी और इसलिए कुल आबादी का बहुत बड़ा हिस्सा भगवान की उपासना करने से मजबूर था। बेशक विकलिफ़ का तर्जुमा मौजूद था मगर अंग्रेजी ज़बान की तब्दीलियों ने उसे साधारण लोगों की समझ के योग्य न रखा था। जिस उत्साह से इस धार्मिक पुस्तक का स्वागत किया गया वह इस बात का गवाह है कि लोग उसकी आस लगाये थे और उसका इन्तज़ार कर रहे थे। यह पुस्तक बहुत जल्द लोकप्रिय हो गयी और अंग्रेजी विचारों को जितना इस पुस्तक ने सुधारा उतना शायद किसी दूसरी पुस्तक ने न किया हो। इस वक़्त न कहीं शेर-ओ-शायरी का चर्चा था और न कवियों और गद्यकारों का ज़ोर था। अगर सुन्दर गद्य था तो यही बाइबिल और कविता थी तो यही बाइबिल। बेशक शेक्सपियर की अनमोल कृतियाँ मौजूद थीं मगर उस वक़्त जनसाधारण में प्रचलित न थीं, सिर्फ़ थिएटरों और तमाशागाहों में उनका नाम सुना जाता था या फ़ैशनेबुल शरीफ़ों के हलक़े में। जनसाधारण व्यवहारतः लिखने-पढ़ने से वंचित थे। क्रामवेल इस किताब का बहुत बड़ा प्रेमी था। उसने अपने मन वचन और कर्म को इसी किताब के साँचे में ढाला था। उसकी ज़बान भी बिल्कुल बाइबिल से मिलती है। प्यूरिटन धर्म के लोग बाइबिल पर अंधी श्रद्धा रखते थे। उस वक़्त तक उन बड़े लोगों का अस्तित्व न था जिन्होंने इंजील को बुद्धि और विवेक की कसौटी पर कसा। हरेक प्यूरिटन का पूर्ण विश्वास था कि मरने के बाद उन्हें भगवान की अदालत में जाना पड़ेगा और वहाँ अपने कर्मानुसार पुरस्कार या दण्ड भुगतना पड़ेगा। जब वह कहता था कि हे भगवान मेरी मदद कर तब वह अपने भगवान के काल्पनिक चित्र को साक्षात् अपनी आँखों के सामने खड़ा पाता था। जब उसको कामयाबी हासिल होती थी तो वह समझता था कि भगवान उसकी मदद कर रहा है। जब वह मुसीबत में फँसता तो समझता था कि शैतान उस पर

हावी हो गया है। जितने अच्छे काम वह करता था उन सबकी प्रेरणा का स्रोत भगवान था, जितने बुरे काम होते थे उन सबका प्रेरक शैतान था। यह उनका विश्वास था और इस विश्वास से जितनी भलाई या बुराई हो सकती थी उन सबों का कर्त्ता क्रामवेल था क्योंकि वह महज़ प्यूरिटन न था बल्कि प्यूरिटनों का प्यूरिटन था।

एलिज़ाबेथ से क्रामवेल के नौ बच्चे पैदा हुए। उनमें से एक तो बचपन ही में जाता रहा, चार लड़के और चार लड़कियाँ जवानी की उम्र तक पहुँचे।

क्रामवेल की ज़िन्दगी का सबसे बड़ा और याद रखने के क़ाबिल काम सन् १६४० की सिविल वार में शरीक होना था और सिर्फ़ शरीक होना ही नहीं बल्कि उसके नतीजों के हासिल करने में मन-प्राण से डूब जाना था। यह स्पष्ट है कि उसने जनता का अनुसरण किया और बादशाह की शक्ति के विरोध पर कमर बांधी मगर इसका कारण यह नहीं कि उसे निजी तौर पर शाही हुकूमत से कोई शिकायत या नफ़रत थी या वह इतना दृढ़व्रती और ऊँचे विचारों का राजनीतिक विचारक था कि प्रजातंत्र की बुनियाद डाला चाहता था। इसके विपरीत वह शाही हुकूमत का समर्थक था और जब संयोग और घटनाओं ने राज्य की बागडोर उसके हाथों में दे दी तो जिस हुकूमत पर उसने जोर दिया वह व्यवहारतः शाही हुकूमत थी। हाँ, उस नाम को छोड़ दिया गया था। कुछ आलोचकों ने लिखा है कि लड़ाई के शुरू में वह प्रजातांत्रिक राज्य के लिए सशस्त्र हुआ था मगर जब उसने स्थिति को पलटते देखा तो सिर्फ़ अपना ख़याल करके शाही हुकूमत क़ायम करनी चाही। इसका सही अन्दाज़ा करना कि यह कथन कहाँ तक सच है प्रायः असम्भव है मगर यह सूरज की तरह रौशन है कि वह परले सिरे का पवित्र सदाचारी आदमी था और उसने जनता की भलाई को अपनी व्यक्तिसत्ता की वेदी पर हरगिज़ न चढ़ाया होगा।

उसने शाही हुकूमत का विरोध क्यों किया, इसके कारण स्पष्ट हैं। उस ज़माने में रिआया पर बेजा जुल्मों की भरमार थी। बादशाह चारों तरफ़ जुल्म ढा रहा था। लिहाज़ा हर खास व आम, छोटा और बड़ा, बुरा और भला गवर्नमेन्ट की सख़्तियों और जुल्म से दुहाई मचा रहा था। सिर्फ़ वही लोग बरी थे जिन पर बादशाह की विशेष कृपादृष्टि थी। क्रामवेल का देशप्रेम और हमदर्दी इन अत्याचारों को न देख सकती थी—क़ौम के हर हमदर्द की तबीयत का वही तक़ाज़ा होना चाहिए जो क्रामवेल का था। जब वह ग़ौर करता था कि इस अव्यवस्था का असल कारण क्या है तो उसको स्वभावतः यह जवाब मिलता था कि चार्ल्स की सल्तनत, और उसका इलाज उसकी समझ में यह था कि या तो

अत्याचार एक सिरे से दूर कर दिये जायँ या चार्ल्स की सल्तनत जड़ से उखाड़ फेंकी जाय। पहली सूरत ज़रूर ज़्यादा अच्छी थी मगर चार्ल्स ग़ज़ब की मनमानी करने वाला आदमी था, मुमकिन न था कि उसके पत्थर-से दिल पर किसी के समझाने-बुझाने का कुछ भी असर पड़ता। लिहाज़ा मजबूर होकर दूसरा रास्ता अख्तियार करना पड़ा। जिस तरह ब्रूटस ने कहा था कि मुझे क़ैसर से ज़रूर मुहब्बत थी मगर रोम की मुहब्बत उससे कई गुना ज़्यादा थी, उसी तरह क्रामवेल के बारे में भी कहा जा सकता है कि उसको शाही हुकूमत ज़रूर पसंद थी मगर जनता की तकलीफ़ उसके दिल पर एक भारी पत्थर थी।

कार्लाइल का कहना है कि यह सिविल वार असलियत में नेकी और बदी की लड़ाई थी। उस ज़माने में ईसाई धर्म विकृत होकर नास्तिकता की सीमा तक पहुँच गया था। पक्के धर्मपरायण बहुत कम रह गये थे। प्यूरिटन दल अलबत्ता अपने विश्वास पर डटा हुआ था और चूंकि प्यूरिटनियों के नज़दीक जितने बुरे काम होते थे उन सबका प्रेरक शैतान हुआ करता था इसलिए उनको इंग्लिस्तान की रद्दी हालत देखकर स्वभावतः यह ख़याल हो गया कि यहाँ शैतानियत का ज़ोर है और वह शैतान को पछाड़ने के लिए दिलोजान से लड़े। दुनिया का इतिहास ऐसी शानदार लड़ाइयों से भरा पड़ा है। फ्रेंच रिवोल्यूशन एक मामूली मिसाल है।

जेम्स के बाद चार्ल्स मार्च सन् १६२५ ई० में राजगद्दी पर आया और मई में उसकी शादी हेनरी चतुर्थ की लड़की यानी लुई तेरहवें की बहन हेन-रियेटा से हुई। जनता ने उसके शुभ आगमन का नारा बड़े उत्साह और जोश से लगाया और कई दिन तक खुशियाँ मनायी गयीं क्योंकि लोग जेम्स की हुकूमत से तंग आ गये थे और उनको उम्मीद थी कि यह नया बादशाह ज़रूर उनकी गर्दन का बोझ हल्का करेगा। अगर उनको सचमुच ऐसी उम्मीद थी तो वह पूरी न हुई क्योंकि यह बादशाह दैवी अधिकार (डिवाइन राइट) और बिना कान-पूंछ हिलाये आज्ञापालन करवाने के मामले में अपने बाप से भी आगे बढ़ा हुआ था।

अपने जीते जी वह बराबर प्रयत्नशील रहा कि सारी हुकूमत बेरोकटोक उसी के हाथों में रहे। उसकी बीवी, जो उसकी सलाहकार थी, उसकी आँखों के सामने फ्रांस के बादशाह के ऐश्वर्य और प्रभुत्व का नक्शा खींचती थी और चार्ल्स को भी बादशाहत का वही ढंग अपनाने पर ज़ोर देती थी।

चार्ल्स का दूसरा सलाहकार विलियर्स ड्यूक आफ़ बकिंघम था। इस आदमी से चार्ल्स को बचपन से ही प्यार था, चुनांचे इस वक़्त वह उसका जिगरी दोस्त

भी था और सलाहकार भी, मगर चार्ल्स और बकिंघम दोनों ज़िद्दी थे, घमण्डी थे। प्रबन्ध कौशल में दोनों कमज़ोर थे। भगवान् ने एक को भी नज़र की गहराई, दूरंदेशी और निश्चय की स्थिरता नहीं दी थी, जो एक देश की व्यवस्था करने वाले में विशेष रूप से पायी जाती है। एक को भी वह आँखों की तेज़ी न हासिल थी जो जनता के विचारों की गति को ठीक-ठीक देख सकती, परख सकती। जेम्स ने बहुत से अत्याचार किये मगर उसके राज्यकाल में रिआया के दिलों में विद्रोही भाव पक्के नहीं होने पाये चूँकि जब वह चारों तरफ़ से घिर जाता था तो हमेशा बीच का रास्ता अख़्तियार करके अपना काम निकाल लिया करता था। मगर चार्ल्स की गिरफ़्तारी ऊँट की गिरफ़्त से भी बढ़ी हुई थी, वह जिस बात पर अड़ जाता था उसे छोड़ना सीखा ही न था।

चार्ल्स ने गद्दी पर बैठने के थोड़े ही दिनों बाद रुपये की ज़रूरत से मजबूर होकर पार्लमेण्ट बुलायी और अपना मन्तव्य प्रकट किया। पार्लमेण्ट ने उस वक़्त तक आर्थिक सहायता देने से इन्कार किया जब तक राज्य की तमाम गड़बड़ियाँ दूर न कर दी जायँ। अगर 'दैवी अधिकार' और 'मौन आज्ञापालन' चार्ल्स का नियम था तो 'सुधार नहीं तो आर्थिक सहायता नहीं' रिआया का। आख़िर इस हस्तक्षेप से, जिसे वह अनुचित समझता था, रुष्ट होकर चार्ल्स ने पार्लमेण्ट को बर्ख़ास्त कर दिया और लगभग एक साल तक पार्लमेण्ट की सहायता के बिना बादशाही की। मगर आर्थिक सहायता के बिना राजकाज कैसे संभव होता। विवश होकर सन् १६२६ में दूसरी पार्लमेण्ट एकत्र हुई। इन दोनों पार्लमेण्टों में ऐसे ऐसे अक्लमन्द और हौसले वाले हमदर्द मौजूद थे जिनका नाम आज तक जगमगाते हुए तारों की तरह रौशन है। क़ौम के हमदर्दों का एक झुरमुट था जिसमें इलियट, पिम, सेल्डेन, कुक, हैम्पडेन, स्टुअर्ड जैसे मशहूर लोग मौजूद थे और जैसा हिम्मतवर झुरमुट दुबारा इंग्लिस्तान में न दिखायी दिया। इस पार्लमेण्ट ने जमा होते ही राज्य-व्यवस्था पर हमले करने शुरू किये। जनता के सामने बकिंघम की भर्त्सना की और जब तक कि उनके कष्टों की सुनवायी नहीं होती, आर्थिक सहायता देने से इन्कार किया। आख़िर चार्ल्स ने गुस्से में आकर इस पार्लमेण्ट को भी बर्ख़ास्त किया। लगभग दो साल तक चार्ल्स ने कोई पार्लमेण्ट नहीं बुलायी। आर्थिक ज़रूरतों को अनुचित और अन्यायपूर्ण साधनों से पूरा करता रहा। ज़बर्दस्ती क़र्ज़ लिये जाते थे जिनके अदा करने का वादा किया जाता था मगर झूठा वादा कौन पूरा करता है। अदालतों में जितने मुजरिम आते थे उनको शारीरिक क़ैद के बदले जुर्माने की सज़ा दी जाती थी। टैक्स बहुत सी चीज़ों पर बढ़ा दिया था। लगभग तमाम रोजमर्रा ज़रूरतों का ठेका दे रखा था और

ये ठीकेदार उन चीज़ों को अनाप-शनाप दामों पर देते थे। कोई पक्का और टिकाऊ ढंग था तो वह पार्लमेण्ट की मंजूरी थी लेकिन चार्ल्स पार्लमेण्ट बुलाने से पहलू बचाता रहता था, अगर जब-तब उसे आकस्मिक कठिनाइयों और परेशानियों का सामना न करना पड़ता। उसका कहना था कि पार्लमेण्ट का काम सिर्फ़ यह है कि अपने सामर्थ्य भर बादशाह की जान-माल से मदद करे, मगर व्यवस्था के मामलों में हस्तक्षेप न करे। मुश्किल से दो साल बीतने पाये थे कि एक ज़बर्दस्त मुश्किल आड़े आयी।

फ़्रांस के प्रोटेस्टैण्ट सम्प्रदाय के अनुयायी, जो ह्यूगिनो कहलाते थे, बिस्के की खाड़ी पर ला रोशेल में शरण लिये हुए थे। रिशलू ने, जो बकिंघम की तरह फ्रांस के बादशाह की नाक का बाल बना हुआ था, एक ज़बर्दस्त फ़ौज से उनको घेर लिया। इंग्लिस्तान ने हस्तक्षेप किया मगर किसी ने उस पर ध्यान न दिया। आख़िर उसने घिरे हुए लोगों का साथ दिया और बकिंघम एक बड़ी फ़ौज लेकर ला रोशेल की तरफ़ चला मगर वहाँ ज़बर्दस्त हार खानी पड़ी। जब बकिंघम इस तरह शिकस्त खाकर अपने देश को लौटा तो यहाँ उसकी बड़ी ज़िल्लत हुई। रिआया ने शोर मचाना शुरू किया कि उनके तमाम कष्टों का कारण बकिंघम है और उसकी गर्दन उड़ा देनी चाहिए। आख़िर १७ मार्च १६२८ को चार्ल्स की तीसरी पार्लमेण्ट जमा हुई। इसी पार्लमेण्ट में हमारा क्रामवेल भी हंटिंगडन का मेम्बर होकर आया था। पहला काम जो इस पार्लमेण्ट ने किया वह यह था कि कई अधिवेशनों में धार्मिक, व्यावसायिक, अदालती मामलों पर विचार किया और बहुत बहस-मुबाहसे और ज़बानी लड़ाई-झगड़े के बाद एक अधिकार-पत्र (Petition of Rights) तैयार किया गया और उसकी मंजूरी के लिए चार्ल्स पर ज़ोर डाला गया। यह अहदनामा, अनुबंध, अंग्रेज़ी आज़ादी की छत का दूसरा खंभा है। इसमें चार शर्तें दर्ज थीं—

१) कोई आदमी पार्लमेण्ट की मर्ज़ी के बिना किसी क़िस्म की आर्थिक सहायता देने पर मजबूर न किया जाय।

२) कोई आदमी अदालत के सामने पेश न किया जाय जब तक कि उसकी गिरफ़्तारी की काफ़ी वजह जनता के सामने प्रचारित न कर दी जाय।

३) रिआया की मर्ज़ी के ख़िलाफ़ फ़ौजों की तादाद न बढ़ायी जाय।

४) शान्तिकाल में किसी की सज़ा जंगी क़ानून से न की जाय।

यह देखना आसान है कि इस अधिकार-पत्र ने पार्लमेण्ट के अधिकार बहुत विस्तृत कर दिये। व्यवहारतः व्यवस्था का बड़ा अंश इसकी तरफ़ आ रहा। बादशाह की शक्ति बहुत सीमित हो गयी। चार्ल्स बहुत ही हठी स्वभाव का

आदमी था मगर इस वक्त उसको मजबूरन नर्म होना पड़ा। चुनांचे उसने इस अहदनामे को मंजूर किया और तब पार्लमेण्ट ने उसको चार लाख पौंड दिये।

वेण्टवर्थ और लार्ड जिन्होंने शुरू में बड़ी सरगर्मी दिखाई थी अब पार्लमेण्ट की ऊँची उड़ानों से इतना डरे कि बादशाह की तरफ़ जा मिले और इलियट पार्लमेण्ट का सम्मानित नेता घोषित किया गया। क्रामवेल यद्यपि इन मामलों में शरीक था मगर प्रकट रूप से कोई काम न करता था।

इस पार्लमेण्ट ने चार्ल्स को ऐसा सबक़ दिया कि उसको फिर पार्लमेण्ट बुलाने की हिम्मत न पड़ी और ग्यारह बरस तक वह पार्लमेण्ट के बिना हुकूमत करता रहा। जब रुपये की ज़रूरत महसूस होती कोई अनुचित साधन व्यवहार में लाता। इसमें कोई शक नहीं कि ऐसा करने से वह अधिकार-पत्र की शर्तों का उल्लंघन करता था मगर यह तो उसके बायें हाथ का खेल था। वह बड़ा चालाक और धोखेबाज़ आदमी था। वादे करना जानता था मगर उनको पूरा करना सीखा ही न था। उसने या चार्ल्स के किसी यार-दोस्त ने प्रस्ताव किया कि 'शिप मनी' यानो जहाज़ी टैक्स, जो पुराने ज़माने में समुद्र किनारे के रहनेवालों से लड़ाई के वक़्त वसूल किया जाता था, फिर से जारी किया जाय। यह रुपया समुद्री शक्ति के बढ़ाने और तटों की रक्षा में ख़र्च किया जाता था। गो उस वक़्त न कोई समुद्री लड़ाई थी और न ज़मीनी मगर चार्ल्स ने यह टैक्स लगा ही दिया और इस तरह अपनी फ़िज़ूलख़र्चियों के भट्टे के लिए ईंधन जमा करता रहा। चूंकि यह टैक्स सरासर नाजायज़ था, बहुतेरों ने इसको देने से इन्कार किया और क्रामवेल भी इसी जमात में था। वेण्टवर्थ और लार्ड जो चार्ल्स के तरफ़दार हो गये थे बड़े समझदार और अच्छी राय देनेवाले लोग थे। कहते थे कि बेड़ा हरगिज़ पार न लगेगा अगर वह किफ़ायतशारी से काम न लेगा। लिहाज़ा किफ़ायत और सुलह ग्यारह बरस तक बादशाह का नियम रहा मगर परिस्थितियाँ कुछ ऐसी हुईं कि उसे ख़ामख़ाह पार्लमेण्ट बुलानी पड़ी। सन् १६३८ में स्काटलैण्ड वालों ने गवर्नमेण्ट की सख्तियों और बेजा ख़र्चों से तंग आकर बग़ावत का झण्डा बुलन्द किया। लिहाज़ा इस बग़ावत को दबाने के लिए रुपये की ज़रूरत हुई और पार्लमेण्ट की रज़ामन्दी के बिना कोई ढंग की मदद मिलना मुमकिन न था। चुनांचे वेण्टवर्थ, जो अब अर्ल आफ़ स्टैफ़र्ड मशहूर था, आयर्लैण्ड से बुलाया गया और चार्ल्स की चौथी पार्लमेण्ट जमा हुई। सन् १६४० की १३ अप्रैल को बाक़ायदा तौर पर उसके अधिवेशन शुरू हुए। क्रामवेल भी केम्ब्रिज का मेम्बर होकर आया था। नतीजा यह हुआ कि पार्लमेण्ट ने आर्थिक सहायता देने से क़तई इन्कार किया और चार्ल्स ने उसे सिर्फ़ तेइस दिन के बाद बर्ख़ास्त कर दिया।

शायद बादशाह की क़िस्मत में लिखा हुआ था कि वह एक पार्लमेण्ट बुलाये जो आख़ीर में उसी की जान की फाँसी हो जाय। स्काटलैण्ड ने दुबारा हमला किया और पार्लमेण्ट पाँचवीं बार जमा हुई। क्रामवेल भी इसके मेम्बरों में था। यह पार्लमेण्ट तेरह बरस तक जारी रही जब कि क्रामवेल ही के हाथों उसका ख़ात्मा हुआ।

यह पार्लमेण्ट शुरू ही से सुधार करने पर तुली हुई थी। लिहाज़ा हर एक मेम्बर ने अपने-अपने सूबे की तकलीफ़ों की एक फ़ेहरिस्त तैयार की और वह फ़ेहरिस्तें पार्लमेण्ट में पढ़ी गयीं। उनका असर यह हुआ कि पार्लमेण्ट ने पचास क़ाबिल आदमियों को तैनात किया कि वह हरेक सूबे में जाकर असलियत का पता लगायें और जो कुछ अपने निरीक्षण से प्राप्त करें वह पार्लमेण्ट के सामने पेश करें ताकि उन्हीं के अनुसार सुधार-संशोधन किये जायँ। इस प्रस्ताव ने सरकारी कर्मचारियों को हद से ज़्यादा भयभीत कर दिया क्योंकि सारे देश में उनकी ज़्यादतियों से दुहाई मच रही थी।

लांग पार्लमेण्ट

हम यह बयान कर चुके हैं कि स्काटलैण्ड ने बग़ावत की और उस बग़ावत को दबाने के लिए रुपये की ज़रूरत महसूस हुई और चार्ल्स को मजबूरन पाँचवीं पार्लमेण्ट बुलानी पड़ी। यह पार्लमेण्ट तमाम अँग्रेज़ी पार्लमेण्टों से ज़्यादा मशहूर है और चूँकि वह तेरह बरस तक जारी रही उसे लांग पार्लमेण्ट का नाम मिला। उसने बड़े-बड़े काम किये और बादशाही का पन्ना पलटकर पार्लमेण्ट की हुकूमत की बुनियाद डाली। यह आज जो हम अँग्रेज़ी राज्य-व्यवस्था देखते हैं वह क़रीब क़रीब उसी नमूने पर बनायी गयी है जो उक्त पार्लमेण्ट ने क़ायम किया, गो कुछ हेर-फेर कर दिया गया। इस पार्लमेण्ट में वह मेम्बर जमा हुए जो हुकूमत का सुधार करने पर दिलोजान से तुले हुए थे। क्रामवेल भी इसी जमात में था। हरेक-मेम्बर अपने साथ एक ऐसा खरीता लाया जिसमें उसके सूबे के आदमियों की तकलीफ़ें दर्ज थीं और यह खरीते आम तौर पर पढ़े गये। वह तमाम ज़ुल्म जो शाही मुलाज़िमों के हाथ रिआया को उठाने पड़ते थे, वह तमाम क़र्ज़े जो रिआया से जबरन वसूल किये गये थे, वह तमाम टैक्स जो रिआया पर लगाये गये थे, वह तमाम यातनाएँ जो शाही अदालतों की बदौलत रिआया को सहनी पड़ी थीं और हज़ारों तरह-तरह की शिकायतें उन खरीतों में दर्ज थीं और उनके प्रचार ने रिआया के दिलों में एक बग़ावत का जोश पैदा कर दिया। पार्लमेण्ट ने इतने ही पर बस न किया, पचास लायक़ आदमियों की एक कमेटी तैयार की गयी

जिसको यह काम सिपुर्द किया गया कि वह एक के बाद दूसरे सूबे का दौरा करके पता लगाये कि रिश्राया के खयालात क्या हैं और गवर्नमेंट के अत्याचारों से किस हद तक रिश्राया को तकलीफ़ पहुँची है।

यह तो ज़ाहिर ही है कि चार्ल्स ने जो कुछ ज़्यादतियाँ की थीं वह सरासर अपनी ही मर्ज़ी से नहीं की थीं। कुछ तो मलका हेनरियेटा की सलाह और इशारे से हुई थीं और कुछ स्वार्थी, खुशामदी दरबारियों की मदद से। लिहाज़ा जनता इन लोगों के खून की प्यासी हो रही थी। पार्लमेण्ट मौक़ा ढूँढ़ रही थी कि कब क़ौम के इन बुरा चाहनेवालों को शिकंजे में धर कसे। चूँकि अर्ल आफ़ स्टैफ़र्ड चार्ल्स का खास दोस्त और सलाहकार था, पहले उसी की गर्दन उड़ाने का निश्चय किया गया।

(अपूर्ण)

आवाज़े खल्क़, बनारस में क्रमशः प्रकाशित
१ मई १९०३ से २४ सितंबर १९०३ तक

देशी चीज़ों का प्रचार कैसे बढ़ सकता है

आजकल जब इस सवाल पर बहस छिड़ती है कि हिन्दुस्तानी उद्योग-धन्धों की तरक़्क़ी क्यों नहीं होती तो आम तौर पर यह कहा जाता है कि अभी जनता में देश-प्रेम और क़ौमी हमदर्दी का ख़याल ऐसा नहीं फैला है, कि वह निजी फ़ायदे को नज़रअन्दाज़ करके अपने देश की चीज़ों को, बावजूद उनकी ख़ामियों और बुराइयों के, दूसरे देशों की चीज़ों से बढ़कर जगह दें। इसमें शक नहीं कि यह दलील एक हद तक ठीक है और वास्तविकता पर आधारित है। मगर हम यह हरगिज़ नहीं कह सकते कि हमारी व्यापारिक मन्दी केवल इसी कारण से है। इसके कुछ और कारण भी हैं जो नीचे की पंक्तियों से प्रकट होंगे।

व्यापार के रास्ते में पहली बाधा यह है कि अभी तक हमारे देशवालों को हिन्दुस्तानी उद्योग-धन्धों और कारखानों की ज़रा भी जानकारी नहीं है। जिन लोगों को अख़बार पढ़ने की आदत है वह अलबत्ता कुछ कारखानों से परिचित हैं। आम तौर पर यह हमको नहीं मालूम कि हिन्दुस्तान में कौन-सी चीज़ कहाँ बनती है। इस अज्ञान को दूर करने का सिर्फ़ यही इलाज है कि विज्ञापनों से अधिक से अधिक फ़ायदा उठाया जाय और विभिन्न देशी भाषाओं में आसानी से समझ में आने वाले विज्ञापन प्रकाशित किये जायँ। उनको आम रास्तों पर ज़्यादा से ज़्यादा चिपकाया जाय। हर शहर के प्रतिष्ठित लोगों की सूची बनाई जाय और समय-समय पर विज्ञापन उनके पास भेजे जायँ। कारख़ानों और उनकी जगहों के नाम ख़ूब रौशन कर दिये जायँ। जिन कारख़ानों ने इस तरकीब से फ़ायदा उठाया है उनको आज अच्छी तरक़्क़ी हासिल है। सियालकोट, कानपुर वग़ैरह शहरों में ख़ास-ख़ास चीज़ों के कारखाने ख़ूब रौनक़ पर हैं। देशी दवाइयों के इश्तिहार ख़ूब छपते हैं और आम सड़कों पर भी ख़ूब ज़्यादा दिखायी पड़ते हैं। इसी वजह से हमारी देशी दवाएँ अंग्रेज़ी दवाओं के मुक़ाबले में बहुत ज़्यादा गिरी हुई हालत में नहीं हैं। कई आयुर्वेदिक दवाखानों की ख़ासी आमदनी है। अभी बहुत दिन नहीं बीते कि बनारस में नई चाल के रेशमी कपड़े बनने शुरू हुए और आज काशी सिल्क को लोकप्रियता प्राप्त है। ऐसा कौन-सा सजधज का शौक़ीन आदमी होगा जिसके सन्दूक में दो-एक जोड़े काशी सिल्क के न होंगे। इस तात्कालिक उन्नति और लोकप्रियता का यही कारण है कि हर प्रकार के नमूनों के टुकड़े आस-पास

चारों तरफ़ काफ़ी बड़ी संख्या में रवाना किये गये । कुछ पढ़े-लिखे लोग हर ढंग के कपड़े ले-लेकर दूर-दूर के शहरों में गये और उनकी अच्छाइयाँ और खूबियाँ जनता के दिलों पर अच्छी तरह जमा दीं ।

एक बार हमने एक बज़ाज से पूछा कि तुम कानानोर से देशी कपड़े क्यों नहीं मँगाते। उसने जवाब दिया कि उन कपड़ों की बिक्री में नफ़ा बहुत कम होता है । नफ़े की यह कमी पूँजी के सिद्धान्तों से सम्बन्ध रखती है जिनपर हम इस वक़्त बहस नहीं करना चाहते । कैसा अच्छा होता कि हर शहर के कुछ ज़िन्दादिल, पुरजोश, पढ़े-लिखे लोग कमर कस कर थोड़ी-सी पूँजी जुटा लेते और इस पूँजी से देशी कपड़े मंगाकर मोल के दामों पर बेचते । यह ज़रूरी नहीं है कि यह लोग एक बाक़ायदा दूकान खोलें और दूकान का किराया और दूकानदार की तनख़्वाह बढ़ाकर कपड़े को और भी मँहगा कर दें बल्कि एक उत्साही सज्जन देशप्रेम से काम लेकर आनरेरी मैनेजर हो जायँ और शाम-सबेरे घंटा-दो-घंटा समय इस काम के लिए दें । जब जनता की ओर से उनके प्रयत्नों के लिए प्रशंसा मिलने लगे, देशी कपड़ों की माँग ज़्यादा हो जाय तो पूँजी भी बढ़ाई जा सकती है, दूकान और दूकानदारी का ख़र्चा भी उठाया जा सकता है ।

जो लोग अपनी पूँजी से व्यापारिक सिद्धांतों पर देशी कपड़ों की दूकानें खोलें, उनको चाहिए कि ग्राहकों की आव-भगत, खातिर-तवाज़ो अच्छी तरह करें । देशी चलन के पाबन्द लोगों के लिए दो-एक बीड़ा पान, दो-चार इलायचियाँ, ज़रा-सी तम्बाकू और अंग्रेज़ी चलनवालों के लिए एक-आध सिगरेट या एक प्याली चाय काफ़ी होगी । इस थोड़े से ख़र्चे में यक़ीन है कि ग्राहकों की संख्या बहुत जल्द बढ़ जायगी क्योंकि लोगों को इस दूकान से एक ख़ास प्रेम हो जायगा । दूकानदार भी पढ़ा-लिखा होना चाहिए जो खरीदारों से सभ्यतापूर्वक बातचीत कर सके । ऐसे दूकानदारों को ग्राहकों के साथ उस बेग़रज़ी और रूखेपन से नहीं पेश आना चाहिए जिससे आमतौर पर मामूली सौदागर पेश आया करते हैं । अगर इन दूकानों पर दो-एक अंग्रेज़ी और उर्दू अख़बार भी रखने का बन्दोबस्त कर दिया जाय तो यह एक और दिलचस्पी बहुत से ख़रीदारों को खींच लायेगी । पढ़े-लिखे लोग यहाँ आकर बैठेंगे तो मौक़े और वक़्त का तक़ाज़ा यही होगा कि व्यापार की उन्नति के बारे में बातचीत हो । और इस बातचीत से लोगों के दिलों में जोश पैदा होगा और यह जोश देशी व्यापार को उन्नति देने वाला होगा ।

कहीं-कहीं देशी चीज़ों का जिस जोश और हमदर्दी से स्वागत किया गया है, वह उम्मीद दिलाता है कि अब हिन्दुस्तान का व्यापारिक जागरण बहुत दूर नहीं । लाहौर के आर्य समाज मेम्बरों को सर से पैर तक हिन्दोस्तान की बनी

चीज़ों से सजे हुए देखना सचमुच बहुत दिलचस्प और याद रखने के क़ाबिल दृश्य था। हम अपने समाजी भाइयों के देश-प्रेम और क़ौमी जोश के हमेशा से प्रशंसक रहे हैं और हमको उम्मीद है कि हमारी व्यापारिक उन्नति में यह लोग उसी सम्मान और धन्यवाद के अधिकारी होंगे जिसके कि वह राष्ट्रीय और सांस्कृतिक सुधारों में हैं। बम्बई और कलकत्ता जैसे शहरों में स्वदेशी आन्दोलन बड़े ज़ोरों के साथ किया जा रहा है मगर हमको उससे कई गुना ज़्यादा खुशी इस बात पर होती है कि हमारे सोये हुए सूबे में भी इस तरह की कमज़ोर आवाज़ें कभी-कभी सुनायी दे जाती हैं। हमको यकीन है कि इस साल बनारस में कांग्रेस के अधिवेशन का होना बनारस व लखनऊ व कानपुर के व्यापार के लिए बहुत अच्छा साबित होगा। मगर केवल पढ़े-लिखे लोगों के संरक्षण और सहानुभूति से हमारे व्यापार को भी यथेच्छ उन्नति नहीं हो सकती जब तक कि आबादी का वह बड़ा हिस्सा भी जो मुल्की और क़ौमी मामलों की तरफ से बेख़बर है, इस अच्छे काम में हाथ न बटाये। पढ़े-लिखे लोगों के नाम उंगलियों पर गिने जा सकते हैं। उनकी रुचि और उनकी काल्पनिक आवश्यकताओं ने कुछ ऐसा रंग पकड़ लिया है, कि अभी उनको पूरा करने के लिए हमारे व्यापार को एक लम्बी अवधि दरकार है।

हमारी आबादी का बहुत बड़ा हिस्सा देहातों में आबाद है, जिसमें बिना किसी अतिरंजना के निन्यानबे फ़ीसदी तो ऐसे हैं जो अलिफ के नाम बे भी नहीं जानते और जिनको शहर में आने का बहुत कम इत्तफाक़ होता है। लिहाज़ा शहरों में स्वदेशी दूकानों का खुलना, चाहे वह कैसे ही अच्छे उसूलों पर क्यों न हों, व्यापार को बहुत लाभ नहीं पहुँचा सकता। ऐसी दशा में उचित है कि हमारे व्यापारी भी वही ढंग अख़्तियार करें जो अरसे से विलायतियों ने अख़्तियार किया है।

पाठक जानते हैं कि देहाती किसानों की ज़्यादातर ज़रूरतें क़र्ज़ लेकर पूरी हुआ करती हैं। अगर आज आप किसी किसान को पचास रुपये की चीज़ उधार दे दीजिए तो वह बिना यह सोचे कि मुझमें इस चीज़ के ख़रीदने की योग्यता है या नहीं, फ़ौरन मोल ले लेता है और फिर किसी न किसी तरह रो-धोकर उसकी क़ीमत अदा करता है। विलायतियों ने देहातियों के इस स्वभाव को बखूबी समझ लिया है। चुनांचे वह जत्थे के जत्थे आते हैं, शहरों में विदेशी और रद्दी माल सस्ते दामों पर ख़रीदते हैं और तब गाँव में जाकर किसी एक मोतबर आदमी की ज़मानत पर किसानों के हाथ सौदा बेचते हैं। किसान अपनी माली हालत से बिलकुल बेख़बर होता है। उसमें दूरदर्शिता नहीं होती। झुंड के झुंड कपड़े ख़री-

दने को टूट पड़ते हैं। आजकल अगर आप किसी गाँव में निकल जाइए तो बजाय इसके कि लोग गजी-गाढ़े पहने हुए नज़र आएँ कोई तो इटली की बनी हुई बनियाइन पहने हुए दिखायी देता है, कोई अमरीका की बनी हुई चादर। वही चीज़ जो बाज़ार में मारी-मारी फिरती है, देहात में जाकर हाथों हाथ बिक जाती है और यह इसी वजह से कि किसानों को ख़रीदते वक़्त दाम नहीं देना पड़ता। इन विलायतियों ने कितने ही जुलाहों को तबाह कर डाला और जुलाहों की तबाही से पूर्वी सूत की माँग जाती रही। इस तरह देशी रुई को मजबूरन इंगलिस्तान की खुशामद करना पड़ी।

हमारे देशी व्यापारियों को वह दिक़्क़तें हरगिज़ नहीं पेश आ सकतीं जो विलायतियों को पेश आती हैं। उनको सैकड़ों कोस की मंज़िल तय करना पड़ती है, गाँव में प्रभाव रखने वाले लोगों का सहारा ढूँढना पड़ता है और कभी-कभी क़ीमत की वसूली से हाथ धोना पड़ता है। देशी व्यापारियों को इन कठिनाइयों के बदले में सिर्फ़ इतना करना है कि गाँव में मोतबर एजेण्टों को रवाना करें, उनको उधार माल बेचने की इजाज़त दें और जहाँ तक हो कम मुनाफ़ा लें। देहाती आम तौर पर ईमानदार होते हैं, सौदा ले लिया तो उसकी क़ीमत अदा करने में गड़बड़ी नहीं करते। अगर खुदा न ख्वास्ता उनका ईमान ज़रा डगमगाया भी तो वह डरपोक ऐसे होते हैं कि दो-चार धमकियों में सीधे रास्ते पर आ जाते हैं। हमने देखा है कि विलायतियों को दाम वसूल करने में बहुत कम दिक़्क़त होती है। बेचारा किसान सूद पर क़र्ज़ लाता है और निश्चित समय पर चीज़ की क़ीमत अदा करता है। जब विलायतियों को वसूली में कोई दिक़्क़त नहीं होती तो कोई वजह नहीं कि हमारे देशी एजेण्टों को इस काम में कोई दिक़्क़त हो। बस जाड़े में चीज़ दे आये, उसकी क़ीमत फ़सल तैयार होने पर वसूल कर ली। और गर्मी में जो माल बेचा, उसकी क़ीमत ऊख पेरने के वक़्त वसूल कर ली, न कोई ठकठक न कोई बखेड़ा। व्यापार का यह ढंग उससे कहीं ज़्यादा लाभदायक और देशभक्तिपूर्ण है जिसको हुण्डी कहते हैं। बनारस, मिर्ज़ापुर, इलाहाबाद वग़ैरह शहरों में हुण्डी का आम रिवाज है। इसका तरीक़ा यह है कि हर एक गाँव में महाजन की तरफ़ से कुछ लोग नौकर होते हैं। उनका काम यह है कि देहातियों को रुपया क़र्ज़ दें और उनसे एक निश्चित अवधि के भीतर एक का सवाया वसूल कर लें। व्यापार के इस ढंग से चाहे महाजन को फ़ायदा हो, मुल्क या क़ौम को सरासर नुकसान होता है। क्योंकि बेचारे किसान को दोनों तरफ़ से नुक़सान उठाना पड़ता है। उधर तो मुग़ल सौदागरों को एक का डेढ़ दिया और इधर अपने महाजनों को एक का सवाया देना पड़ा। बेचारे की छोटी-सी आमदनी महाजनों ही भर को हो गयी।

—ज़माना, जून १९०५

स्वदेशी आन्दोलन

हिन्दुस्तान के लगभग सभी प्रतिष्ठित पत्रों और पत्रिकाओं ने इस देशभक्ति-पूर्ण आन्दोलन का समर्थन किया है, और जो पहले थोड़ा हिचकिचा रहे थे उनका भी अब विश्वास पक्का होता जाता है। मगर अभी अक्सर भलाई चाहनेवालों की ज़बान से सुनने में आता है कि वह उन मुश्किलों का सामना करने के क़ाबिल नहीं हैं जो आन्दोलन के रास्ते में निश्चय ही आयेंगी। मिसाल के लिए कपड़ा जितना हिन्दुस्तान में बनता है, उसका चौगुना विलायत से आता है, तब जाकर इस देश की ज़रूरतें पूरी होती हैं। क्योंकर सम्भव है कि यह देश बिना वर्षों के निरन्तर अभ्यास और जिगरतोड़ कोशिश के परदेसी कपड़ा बिलकुल रोक दे। मिलें जितनी दरकार होंगी उसका तख़मीना एक साहब ने चालीस करोड़ रुपया बतलाया है। हम समझते हैं यह अत्युक्ति है क्योंकि एक दूसरे पर्चे में यह तख़मीना तीस ही करोड़ किया गया है। कौन कह सकता है कि यह देश इतनी पूँजी लगाने के लिए तयार है। अगर यह मान लिया जाय कि पूँजी मिल जायगी तो फिर सवाल होता है, क्या किया जायगा। रुई जितनी यहाँ पैदा होती है, उसमें से दो हिस्से तो जापान ले लेता है और एक हिस्सा हिन्दुस्तान के हाथ लगता है। विलायत यहाँ की रुई बहुत कम ख़रीदता है। अगर मान लीजिए सब रुई जो इस वक़्त पैदा होती है, यहीं रोक ली जाय तो भी हमारी ज़रूरतें ज़्यादा से ज़्यादा आधी पूरी होंगी। यानी एक सौ पाँच करोड़ गज़ कपड़ों के लिए हम फिर भी विलायत के मुहताज रहेंगे। यह आशा करना कि दो-चार बरस में किसान रुई की खेती को बढ़ाकर यह मुश्किल भी आसान कर देंगे, एक हद तक सपना मालूम होता है। फिर, यहाँ की रुई से महीन कपड़ा नहीं बुना जा सकता और हिन्दुस्तान में शरीफ़ लोग ज़्यादातर महीन कपड़े इस्तेमाल करते हैं। उनके पहनावे के ढंग में यकायक क्रान्ति पैदा कर देना भी कठिन है। यह चन्द बातें ऐसी हैं जो अभी कुछ अर्से तक हमारे संकल्पों में विघ्न डालेंगी। मगर तसवीर का दूसरा पहलू ज़्यादा रौशन है। पश्चिमी हिन्दुस्तान में ज़्यादातर कपड़ा देशी इस्तेमाल किया जाता है, विलायती कपड़े का ख़र्च बंगाल और हमारे सूबे में सबसे ज़्यादा है। हम महीन कपड़ों के बहुत ज़्यादा शौक़ीन नहीं हैं। हाँ, बंगालवाले, क्या मर्द क्या औरत, ऐसे कपड़ों पर जान देते हैं। उनमें भी ख़ास तौर पर वही सज्जन जो पढ़े-लिखे हैं। मगर जब यह समुदाय

अपने जोश में हर तरह का बलिदान करने के लिए तैयार है, तो क्या वह महीन को जगह मोटे कपड़े न पहनेगा। क़ायदे की बात है, कि शहर के छोटे लोग बड़े लोगों के कपड़ों और रहन-सहन की नक़ल करते हैं। जब बंगाल के बड़े लोग अपना ढंग बदल देंगे तो मुमकिन नहीं, कि दूसरे लोग भी वैसा ही न करें। हमारे सूबे में तंज़ेब और मलमल का इस्तेमाल कुछ दिनों से उठता जाता है और उसके क़द्रदाँ या तो कुछ पुराने ज़माने के शौक़ीन-मिज़ाज बूढ़े हैं या बाज़ारी बेफ़िकरे। हाँ शरीफ़ों की औरतें अभी तक उन पर जान देती हैं, मगर उम्मीद है कि वह अपने मर्दों के मुक़ाबिले में बहुत पिछड़ी न रहेंगी। विशेषतः जब मर्दों की तरफ़ से इसका तक़ाज़ा होगा। इस तरह महीन कपड़े का ख़र्च कम हो जायगा और जब मोटा कपड़ा इस्तेमाल में आयेगा तो साल में बजाय चार जोड़ों के दो ही जोड़ों से काम चलेगा। अगर शहरों में विदेशी चीज़ों का रिवाज कम होने लगे तो देहातों में आप से आप कम हो जायगा। हम अपने सूबे के तजुर्बे से कह सकते हैं कि यहाँ देहाती ज़्यादातर जुलाहों का बुना हुआ गाढ़ा इस्तेमाल करते हैं और जाड़े में गाढ़े की दोहरी चादरें। उनको परदेसी कपड़ों की ज़रूरत ही नहीं महसूस होती। गो इसमें कोई शक नहीं कि कुछ दिनों से काबुलियों और मुग़लों ने वहाँ जा-जा कर विदेशी चीज़ों का रिवाज बढ़ाना शुरू कर दिया है। यह मौक़ा है कि पढ़े-लिखे लोग, जिनमें से अधिकतर देहाती होते हैं, जब अपने मकान को जायँ तो अपने पड़ोसियों को भला-बुरा सुझाकर सीधे रास्ते पर ले आएँ और जब ज़रूरत देखें रुई की खेती को बढ़ाने के लिए कहें।

रुई के बाद चीनी या शक्कर दूसरी जिन्स है जो हम पाँच करोड़ रुपये सालाना की बाहर से मँगाते हैं। यह खेद की बात है। हमारे देश के कारखाने टूटते जाते हैं मगर इसका जवाबदेह सिर्फ तालीमयाफ़्ता फ़िरक़ा है। देहाती बेचारे तो विलायती शक्कर को हाथ भी नहीं लगाते, और बहुतों ने तो बाज़ार की मिठाई खाना छोड़ दिया। और शक्कर ऐसी जिन्स है, जिसकी पैदावार को आसानी से बढ़ाया जा सकता है। ज़रा भी माँग ज़्यादा हो जाय तो देखिए ऊख की खेती ज़्यादा होने लगती है। किसान मुँह खोले बैठे हैं। यही तो एक जिन्स है, जिससे वह अपनी ज़मीन का लगान अदा करते हैं। कपड़े के रोकने में चाहे कितनी ही दिक़्क़तें हों मगर शक्कर का बन्द होना तो ज़रा भी कठिन नहीं। हम उन लोगों पर हँसा करते थे जो हम लोगों को विलायती शक्कर खाते देखकर मुँह बनाते थे। हमारी नज़रों में वह लोग असभ्य मालूम होते थे। अब हमको तजुर्बा होता है कि वह ठीक रास्ते पर थे और हम ग़लती पर। विदेशी चीज़ों का रिवाज सभ्य लोगों का डाला हुआ है और अगर स्वदेशी आन्दोलन को सफलता होगी तो उन्हीं के किये होगी।

—आवाज़े ख़ल्क़, १९ नवम्बर १९०५

तुर्की में वैधानिक राज्य

उन्नीसवीं सदी में एक बार आज़ादी की हवा चली तो उसने इटली, फ्रांस, स्विटज़रलैण्ड, संयुक्तराष्ट्र अमरीका आदि देशों को आज़ाद कर दिया। इस हवा का असर योरप ही तक सीमित रहा मगर बीसवीं सदी के आरम्भ में जो हवा चली है वह अपेक्षाकृत बहुत ज़्यादा स्वास्थ्यप्रद और शक्तिशाली है। इस थोड़ी-सी अवधि में उसने फ़ारस को आज़ाद कर दिया है और अब ख़बरें आ रही हैं कि तुर्की की बूढ़ी-पुरानी हड्डियों में भी उसने रूह फूँक दी।

तुर्की की सल्तनत योरप में स्थित होने के बावजूद एशियाई सल्तनत है और योरप के इतिहासकार और विचारक उसे बहुत दिन से निरंकुश शासन का केन्द्र समझते आये हैं। कोई उसे योरप का बुड्ढा आदमी कहकर पुकारता था, कोई दूसरा ही ख़िताब देता था। मगर सुल्तान अब्दुल हमीद की इस उदार व्यवस्था ने सब की आँखें खोल दी हैं। योरप वालों के नज़दीक यह पक्की बात थी कि आज़ादी का पौधा सिर्फ योरप की सरज़मीन में ही फूल-फल सकता है। एशिया की ज़मीन और आबहवा उसके लिए ठीक नहीं है। लार्ड मॉरले जैसा विद्वान् भी खुलेआम यह ख़याल ज़ाहिर करने से न चूका। मगर तुर्की और फ़ारस दोनों ही ने इस पक्की बात की जड़ खोद कर फेंक दी और साबित कर दिया कि जिस आज़ादी और आईन (विधान) के लिए योरप में बादशाहों के सर कटे हैं और रिआया के खून की नदियाँ बही हैं, वह आज़ादी और आईन एशिया में बिला शोर-शर के मिल जाते हैं। जनता के विचार और राय को जो महत्व इस अवसर पर इन दोनों देशों में दिया गया है वह योरप की दुनिया में कहीं दिखायी नहीं देता। इसमें कोई शक नहीं कि तुर्की के सुल्तान ने यह विधान बिना काफ़ी प्रयोग और परीक्षा के नहीं दे दिया। मिस्र और हिन्दोस्तान की तरह वहाँ भी कुछ दिनों से नौजवान देश-भक्तों की एक संस्था पैदा हो गयी थी जो लिखकर, बोलकर वैधानिक राज्य की ज़रूरत रिआया को समझाती रहती थी और वह सख़्तियाँ जो आज़ादी के पहले झेलनी पड़ती हैं, वहाँ भी खूब की गयीं। अख़बारों की ज़बानें बन्द की गयीं, नौजवान देशभक्तों को फ़सादी और बाग़ी ख़याल किया गया और कितनों ही को देशनिकाला भी हुआ। पुलिस ने मनमाना राज किया और कमिश्नर पुलिस ने खूब दिल खोलकर नवाबी की। उपद्रव हुए। यह सब कुछ होना ज़रूरी था, और

हुआ। उसका होना इसकी दलील थी कि रिआया अपने इरादों में मज़बूत है, और वह जिस चीज़ की माँग कर रही है उसको लिये बग़ैर न मानेगी। सुल्तान अब्दुल हमीद इस तमाम कशमकश को एक सच्चे और दूरदर्शी राजनीतिज्ञ की दृष्टि से न कि एक निरंकुश शासक की दृष्टि से देखते रहे और जब उन्हें विश्वास हो गया कि रिआया अपने इरादे में मज़बूत है तो उन्होंने और ज़्यादा इम्तहान लेना मुनासिब न समझा। एक पूरी क़ौम के विचारों की गति को समझना बहुत मुशकिल काम है और इन दमनकारी दुष्प्रवृत्तियों के लिए सुल्तान पर कोई अभियोग नहीं लगाया जा सकता क्योंकि यही वह तरीक़ा है जिससे रिआया के जीवट और मज़बूत इरादे की जाँच हो सकती है। वह दिन मुबारक था जब कि पूरब के एक बादशाह ने, जिसे मज़हब के ख़याल से अल्लाह का अक्स समझा जाता है, और जो बारह सदियों से किसी क़ैद और क़ायदे का पाबन्द न था, कुरान शरीफ़ पर हाथ रखकर क़सम खायी कि मैं रिआया की राय और मशविरे पर अमल करूँगा और तयशुदा क़ानून से कभी अलग न होऊँगा। वह दिन मुबारक था और शायद दुनिया के इतिहास में उससे ज़्यादा भाग्यशाली और शुभ दिन दूसरा न होगा। आज तुर्की का हर आदमी सुल्तान के नाम पर गर्व कर रहा है और हर तरफ़ से सदाएँ आ रही हैं कि खुदा सुल्तान अब्दुल हमीद को हमेशा हमेशा अमन-चैन से रक्खे। वह देशभक्त जो देशनिकाले की मुसीबतें झेल रहे थे, खुश-खुश अपने प्यारे वतन को वापस आ रहे हैं। वह अख़बार जिनकी ज़बानें बन्द थीं और वह भाषण देनेवाले जिनके होठों पर जबरन ख़ामोशी की मुहर लगा दी गयी थी आज हर जगह हर तरफ़ पुकार पुकार कर आज़ादी का स्वागत कर रहे हैं और खुशियाँ मना रहे हैं। आज़ादी का झंडा बुलंद है और वह सब दमनकारी क़ानून जो कुछ दिन पहले जारी किये गये थे, रद किये जा रहे हैं। पुलिस अपने करतूत का फल भोग रही है और कमिशनर पुलिस अपने दिनों को रो रहे हैं। ऐ तुर्की के रहनेवालो, ऐ हमारे एशियाई भाइयो, तुम खुशक़िस्मत हो, तुम दिलेर हो, तुम्हें यह आईन और यह आज़ादी मुबारक हो!

देखिए हमारे मुसलमान देशभाई लायल्टी का राग कब तक अलापते हैं, कब तक नौकरियों-चाकरियों के लिए सिजदे में सर झुकाये और दुआ का हाथ उठाये रहते हैं। क्या ताज्जुब है खिलाफ़त के मुक़ाम की पुरज़ोर हवा का असर उनके दिलों पर भी हो। अगर दिल में मर्दाना भाव बाक़ी है तो ज़रूर ऐसा होगा। सुल्तान ने लायल्टी के जल्सों पर यह आईन नहीं अता किया, उसका राज़ ही कुछ और है। हमने लायल्टी की क्या मिट्टी पलीद की है! आँखें खोलकर देखो कि वह लोग जो एक महीना पहले तक डिसलायल और फ़साद करनेवाले और बाग़ी और गर्दन उड़ा देने के क़ाबिल थे, वह आज देशभक्त हैं और क़ौम के रहनुमा हैं और आज़ादी की इमारत के मेमार हैं।

—ज़माना, अगस्त १९०८

कृष्णा कुंवर

हमारे पास 'हिन्दुस्तान के मशहूर लिखनेवाले, हकीम बरहम साहब का उपन्यास 'कृष्णा कुंवर' रिव्यू के लिये आया है। इसके पहले कि हम उस पर कुछ लिखने का साहस करें अच्छा होगा कि हम उपन्यास के सिद्धान्त और अंगों को पाठकों के सामने प्रस्तुत करें। उपन्यास अंग्रेज़ी साहित्य-आलोचकों की राय में शब्दचित्रों का एक संग्रह होता है। कहानी और उपन्यास में केवल यह अंतर होता है कि कहानीकार केवल घटनाओं का चित्रण करता है और उपन्यासकार घटनाओं को रंगीन शब्दों में पेश करके कोशिश करता है कि उनकी बोलती हुई तसवीर आँखों के सामने खींच दे। उपन्यास का क्षेत्र सम्प्रति बहुत विस्तृत हो गया है। कहीं तो उसमें ज़िन्दगी के किसी अहम मसले पर बहस की जाती है, जिसकी मुहम्मद अली साहब ने बड़ी कामयाबी के साथ कोशिश की है, कहीं उसमें मानव स्वभाव की व्याख्या की जाती है, हृदय के भावों, आशाओं और निराशाओं के नक्शे उतारे जाते हैं, कहीं नैतिक बुराइयों को दूर करने की कोशिश की जाती है। उपन्यासकार कभी मित्र का काम करता है और कभी उपदेशक का, कभी दार्शनिक बनता है कभी आयुर्वेद का पंडित। इस तरह उपन्यास खुद एक विधा हो गई है और साहित्य की अन्य विधाओं की भाँति उसके भी विविध प्रकार हैं—जैसे सामाजिक उपन्यास, जासूसी उपन्यास, आचार और नैतिकता के उपन्यास, ऐतिहासिक उपन्यास आदि। फ़िलहाल हमको दूसरी क़िस्मों से कोई बहस नहीं। हमारे पास रिव्यू के लिए जो उपन्यास आया है वह ऐतिहासिक है क्योंकि उसमें इतिहास से सहायता ली गई है और हम नीचे की पंक्तियों में देखेंगे कि ऐतिहासिक उपन्यास के रूप में वह कितने महत्व का अधिकारी है। ऐतिहासिक उपन्यास की परिभाषा इस तरह की जा सकती है कि वह बीती हुई घटनाओं और जिस युग में वे घटनाएँ हुईं उनका एक रंगीन फोटो है। लेखक महोदय ने केवल ऐतिहासिक घटनाओं का एक बहुत धुँधला ख़ाका खींचा है जिसको देखकर न घटनाओं ही का चित्र आँखों के सामने आता है और न उस युग के सामाजिक जीवन का। इसमें कोई संदेह नहीं कि कहीं-कहीं रंग भी चढ़ाया है मगर बहुत फीका। ऐतिहासिक निष्कर्ष सामान्य रूप से यह निकलता है कि उस युग में आपसी फूट और भेद-भाव का बाज़ार गर्म था। बस। इतनी बात तो हर व्यक्ति

मामूली इतिहास के अध्ययन से भी जान सकता है।

मगर यह हमारी हठधर्मी है अगर हम हकीम साहब को इस बात के लिए दोष दें कि उन्होंने इस उपन्यास को ऐतिहासिक उपन्यास की हैसियत से किसी ऊँचे स्थान पर पहुँचाने में सफलता नहीं पाई। उन्होंने इस बात की कोशिश ही नहीं की। वह भूमिका में खुद कहते हैं, 'इस उपन्यास के प्रकाशन में मेरा असल उद्देश्य यह है कि फ़ख़्रउलमुल्क आलीजनाब नवाब मीरख़ां साहब बहादुर, रियासत टोंक, पर जो अभियोग इतिहासकारों ने लगाया है वह उठ जाये और मालूम हो जाये कि कृष्ण कुँवर की हत्या में दरअसल किसका क़सूर था।' इस प्रकार इस उपन्यास का उद्देश्य सामान्य न होकर विशेष है और इस ऐतिहासिक अभियोग का खण्डन करने के लिए उचित था कि हकीम साहब इतिहास के पन्नों की ओर ध्यान देते और कुल घटनाओं की जाँच-पड़ताल निष्पक्षता से करके एक ज़ोरदार गवेषणापूर्ण लेख लिखते। तब शायद इस अभियोग का खण्डन हो सकता। मगर कहानी से किसी ऐसी ऐतिहासिक घटना का खण्डन करना, जिसको बहुत से प्रामाणिक और विश्वसनीय इतिहासकारों ने सच्चा साबित कर दिया हो, एक व्यर्थ की कोशिश है। बल्कि यों कहिए कि ऐतिहासिक घटनाएँ कहानी में मिलाने से उनका महत्व और भी कम हो जाता है क्योंकि जनसाधारण स्वाभाविक रूप से कहानी को यथार्थ से दूर समझते हैं। अगर हम यह भी मान लें कि इस तरह के उपन्यास उर्दू भाषा में नहीं लिखे गये हैं तो भी हकीम साहब का उद्देश्य पूरा नहीं होता क्योंकि इस किताब के पढ़ने से पाठकों को मीरख़ाँ साहब से किसी तरह की हमदर्दी नहीं पैदा होती। इस बात को स्पष्ट करने के लिए आवश्यक है कि थोड़े से शब्दों में प्लाट बयान किया जाय।

उपन्यास की नायिका महाराणा उदयपुर, मेवाड़, की इकलौती लड़की थी। उसकी मंगनी जोधपुर के राजा भीमसिंह से हुई थी मगर शादी से पहले राजा की मृत्यु हो गई। उसका भाई मानसिंह उसकी जगह गद्दी पर बैठा। संयोगवश, स्वर्गीय राजा की एक रानी गर्भवती थी और सवाई सिंह ने, जो जोधपुर का जागीरदार होने के अलावा भीमसिंह के ज़माने में मंत्री भी रह चुका है, जोधपुर के तमाम रईसों को चम्पावत नामक स्थान पर जमा करके इस बात को ज़ाहिर किया। इस पर मानसिंह ने स्वीकार किया कि अगर रानी के कोई लड़का हुआ तो वह मेरा उत्तराधिकारी होगा। नियत समय पर रानी के एक लड़का पैदा हुआ जिसका नाम धोंकलसिंह रक्खा गया। चूँकि रानी को अपने लड़के की जीवन-रक्षा के संबंध में आशंका थी उसने उसको चोरी-चोरी सवाई सिंह के पास भेज दिया जिसने दो बरस तक गुप्त रूप से उसका लालन-पालन किया।

उस वक़्त उसने फिर जोधपुर के रईसों को जमा किया और मानसिंह ने दुबारा वादा किया कि मैं अपने निश्चय पर दृढ़ रहूँगा। मगर जब धोंकलसिंह बालिग़ हुआ तो राजा अपने क़ौल से फिर गया और छान-बीन करनी शुरू की कि धोंकलसिंह स्वर्गीय भीमसिंह का बेटा है या नहीं। रानी के मातृप्रेम पर भय की जीत हुई। उसने धोंकलसिंह की माँ होने से साफ इन्कार किया। सवाईसिंह, जिसकी हज़ारों उम्मीदें धोंकलसिंह के गद्दी पर बैठने से जुड़ी हुई थीं, घटनाओं के इस तरह पलट जाने से बहुत गुस्सा हुआ। उसने खुल्लमखुल्ला मानसिंह के ख़िलाफ़ बग़ावत का झण्डा बुलंद किया और यह सोचने लगा कि किस तरह राजा को जड़ से उखाड़ दूँ। उसको बहुत जल्द एक तरकीब सूझ गई।

चूँकि कृष्ण कुँवर की मंगनी स्वर्गीय राजा भीमसिंह से हुई थी अब उसके जाति-अभिमान का तक़ाज़ा था कि उसका उत्तराधिकारी मंगेतर को ब्याह लाये। वंश की प्रतिष्ठा यह कब सह सकती थी कि जोधपुर की मंगेतर को कोई और ब्याह ले जाये। अतः मानसिंह महाराजा मेवाड़ से बातचीत कर रहा था। सवाईसिंह ने मानसिंह को चोट पहुँचाने के लिए इस नाज़ुक मामले को पसंद किया।

जयपुर का राजा जगतसिंह एक विलासी विषयी व्यक्ति था। सवाईसिंह ने उसके सामने कृष्ण कुँवर के दाहक रूप की खूब तारीफें कीं और धोंकलसिंह की खूबें वकालत की। आख़िर राजा बिना उसे देखे ही इस मेवाड़ की देवी का प्रेमी बन गया। इस तरह सवाईसिंह ने दो राज्यों में फूट का बीज बो दिया।

चूंकि राजा जगतसिंह अकेले राजा मानसिंह का मुकाबला न कर सकता था उसने बहुत रुपया खर्च करके नवाब मीरखाँ साहब (जिनको इल्ज़ाम से बरी करने के लिए यह किताब लिखी गई है) और मरहठे सदाशिव राव और कुछ दूसरे राजाओं को अपना साथ देने पर राज़ी कर लिया। इधर सवाईसिंह ने अपनी व्यवहार-चातुरी से मानसिंह के दोस्तों और मददगारों को तोड़कर उन्हें अपना तरफ़दार बना लिया। चुनांचे जब लड़ाई शुरू हुई तो मानसिंह के साथ चलने वाले सिर्फ़ चार सरदार रह गये। तो भी उसने रणक्षेत्र से मुँह मोड़ना मर्दानगी के ख़िलाफ़ समझकर खूब बहादुरी दिखलाई। जब उसकी तमाम फ़ौज वहीं ढेर हो गई तो उसने लाचार होकर अपने वफ़ादार सरदारों की सलाह से भागकर जोधपुर के क़िले में शरण ली। जयसिंह इस विजय से फूल उठा। एक दूत अपना संदेश लेकर राजा मेवाड़ के पास भेजा और खुद जोधपुर के क़िले पर घेरा डालने की तैयारियाँ करने लगा।

इसी बीच नवाब मीरखाँ साहब के जासूसों ने ख़बर पहुँचाई कि जयपुर का

खज़ाना अब बिल्कुल ख़ाली है। इतना सुनना था कि नवाब साहब ने फौरन जयपुर पर धावा कर दिया। जगतसिंह तो कोसों की दूरी पर पड़ा हुआ घेरे की तैयारियाँ कर रहा था, बस ख़ाँ साहब ने ख़ाली मैदान पाकर ख़ूब बढ़ बढ़कर हाथ मारे। शाही ख़ज़ाने का भी वारा-न्यारा किया और रिआया को सताने से जो कुछ हाथ लगा वह ले-देकर अपना रास्ता लिया।

अब लेखक महोदय से हमारा यह प्रश्न है कि यह हरकत नवाब साहब की वफ़ादारी का दर्पन है या बेवफ़ाई का? पहले तो जयपुर का ख़ज़ाना भरा देखकर उसकी तरफ ढले। जब देखा कि अब उससे और कुछ हाथ लगता नज़र नहीं आता तो पुराने सम्बन्ध बिल्कुल भूल गये और आस्तीन का साँप होकर बेचारे जगतसिंह ही को काट खाया। यह कहाँ की पालिसी है। अगर इस तबाही और बर्बादी से उनका मतलब जोधपुर की भलाई करना था तो इस लड़ाई की क्या ज़रूरत थी? लड़ाई-झगड़े के बग़ैर भी फ़ैसला हो सकता था। लड़ाई के वक़्त जगतसिंह को सलाम करके मानसिंह से आ मिलते। जगतसिंह इस तरह निहत्था होकर मुक़ाबले की हिम्मत न करता, न लड़ाई होती न झगड़ा। इसमें कोई शक नहीं कि इस तरह काम करने से नवाब साहब पर दग़ाबाज़ी का अभियोग लगता मगर अब तो एक छोड़ तीन-तीन अभियोग लगते हैं। दग़ाबाज़ी, बर्बादी और मक्कारी। क्योंकि लेखक महोदय एक ऐतिहासिक घटना को झुठलाने बैठे थे इसलिए मुनासिब होता कि वह नवाब साहब के इस व्यवहार का स्पष्टीकरण करते। इतिहास न झूठा होता न सही, उनका मतलब तो हासिल हो जाता। मगर सारी किताब में इस घटना पर रोशनी डालने की कहीं कोशिश नहीं की गई। संक्षेप में, यह कार्यपद्धति चाहे व्यवहार-चातुरी पर आधारित हो चाहे वीरता या प्रयोजन पर मगर इसमें कोई संदेह नहीं कि मीर साहब के सिर पर यह अभियोग अनन्त काल तक रहेगा। हम यह नहीं कहते कि इतिहास के पन्नों में ऐसे उदाहरण नहीं हैं। यूरोप वालों और अन्य सभ्य राष्ट्रों के इतिहास इन घटनाओं से भरे पड़े हैं। मगर जहाँ ऐसे उदाहरण होते हैं, हमेशा अपमान की दृष्टि से देखे जाते हैं और कोई व्यर्थ में पब्लिक के सामने रूखे-फीके पचड़े गाकर कौवों को हंस बनाने की कोशिश नहीं करता।

जयपुर का सत्यानाश करने के बाद नवाब साहब जोधपुर की ओर झुके। राजा बेचारा हार खाकर मुँह खोले बैठा था। मीर साहब की दोस्ती को एक अप्रत्याशित वरदान समझा। बड़ी अच्छी तरह पेश आया, यहाँ तक कि मीर साहब ने पगड़ियों की भी अदला-बदली की, जो एकता का सबसे पक्का प्रमाण समझा जाता है। अब क्या था, मानसिंह ने अपना सारा ख़ज़ाना नवाब साहब

के सामने खोल दिया और नवाब साहब ने बजाय इसके कि रुपया अपने काम में लाते उसी वक्त फ़ौज में बाँट दिया और जोधपुर के नमक ने यहाँ तक ज़ोर बाँधा कि सवाईसिंह को उसकी बग़ावत का मज़ा चखाने के लिए तैयार हो गये। उसे अपने साथियों समेत एक दावत में बुलाया और गोलियाँ चलवा दीं। जिस आदमी ने ऐसी अनोखी हरकतें की हों उसकी वकालत करना हमारे लेखक महोदय ही का काम है। माना कि सवाईसिंह ने बग़ावत की मगर वह आश्चर्य-जनक दृढ़ता के साथ अपने इरादों पर डटा रहा। अगर उसकी बग़ावत की सज़ा यह समझी गई कि उसको दग़ाबाज़ियों का शिकार बनाया जाये तो हम नहीं कह सकते कि मीर साहब को उनकी हरकतों के लिए क्या सज़ा मिलनी चाहिए।

हम नीचे नवाब मीर खाँ साहब की ज़बान से टपके हुए कुछ जुमले लिखते हैं जिनसे उनके स्वभाव और विचारों का साफ़ पता चलता है।

१—जगतसिंह ने जब बातचीत के दौरान में कहा कि मैंने यह लड़ाई धोंकलसिंह के वास्ते मोल ली है तो खाँ साहब ने फरमाया 'अजी राजा साहब, आप मुझसे ऐसी बातें करते हैं और मुझे बनाते हैं। किसी गैर आदमी के लिए कोई इतनी हमदर्दी खर्च करने वाला नहीं है।' गोया ज़रूरतमन्दों की मदद करना आदमी के फ़र्ज़ में दाखिल नहीं।

२—आगे चलकर मानसिंह से सवाईसिंह का ज़िक्र करते हुए फ़रमाते हैं 'खुदावन्दतआला ने उसको उसके बुरे कामों की सज़ा दी। वह अपने अंजाम को पहुँचा। ऐसे नमकहरामों के साथ दग़ा-फ़रेब जो कुछ किया जाये उसका कुछ गुनाह नहीं और लड़ाई तो धोखेधड़ी का नाम है।' क्या ऊँची कसौटी है लड़ाई की! सवाईसिंह जो अपने पुराने राजा के बेटे के लिए अपनी जान न्यौछावर कर रहा है नमकहराम है और नवाब साहब, जो रुपये के लिए ऐसी गंदी हरकतें करते हैं कि ज़बान ख़ामोश हो जाती है, नमकहलाल हैं और बहादुर हैं और अपनी जाति का गौरव हैं!

अब हम क़िस्से का आखिरी और दर्दनाक वाक़या बयान करते हैं। राजा उदयपुर यानी कृष्ण कुंवर का बाप जगतसिंह और मानसिंह दोनों से डरता है। उसका ख़ज़ाना ख़ाली है। चारों तरफ मुसीबतों से घिरा हुआ है। कभी तो जय-पुर की तरफ़ ढलता है कभी जोधपुर की तरफ़। इसी बीच नवाब साहब सवाईसिंह को जहन्नुम रसीद करने के बाद जोधपुर के वकील बनकर उदयपुर तशरीफ़ ले जाते हैं और राजा साहब से मुलाक़ात करके उनको एक ऐसी हमदर्दी से भरी हुई सलाह देते हैं जिसका नतीजा यह होता है कि कृष्ण कुंवर के गले

पर छुरी फिर जाती है। हकीम साहब फ़रमाते हैं कि कृष्ण कुंवर की हत्या राजा उदयपुर ने अपनी मर्ज़ी से की, इसका इल्ज़ाम नवाब साहब पर नहीं है। मगर क्या वजह है कि नवाब से मुलाक़ात होने के बाद ही राजा साहब ने ऐसा भयानक निश्चय किया। दोनों प्रतिद्वन्द्वियों को रक्तपात के लिए तत्पर देखकर क्यों न लड़की का ख़ात्मा कर दिया जाय जिससे हज़ारों ख़ुदा के बन्दों की जानें बच जातीं। निश्चय ही नवाब साहब ने इस बात पर ज़ोर दिया होगा और यही नहीं राजा साहब को मजबूर किया होगा क्योंकि उनको ऐसी हरकत पर मजबूर करने से नवाब साहब को अपनी हिफ़ाज़त का यक़ीन था। वह ख़ूब जानते थे कि गो इस वक़्त मानसिंह दबकर मेरी ख़ुशामद कर रहा है मगर ज्योंही मौका पायेगा ज़रूर बुरी तरह पेश आयेगा और यक़ीनी बात थी कि जब कृष्ण कुंवर की शादी मानसिंह से होती तो दोनों राज्यों में ज़रूर मेल हो जाता और मानसिंह यह नई कुमक पाकर नवाब साहब को ज़रूर पुरानी बदमाशियों का मज़ा चखाता। उसी तरह यह आसानी से समझ में आ जानेवाली बात है कि उदयपुर और जयपुर में संबंध स्थापित होना खाँ साहब के वास्ते भी कुछ कम ख़तरनाक नहीं था क्योंकि उस सूरत में जगतसिंह उदयपुर की मदद पाकर चाबुक लिये हुए नवाब साहब के सर पर आ पहुँचता। अतः इन काल्पनिक विपत्तियों की काट उन्होंने यही सोची कि किसी तरह इस लड़की को मरवा डालूँ। हकीम साहब किताब के ख़ात्मे पर एक नोट में लिखते हैं, 'मीरखाँ ने एक मुनासिब राय दी थी कि आप महाराजा मानसिंह के साथ शादी कर दें। वह इसका अधिकारी भी है और लड़की पर जान भी देता है।' यह सलाह बेशक अच्छी थी मगर उपन्यास में इसका कहीं ज़िक्र नहीं आया। नोट उपन्यास का कोई हिस्सा नहीं है। मुनासिब होता कि हकीम साहब किसी अध्याय में राजा उदयपुर और खाँ साहब की मुलाक़ात करवाते और इस मुलाक़ात में खाँ साहब के मुँह से यह शब्द निकलवाते। उस सूरत में ऐतिहासिक घटना को पलटना तो ख़ैर कठिन है लेकिन हाँ इतना हो जाता कि पढ़ने वालों के दिलों में खाँ साहब से कुछ हमदर्दी हो जाती और शायद उनके निरपराध होने का विश्वास भी हो जाता। मगर सारे उपन्यास में इसको स्पष्ट रूप से तो क्या इशारे से भी नहीं लिखा गया बल्कि एक व्यक्ति जवानदास की ज़बानी, जो कृष्ण कुंवर के पास मौत का पैग़ाम लेकर आया है, यह शब्द कहलाये हैं, "बात यह है कि मीरखाँ जोधपुर से आये हुए हैं। उन्होंने दरबार से कहा कि तुम अपनी लड़की पद्मिनी की शादी मानसिंह के साथ कर दो। श्री दरबार ने कहा, जयपुर वाला बिगड़ा हुआ है, मैं उसका मुक़ाबला नहीं कर सकता........इस पर मीरखाँ ने कहा, अगर तुमको यह डर है तो इस सब फ़िसाद की जड़ उस लड़की को ही मार डालो

ताकि हज़ारों खुदा के बन्दों की जानें बर्बाद न हों, एक ही जान पर ख़ात्मा हो जाये।' इस अंतिम शब्दों से मीरखाँ का साहस या उनकी वीरता हरगिज़ प्रकट नहीं होती बल्कि पहले के कायरतापूर्ण कृत्यों का मिलान जब इनसे कीजिए तो मक्कारी की बू पाई जाती है। खूब, आदम के बेटों की आपसी मारकाट को रोकने का ख़याल इसी आदमी को पैदा हुआ जो कुछ दिन पहले जयपुर को लूटने से न हिचका और जिसने हज़ारों बेगुनाह खुदा के बन्दों के खून से अपने हाथ रंगे! और ज़रा लेखक की ग़लती तो देखिए कि वह जो इल्ज़ाम खाँ साहब के सिर से उठाने बैठे थे वह और भी उन पर थोप दिया यानी खाँ साहब ने राजा उदयपुर के सामने दो रास्ते पेश किये—या तो कृष्ण कुंवर की शादी मानसिंह से कर दे या उसको मार डाले। पहली सूरत में यह बाधा थी कि जगतसिंह बिगड़ा हुआ है, दूसरी सूरत ख़तरों से ख़ाली थी और नवाब साहब ने राजा साहब को यही तरीक़ा अख़्तियार करने की राय दी। खूब वकालत की! मीरखाँ साहब इस खता को कभी माफ़ न करेंगे। उनकी रूह को इस इल्ज़ाम के लद जाने से सदमा पहुँचेगा!

अगर हम मान लें कि मीरखाँ साहब ने राजा उदयपुर को जो सलाह दी वह बिल्कुल उपकार-भावना पर आधारित थी तो हमें मानना होगा कि उनके स्वभाव में एक बड़ी क्रांति हुई है। एक सजग उपन्यासकार इस मानसिक परिवर्तन को इस खूबी से दिखाता कि एक नैतिक निष्कर्ष निकलने के अलावा उसमें मनोवैज्ञानिक उपन्यास का मज़ा आता। हकीम साहब आगे चलकर इसी नोट में फिर लिखते हैं, यह महाराणा की कमज़ोरी थी कि अपने ख़ानदान की प्रतिष्ठा को उन्होंने क़ायम न रक्खा और लड़ाई के डर से अपनी कुंवारी लड़की को सख़्त बेरहमी से मार डाला। मीरखाँ को वह जवाब दे सकते थे और अगर वह न मानते तो महाराणा उनको तलवार के ज़ोर से मनवाकर छोड़ते........जब कृष्ण-कुंवर क़त्ल हो चुकी तो खुद मीरखाँ साहब ने महाराणा को क़ायल किया कि तुम इस रजपूती पर मरते हो!

सच पूछिये तो सारे क़िस्से का निचोड़ इसी नोट में मौजूद है बल्कि इसके लिखने से उपन्यास की कोई ज़रूरत ही नहीं बाक़ी रह जाती। हम मानते हैं कि महाराणा अपनी लड़की को क़त्ल करने पर राज़ी हुए। वह इसके सिवाय और क्या कर सकते थे? उनकी हालत ऐसी कमज़ोर हो रही थी कि ख़ानदान की प्रतिष्ठा को क़ायम रखने का सवाल तो दूर रहा खुद अपने राज्य का अस्तित्व बनाये रखने की चिन्ता में ग़ोते खा रहे थे। इस बेचारगी में मीर साहब की बात न मानते तो क्या करते? अगर उनमें इतनी ही ताक़त होती कि मीर साहब

को तलवार के ज़ोर से मनवाकर छोड़ते तो अपनी लड़की को क़त्ल ही क्यों करते ? जगतसिंह से लड़ न जाते ? और लड़ जाना आसान भी होता क्योंकि मानसिंह भी साथ देता और शायद मीरखाँ साहब भी हाथ बटाते। इन तीनों राज्यों के मुक़ाबले में जगतसिंह अकेले क्या बना लेता। यह बात शायद महाराणा उदयपुर के ध्यान में आयी ही नहीं। बस यही ख़याल होता है कि मीरखाँ साहब को मानसिंह और राणा साहब के बीच मेल हो जाना नागवार था, जिसके कारण स्पष्ट हैं। इसलिए उन्होंने कृष्ण कुंवर की हत्या के लिए प्रेरित किया होगा और राणा साहब विनाश काले विपरीत बुद्धिः के अनुसार खाँ साहब जैसे ग़ाज़ी मर्द की बात को टालना समझदारी से ख़ाली समझते होंगे। खाँ साहब इल्ज़ाम से उस हालत में बरी हो सकते थे अगर वह जगतसिंह को डरा-धमकाकर दबा लेते और तब मानसिंह की शादी बिना किसी झंझट के कृष्ण कुँवर से हो जाती। जगतसिंह अकेले मानसिंह का कुछ न बिगाड़ सकता क्योंकि अगर उसमें यह योग्यता होती तो लड़ाई शुरू होने से पहले उसने मीरखाँ साहब से सहायता की प्रार्थना न की होती।

ज़माना, फरवरी १९०५

'आईने क़ैसरी' और 'महारिबाते अज़ीम'

आईने क़ैसरी

कुछ अर्सा हुआ कि मिस्टर रोमेशचन्द्र दत्त ने एक अंग्रेजी किताब 'महारानी विक्टोरिया के शासन काल में हिन्दुस्तान' लिखी थी जिसका सिर्फ़ हिन्दुस्तान ही में बड़े उत्साह से स्वागत नहीं किया गया बल्कि अमरीका और इंगलिस्तान के विद्वानों ने भी उसको बहुत सराहा। कुछ अंग्रेज़ी विचारकों ने उसको सर विलियम हंटर के अनमोल और स्मरणीय इतिहास के बराबर ठहराया है। हमारी उर्दू ज़बान में इस तरह की कोई किताब न थी जिसको पढ़कर उर्दूदाँ पब्लिक अपनी सरकार और उसकी तबदीलियों और तरक़्क़ियों का हाल मालूम कर सके। मौलवी ज़काउल्ला साहब ने इस आम ज़रूरत को पूरा किया है। मगर जहाँ कि मिस्टर दत्त की किताब शुरू से आख़ीर तक नयी-नयी खोजों और सार्थक आंकड़ों और प्रमाणों से भरी हुई है,मौलवी साहब की किताब महज़ कुछ अंग्रेजी किताबों का ज्यों-का-त्यों तर्जुमा है। मिस्टर दत्त ने गवर्नमेण्ट के अंधेरे और रौशन दोनों पहलुओं पर निष्पक्ष होकर दृष्टि डाली है और सारी किताब में ऐसी-ऐसी समझदारी की सलाहें दी हैं कि अगर गवर्नमेण्ट उन पर अमल करे तो रिआया के लिए सचमुच सतजुग का ज़माना आ जाय। मगर मौलवी साहब ने शुरू से लेकर आख़ीर तक एक कवित्त गाया है, जो गद्य में होने से बिलकुल बदमज़ा हो गया है। काश इन्हीं घटनाओं पर मौलवी साहब क़सीदा लिखते तो वह ज़्यादा आदर से देखे जाने का अधिकारी होता।

मौलवी साहब उर्दू आसमान के सूरज हैं। जब तक उर्दू ज़बान ज़िन्दा रहेगी आपका नाम मध्याह्न के सूर्य की तरह चमकता रहेगा। मगर सिर्फ़ एक विद्वान भाषा-विद् की हैसियत से। उनके इतिहास, जिन पर उन्होंने अपने बुढ़ापे को क़ुर्बान कर दिया है, बहुत जल्द भुला दिये जायँगे। मौलाना हाली की 'हयाते जावेद' मौलाना आज़ाद की 'आबे हयात' मौलाना हैरत देहलवी की 'तारीख़े हमीदिया' बेशक इस क़ाबिल हैं कि उर्दू साहित्य का बेहतरीन नमूना क़रार दी जा सकें। मगर मौलवी साहब की 'आईने क़ैसरी' हरगिज़ इस रुतबे का दावा नहीं कर सकती।

लेखक—खान बहादुर शम्सुलउलमा मौलाना मौलवी ज़काउल्ला साहब देहलवी।

यूं तो सर सैयद अहमद खाँ के सांस्कृतिक और राष्ट्रीय सिद्धान्तों से हमेशा विरोध रहा मगर सच बात यह है कि अभी तक हमको उन उसूलों के मतलब कुछ यों ही से मालूम थे। मौलवी ज़काउल्ला साहब ने उन तमाम उसूलों के माने सूरज की तरह रौशन कर दिये हैं।

एक ऐसी किताब पर जिसकी मोटाई ढाई सौ पन्नों से कम नहीं और जिसमें हिन्दोस्तान की पेचीदा गवर्नमेण्ट के अनेक विभागों पर रायज़नी की गयी है कुछ पन्नों में उसका निर्णय करना बहुत मुश्किल है। लिहाज़ा हम कुछ ख़ास और मार्के के लेखों से उद्धरण देकर पाठकों के सामने पेश करते हैं।

हिन्दुस्तानियों का ऊँचे ओहदे पर नियुक्त होना

मौलवी साहब ख़याल फ़रमाते हैं कि 'हिन्दोस्तानियों के हाथों में जो अधिकार इस समय हैं, वही औचित्य की सीमा को लांघ गये हैं। उनके हाथों में और अधिकार देना रिआया के लिए नुक़सानदेह और गवर्नमेण्ट के लिए ख़तरनाक होगा। इस बात को कभी नहीं भूलना चाहिए कि इस उसूल के क़ायम रखने में हमको ज़रा भी हिचक कभी न होगी कि हिन्दोस्तान के आदमियों के लिए हमारे कर्तव्यों में से पहला कर्तव्य यही था कि हम अपनी सल्तनत की सलामती की खैर मनायें। हमको अपनी व्यवस्था के लाभप्रद होने का पूरा विश्वास है और पक्की धारणा है कि अगर हम अपनी गवर्नमेण्ट हिन्दोस्तानियों के हवाले कर दें तो अराजकता और अव्यवस्था दोबारा दिखायी देगी। इसलिए हमारी गवर्नमेण्ट की दृढ़ता और स्थायित्व के लिए यह पालिसी बुनियाद होनी चाहिए कि ऊँचे ओहदों पर ज्यादातर अंग्रेजों की नियुक्ति हो। यह एक असली चीज़ है।'[१]

मौलवी साहब को सख्त अफसोस है कि इस मुल्क में अदालत और एक्ज़िक्यूटिव सब की व्यवस्था हिन्दोस्तानियों ही के हाथ में है। काश और अंग्रेज़ आ जाते! फ़रमाते हैं 'लोग जो यह मानते हैं कि हिन्दोस्तान में सिविल इन्तज़ाम का बड़ा हिस्सा इंगलिशमैन के हाथ में है और इसमें हिन्दोस्तानी ऊँचे ओहदों के पाने से वंचित हैं, इससे ज्यादा कोई बात सच से परे नहीं हो सकती।' मौलवी साहब खुद म्योर कालेज के प्रोफ़ेसर हो गये थे। उनके नज़दीक अब इससे ऊँचा कोई ओहदा क्यों होने लगा जिसकी कोई हिन्दोस्तानी कोशिश करे। इसी सिलसिले में फिर फ़रमाते हैं, 'पब्लिक सर्विस में हिन्दोस्तानी मुलाज़िमों की तादाद बढ़ती जाती है। इंगलैण्ड में बहुत ही थोड़े अंग्रेज मुक़र्रर होते हैं।

---

१ अनुवाद है एक अंग्रेजी पुस्तक से। मौलवी साहब ने इस अनुवाद को अपने विचारों की अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया है।

उनके सिवा बिरली ही कोई ऐसी सूरत होगी जिस पर हिन्दोस्तानी न मुक़र्रर होते हों।' अफ़सोस ! एक अंग्रेज़ जो विलायत में हिन्दोस्तानी ओहदा पाता है, उसकी तनख्वाह आम तौर पर ढाई सौ क्लर्कों के बराबर होती है। और बहुत बार इससे कहीं ज़्यादा।

क्या मौलवी साहब नहीं जानते कि किसी ज़माने में यह ऐक्ट पास हुआ था कि किसी महकमे में दो सौ या इससे कम के ओहदों पर कोई अंग्रेज़ न रखा जाय। आज तारघर और सेक्रेटेरियट और इंसपेक्टर जनरल का दफ़्तर, रेल का महकमा और खुदा जाने कितने सरकारी दफ्तर हैं, जिनमें पचास रुपये से ज़्यादा तनख्वाह के जितने ओहदे हैं उन पर अमूमन यूरेशियन नज़र आते हैं। कई महकमे तो ऐसे हैं जिसमें कोई हिन्दोस्तानी नज़र ही नहीं आता। अगर हम यह भी मान लें कि हमारे हाथों में छोटे-छोटे सौ-दो सौ रुपये की तनख्वाहों के बहुत से ओहदे हैं तब भी इन ओहदों से हमारा राष्ट्रीय गौरव तनिक भी नहीं प्रकट होता। जैसा मिस्टर गोखले ने कहा था कि जब हम ओहदों का ज़िक्र करते हैं तो पाँच सौ या इससे ज़्यादा तनख्वाह के ओहदों का ज़िक्र करते हैं। क्या इसमें कोई शक है कि इस तनख्वाह के हिन्दोस्तानी ओहदेदारों के नाम उँगलियों पर गिने जा सकते हैं। मगर हम भूले जाते हैं। मौलवी जकाउल्ला साहब हिन्दोस्तानियों को सिर्फ़ इस खयाल से ऊँचे ओहदों के क़ाबिल नहीं समझते कि 'उनके लिए ऐसी साइंटिफ़िक और टेकनीकल शिक्षा की ज़रूरत होती है जो कि हिन्दोस्तानियों में बहुत कम मिलती है' बल्कि आपको उनकी सच्चाई और ईमानदारी में भी सन्देह है। 'ग़रज़ हिन्दोस्तानी जजों और मजिस्ट्रेटों की सच्चाई और ईमानदारी इस कारण से है कि वह ईमानदार और सच्चे इंगलिश ओहदेदारों के मातहत रहते हैं।' लेखक महोदय ने अपनी वफ़ादारी और नमकख्वारी के जोश में अपने भाई-बन्दों को गाली देना शुरू कर दिया ! आपकी नज़रों में 'अब हिन्दोस्तानियों को ज़्यादा रियायत की ज़रूरत नहीं है। मगर अंग्रेज़ों को हिन्दोस्तानी खिदमतों पर ज़्यादा से ज़्यादा तादाद में लगाने के लिए ज़रूरी है कि उनको ज़्यादा आमदनियाँ और फ़रलो के अधिकार दिये जायँ........हिन्दोस्तानियों के लिए नौकरियों का मैदान बढ़ता जाता है और योरोपियन के लिए तंग होता जाता है।' इसको कहते हैं नमकख्वारी और नमकहलाली ! बेचारे बिना हाथ-पैर के और बेजबान अंग्रेज़ों की कैसी वकालत की है ! काश लार्ड कर्ज़न की निगाह इस जुमले पर पड़ जाय ! हे भगवान् खुशामद की भी कोई इन्तहा है ! अफ़सोस मौलवी साहब ने मिस्टर गोखले का वह नोट नहीं देखा जो उनकी आखिरी बजट स्पीच के साथ अखबारों में छपा है क्योंकि इससे उनको मालूम हो जाता कि आखिरी चार-पाँच

वर्षों में कितने नये ओहदे क़ायम हुए और उनमें कितने हिन्दोस्तानियों को मिले और कितने अंग्रेज़ों के हाथ लगे। शायद इस नतीजे से उनको कुछ तसकीन होती। पब्लिक सर्विस कमीशन की रिपोर्ट देखिए और जाँचिए कि इन हिदायतों की कहाँ तक तामील हो रही है।

राष्ट्रीय कर

जमीन की आमदनी— मौलवी साहब ने इस महत्वपूर्ण विषय पर कुछ रोशनी नहीं डाली। हाँ, सिर्फ़ इतना कह दिया है कि 'हमको याद नहीं कि हिन्दोस्तान में खेती के नफे में कभी किसी गवर्नमेण्ट ने अपना हिस्सा इतना कम लिया हो।' अकबरनामा और दूसरी किताबों और ईस्ट इण्डिया कम्पनी की शुरू की रिपोर्टों के देखने से मालूम होता है कि पहले ज़मीन का टैक्स पैदावार पर एक तिहाई से एक चौथाई तक था। अब अक्सर हिस्सों में पचास फ़ीसदी है और कभी-कभी तो इससे कहीं ज़्यादा। मिस्टर गोखले ने अपनी बजट स्पीच में एक नक़शा पेश किया था जिसमें उन्होंने प्रामाणिक आँकड़ों और निरुत्तर कर देनेवाली युक्तियों के आधार पर दिखाया है कि तमाम सभ्य संसार में कहीं कुल पैदावार पर आठ फ़ी सदी से ज़्यादा टैक्स नहीं। हिन्दोस्तान में पन्द्रह फ़ी सदी से पचीस फ़ी सदी है! न कि जैसा मौलवी साहब फ़रमाते हैं 'सिवाय कुछ ऐसी सूरतों के जिन्हें हम अपवाद मान सकते हैं, सात या आठ फ़ी सदी कुल पैदावार का नहीं है।' इसमें कोई शक नहीं कि लगान की जो दर सन् १८३० में थी उससे अब किसी क़दर कम है मगर उस ज़माने का आज जिक्र करना ही फ़िज़ूल है। ईस्ट इण्डिया को अपने हलवे-मांडे से काम था। रिआया की जो हालत थी उसके बारे में कुछ न कहना ही बेहतर है। इस सिलसिले में हमको लेखक महोदय के एक रिमार्क से बहुत आश्चर्य होता है। फ़रमाते हैं, 'ज़मीन भी अगरचे पब्लिक रेवेन्यू के बड़े हिस्से को पूरा करती है, कभी-कभी बिलकुल वह अपनी हैसियत के मुनासिब टैक्स नहीं देती........इसकी मशहूर मिसाल बंगाल है जिसमें ग़लती से सौ बरस हुए कि इस्तमरारी बन्दोबस्त हुआ है जिसके कारण बहुत उपजाऊ प्रदेश के ज़मीन्दार सरकार को नाकाफ़ी मालगुज़ारी देते हैं और टैक्सों से भी बरी रहते हैं।' मौलवी साहब शायद दुआ करते हों कि बहुत जल्द बंगाल का इस्तमरारी बन्दोबस्त ख़त्म कर दिया जाय और हर सूबे में मद्रास का रैयतवारी तरीक़ा जारी हो जाय। सारा ज़माना मानता है कि इस्तमरारी बन्दोबस्त रिआया के लिए अमृत है और वह दिन शुभ होगा जब कि हिन्दोस्तान के दूसरे सूबों में भी उसका प्रचलन हो जायगा। मगर मौलवी साहब के राजनीतिक

सिद्धान्त निराले हैं। बजाय इन बेमानी बातों के, इतिहासकार की हैसियत से मौलवी साहब के लिए यह बतलाना कर्तव्य था कि मौजूदा ज़मीन्दारी और काश्तकारी के तरीक़े का हिन्दोस्तान के अलग अलग सूबों में कैसे जन्म हुआ और उनसे क्या-क्या नफ़े और नुक़सान हैं वग़ैरह वग़ैरह। मगर मौलवी साहब अपने बुढ़ापे की वजह से इतनी माथापच्ची नहीं कर सकते।

रेवेन्यू के दूसरे ज़रिये—लेखक महोदय नहीं चाहते कि गवर्नमेण्ट 'मालामाल न रहे' चुनांचे वह इनकम टैक्स और अफ़ीम के रेवेन्यू और स्टाम्प के रेवेन्यू और शराब और दूसरी नशीली चीज़ों के रेवेन्यू वग़ैरह वग़ैरह को बहुत अनुकूल दृष्टि से देखते हैं और इन सब ज़रियों को गवर्नमेण्ट की आमदनी का जरूरी ज़रिया समझते हैं बल्कि इन सब खज़ानों को नाकाफ़ी समझते हैं। फ़रमाते हैं कि हिन्दोस्तान में औसत टैक्स फ़ी आमदनी सिर्फ़ तीन रुपया है। अफ़सोस! अगर यह सही भी मान लिया जाय, तब भी क्या यह जुल्म नहीं कि उस आबादी पर जिसकी आमदनी डेढ़ रुपया फ़ी आदमी से ज़्यादा न हो, दो महीने की आमदनी का टैक्स लगा दिया जाय?

शराब की आमदनी के दिनोंदिन बढ़ने से राष्ट्र के नेता दुखी हैं, मगर मौलवी साहब उनकी इस्लाह इन शब्दों में करते हैं 'आबकारी की आमदनी का बढ़ना इस बात को नहीं साबित करता कि आदमियों को शराब पीने की आदत ज़्यादा हो गयी है बल्कि वह नतीजा इसका है कि शराब पर टैक्स की दर आम तौर पर बहुत ज़्यादा बढ़ा दी गयी है।' और चोरी-छिपे नाजायज़ शराब बनाने की मनाही हो गयी है। आप इण्डिया और इंगलिस्तान का मुक़ाबिला करते हैं कि 'इंगलिस्तान में २४२ आदमियों पीछे एक शराब की दूकान है और इण्डिया में २४०० से ज्यादा आदमियों पर एक दूकान है। आबकारी की आमदनी निश्चय ही बड़ी आमदनी हो गयी है। इंगलैण्ड में हितचिन्तक व्यक्तियों ने इन आंकड़ों को देखकर अपनी दुर्बुद्धि और अज्ञान से गवर्नमेण्ट पर अपना बड़ा गुस्सा निकाला कि वह अपनी आमदनी बढ़ाने के लिए यह शरारत करती है कि हिन्दोस्तानियों के लिए शराब पीना आसान करती जाती है। ऐसी ही हिन्दोस्तानियों की भी राय है मगर इसमें कुछ तथ्य नहीं।'

अगर मौलवी साहब को उनका बुढ़ापा इजाज़त देता और वह एक रोज़ किसी शराबख़ाने में जाकर देखते कि कितने जुलाहे, शेख़, पठान बोतलों पर बोतलें लुँढाते जाते हैं तो कुछ सच्चाई खुलती और यह लोग वह हैं जो अगले ज़माने में शराब को हराम समझा करते थे। ताज्जुब है कि मौलवी साहब ऐसे अपने धर्म के पक्के होकर भी गवर्नमेण्ट के इस नाजायज़ आमदनी के ज़रिये को

अच्छा समझते हैं।

रुई के कपड़े पर महसूल—इस विषय पर मौलवी साहब ने कुछ परिवर्तनों और कमी-बेशी का उल्लेख करने के बाद लिखा है कि 'दिसम्बर १८९४ में इस रुई के कपड़े और सूत पर जो हिन्दोस्तान में मिलें बनायें पाँच रुपया फ़ी सदी क़ीमत पर महसूल लग जाये।' इस बेइंसाफ़ी पर मौलवी साहब ने ज़बान नहीं खोली। हम उनके बहुत कृतज्ञ हुए कि उन्होंने इसके न्यायोचित पहलू पर प्रकाश नहीं डाला। यह वह टैक्स है जिसको सारी सभ्य दुनिया नफ़रत की निगाह से देखती है और जो अंग्रेज़ी क़ौम की ख़ुदग़र्ज़ी और सख़्ती की निहायत अच्छी मिसाल है।

हिन्दुस्तान का व्यापार—आयात व निर्यात

यह अर्थशास्त्र का एक निश्चित सिद्धान्त है कि अगर किसी देश में निरन्तर कई साल तक माल के आयात का परिमाण निर्यात से अधिक हो तो वह देश दिनों-दिन निर्धन और दरिद्र होता जाता है। मिल और फ़ास्ट जैसे अर्थशास्त्रियों ने इस बात को अपनी दलीलों से आईने की तरह साफ़ साबित कर दिया है और अब किसी को उन पर नुक्ताचीनी करने की गुंजाइश नहीं है। मगर हमारे लेखक महोदय फ़रमाते हैं 'अब वह ज़माना नहीं रहा कि इस बात को ज़रूरी मानना पड़ता था कि वही देश फ़ायदे में रहता है जिसमें माल का निर्यात माल के आयात से अधिक होता है। यह दक़ियानूसी रायें हैं।' इस बात के सबूत में आप इंगलिस्तान को पेश करते हैं। आपको शायद नहीं मालूम कि हिन्दुस्तान की हालत इंगलिस्तान से बिल्कुल अलग है। अगर इंगलिस्तान में माल का आयात निर्यात से अधिक है तो उसको ज़्यादा डर नहीं क्योंकि वह कच्चे माल का एक बड़ा ज़खीरा अपने मुल्क में बढ़ाता जाता है। हिन्दोस्तान औद्योगिक देश नहीं और जो व्यापार है वह भी व्यवहारतः सोलहों आना अंग्रेजों के हाथ में है। नील, शक्कर, चाय, क़हवा, रुई इत्यादि का क्रयविक्रय अंग्रेज़ ही करते हैं। कलकत्ता, बम्बई, मद्रास, कानपुर वग़ैरह की मिलों के मालिक भी ज़्यादातर वही लोग हैं। हाँ अगर इन व्यापारों से देश को लाभ है तो इतना कि कुछ ग़रीब मुहताजों के लिए रूखी रोटी का सहारा मौजूद है। गो दस-बीस पंखा कुलियों की जान जाय तो कोई मुज़ायक़ा नहीं। हिन्दुस्तानी व्यापार का मसला ऐसा दिलचस्प है कि ख़ामख़ाह तबियत को ज़्यादा जानकारी की तलाश होती है। लेकिन आलोच्य पुस्तक से ज़रा भी तृप्ति नहीं होती। एक न्यायप्रिय अंग्रेज़ का कहना है कि हिन्दुस्तान की व्यापारिक तबाही जो इंगलिस्तान के हाथों हुई है, उसकी मिसाल

व्यापार के इतिहास में कहीं नहीं मिलती। सन् १८२० में हिन्दुस्तान योरप को करोड़ों रुपये का माल रवाना करता था। सन् १८२० में उसकी व्यापारिक मन्दी शुरू हो गयी और सन् १८५० तक यह देश उद्योग-धन्धे की दृष्टि से समाप्त हो गया। हमारे व्यापार की हत्या करने के लिए इंगलिस्तान ने जो तदबीरें की हैं, उनको आज पढ़कर रोना आता है।

चेम्बर आफ़ कामर्स जो कानपुर, कलकत्ता वग़ैरह में कायम हैं, उनसे पब्लिक को फ़ायदा नहीं होता। हाँ, वह अंग्रेज़ी व्यापार के ख़यालों का आला समझे जाते हैं। उन्हीं की प्रेरणा से तिब्बत को मिशन रवाना हुआ और बहुत करके उन्हीं के फ़ायदे के लिए अब फ़ारस से व्यापारिक सम्बन्ध बढ़ाने का प्रयत्न किया जा रहा है। अगर इन चेम्बरों से देश को कुछ फ़ायदा है तो इतना ही है कि समय-समय पर दस-पाँच लाख रुपये की वृद्धि युद्ध के खर्चे में हो जाती है और हज़ार-दो-हज़ार आदमी कुर्बान हो जाते हैं।

लेखक महोदय ने इस प्रसंग में उन प्रस्तावों और सुझावों का ज़रा भी ज़िक्र नहीं किया जो हिन्दुस्तान के व्यापार को बढ़ाने के लिए गवर्नमेण्ट के सामने पेश किये जाते हैं! इनमें से एक प्रस्ताव वही है जिसपर अमल करने से जर्मनी की गवर्नमेण्ट ने जर्मन शकर को इस क़ाबिल बना दिया है कि हिन्दुस्तानी बाज़ारों में देशी शकर का मुक़ाबिला कामयाबी के साथ करे।

शिक्षा

लेखक महोदय ने बहुत से कालेजों के क़ायम होने, अंग्रेज़ी शिक्षा के रिवाज पाने और शिक्षा की धीरे-धीरे उन्नति होने की चर्चा संक्षेप में की है। स्त्री-शिक्षा के बारे में फ़रमाते हैं कि अभी आम राय इसके खिलाफ़ है जो एक हद तक सही है। इसी अध्याय में यह भी लिखा है कि किसानों में शिक्षा कभी नहीं पनप सकती। यह ख़याल बिलकुल दक़ियानूसी है। आस्ट्रेलिया, कनाडा कृषिप्रधान देश हैं मगर वहाँ शिक्षा के क्षेत्र में ऊँचे दर्जे की तरक्की है गो इसमें कोई शक नहीं कि शिक्षा की दृष्टि से कृषिप्रधान देश कभी औद्योगिक देश का मुक़ाबिला नहीं कर सकता। अनिवार्य शिक्षा की समस्या पर, जिस पर एक ज़माने से बहस हो रही है, आप बिलकुल खामोश हैं, शायद इस वजह से कि यह कांग्रेस के प्रस्तावों का एक अंग है। शिक्षा के खर्चों के बारे में इतना ही लिखा है कि 'गवर्नमेण्ट इससे ज़्यादा नहीं कर सकती।' इसी सिलसिले में अलीगढ़ कालेज का संक्षिप्त उल्लेख किया है और अपने पेशवा और गुरु सर सैयद अहमद को भी दो-चार खरी-खोटी सुनायी हैं। औद्योगिक शिक्षा, कृषि की शिक्षा आदि का भूलकर भी उल्लेख

नहीं किया।

कालेज की शिक्षा से आप बुरी तरह क्षुब्ध हैं। फ़रमाते हैं कि हिन्दुस्तान में इसका कुछ अच्छा असर नहीं हुआ। आज तक कोई ऊँचे दिमाग़ वाला नहीं पैदा हुआ। बुरा नतीजा जो हुआ वह यह है कि लोग पढ़-पढ़कर गवर्नमेंट पर नुक्ताचीनी करते हैं जिसको मौलवी साहब बहुत बड़ा गुनाह समझते हैं।

कांग्रेस

कांग्रेस मौलवी साहब की आँखों में खटकता हुआ काँटा है लिहाज़ा आपने किताब के आख़िरी पन्नों में उस पर कुछ शब्दों के तीर चलाये हैं—

'हिन्दुस्तान के पढ़े-लिखे लोगों ने एक नेशनल कांग्रेस बनायी है जिसमें कभी-कभी पोलिटिकल बहसें बड़े ज़ोर-शोर से होती हैं। यह शास्त्रार्थ, यह बहसें अकसर विद्यार्थियों के जैसी होती हैं। बृटिश गवर्नमेंट के ख़िलाफ़ ऐसी बे सिर-पैर समस्याएँ भी पेश होती हैं कि हिन्दुस्तानी फ़ाइनेंस का प्रबन्ध करें और बृटिश गवर्नमेंट देश की रक्षा करे। ग़ालिबन ऐसे बेतुके ख़यालात खुद-ब-खुद मुर्दा हो जायँगे या गवर्नमेंट उनको ठण्डा कर देगी।'

मौलवी साहब को ख़बर नहीं कि वह गम्भीर विचार-विमर्श जो मुहम्मडन एज्यूकेशनल कान्फ्रेन्स में होते हैं, एक मर्तबा मिस्टर बदरुद्दीन तैयब जी की प्रेसिडेण्टी में हो चुके हैं और मिस्टर तैयब जी कांग्रेस की जान हैं। मिस्टर हैदरी, स्वर्गीय मिस्टर सयानी, मिस्टर तैयब जी और नवाब मिस्टर मुहम्मद हुसेन मद्रासी जैसे-जैसे बुज़ुर्गवार कांग्रेस के सहयोगी हैं। ऐसे विद्वानों को विद्यार्थी या स्कूली बच्चा कहना लेखक महोदय ही के गुर्दे की बात है।

निहायत अफ़सोस है कि मुसलमान क़ौम के रहनुमा अभी तक ज़माने और उसके रंग-ढंग पर ज़रा भी नज़र न डालकर आँख मूँदे सर सैयद अहमद के बतलाये हुए रास्ते पर चले जा रहे हैं। मौलवी साहब सर सैयद के ख़ास चेलों में हैं और शायद अपनी ज़िन्दगी में अपने स्वर्गीय गुरू का विरोध करना बेवफ़ाई समझते हैं।

हम नीचे उर्दूएमुअल्ला की एक फ़ारसी तहरीर से नक़ल करते हैं जो एक बुज़ुर्गवार ने अमरीका से लिखकर भेजी है और जो मार्च के नम्बर में छपी है। बहुत गवेषणापूर्ण लेख है—

इण्डियन नेशनल कांग्रेस हमा ज़रिया अस्त कि अर्ज़े हाले हमा हिन्दुस्तानियाँ रा बसमए क़ुबूले पार्लिमेण्ट इंग्लिस्तान ख़्वाहद रसानीद। फ़रियाद ओ ज़ारिये यक फ़िर्क़ा या दो फ़िर्क़ा मानिन्दे आवाज़े तूती दर नक़्क़ारख़ाना मी बाशद। अम्मा

वक़्ते कि हमा अब्नाए मुल्क बइत्तफ़ाक़े हाले ज़ारे ख़ेशरा बयक आवाज़ अदा कुनन्द, यक सदाए तुन्दरा आसा आफ़ाक़े आलमरा गीरद....हरचन्द कि दरों साले गुज़श्ता दुआए कांग्रेस क़ुबूल न शुद....अम्मा इण्डियन नेशनल कांग्रेस दर नज़रे आलमे मुतमद्दिन एतबारे हासिल कर्दा अस्त व कोशिशे बानियानश रायगाँ न रफ़्ता।'

अर्थात् इण्डियन नेशनल कांग्रेस अकेला ऐसा ज़रिया है कि जो तमाम हिन्दुस्तानियों का हाल इंग्लैण्ड की पार्लमेण्ट तक क़ुबूलियत के लिए पहुँचाता है। एक या दो फ़िर्क़ों का रोना-धोना नक़्क़ारख़ाने में तूती की आवाज़ की तरह होता है। लेकिन वक़्त आ गया है कि मुल्क के तमाम बेटे एक होकर एक आवाज़ से अपने दुख-दर्द की गुहार लगायें, एक ऐसी ज़बर्दस्त गरज जो सारी दुनिया को घेर ले....अगर्चे गये साल कांग्रेस की मुराद पूरी नहीं हुई लेकिन इण्डियन नेशनल कांग्रेस ने तहज़ीबयाफ़्ता दुनिया की नज़र में एक एतबार हासिल कर लिया है और उसके बानियों (प्रवर्तकों) की कोशिश अकारथ नहीं हुई।

हिन्दुओं का हाल

पुस्तक के अंतिम पृष्ठों में मौलवी साहब ने हिन्दुओं की दुर्दशा पर भी कृपा की है। आपने जो इस क़ौम की तस्वीर खींची है, उससे साफ़ ज़ाहिर होता है कि यह क़ौम बिलकुल वहशियों की है। फ़रमाते हैं कि यह लोग नये सिरे से सती की प्रथा को जारी किया चाहते हैं, लड़कियों को मार डालते हैं, आदमियों की कुर्बानी दिन-दहाड़े करते हैं, विधवाओं को जीते-जी मार डालते हैं और उनकी दशा को सुधारने का ज़रा भी प्रयत्न नहीं करते। क़ौम के नेता सांस्कृतिक सुधार से घबड़ाते हैं और भगवान जाने क्या-क्या ख़ुराफ़ात बातें लिखी हैं। हमें लेख के बढ़ जाने का भय है तो भी हम इस मौक़े पर मौलवी साहब की किताब से कुछ उद्धरण देना ज़रूरी समझते हैं —

'अंग्रेज़ी हुकूमत की हालतें ऐसी हैं, कि उन ओहदों पर जिनमें जान-जोखिम का सामना करना पड़ता है योरोपियन ही मुक़र्रर हों।'

'सती—अगर बृटिश गवर्नमेण्ट अपनी देखभाल और ख़बरदारी में ज़रा भी चूके तो मुश्किल से कोई सूबा ऐसा होगा जिसमें यह अत्याचारी बर्बर प्रथा बड़ी तेज़ी से न होने लगे। बहुत थोड़े ही हिन्दू ऐसे होंगे जिनको सती प्रथा का हटाया जाना पसन्द हो।'

'आदमियों की कुर्बानी—उन ज़िलों में जहाँ तालीम ने सबसे ज़्यादा तरक़्क़ी की है, काली देवी अब तक आदमियों की कुर्बानी का दावा किये जाती हैं। इसकी

मिसालें सामने आती हैं ।'

'यह भयानक घटनाएँ जो होती हैं, (कन्याओं को मार डालना और आदमियों की क़ुर्बानी) इन पर आमतौर पर लानत-मलामत नहीं की जाती और गवर्नमेण्ट इन कामों के बन्द करने में जो कोशिश करती है, उसको लोग पसन्द नहीं करते और तालीमयाफ़्ता आदमी तक भी गवर्नमेण्ट के साथ इसमें हमदर्दी नहीं करते । पुरानी रस्मों में गवर्नमेण्ट जो हस्तक्षेप करती है, उससे हिन्दू बहुत चिढ़ते हैं, चाहे यह रस्म इनकी अपनी हो या न हो ।'

'लेकिन कम्बख्ती तो यह है कि इन सांस्कृतिक और सामाजिक प्रश्नों पर गवर्नमेण्ट को बहुत ही कम सलाह-मशविरा दिया जाता है ।'

'लेकिन यह बात आसान नहीं है कि ऐसी मिसालें दी जायँ कि किसी धनी-धोरी हिन्दुस्तानी ने संस्कृति या समाज की उन्नति में नेतृत्व किया हो ।'

हमने इन उद्धरणों के साथ इनको काटते हुए कोई नोट लिखना ज़रूरी नहीं समझा । उनको दुहरा देना ही उनका जवाब दे देना है । पाठक इनके बारे में स्वयं न्याय कर सकते हैं । हमको इसका तनिक भी दुःख नहीं है कि हिन्दुओं पर किसी ने बेजा हमले किये । हाँ दुख इसका है कि जिसने हमले किये वह अपने बुढ़ापे के कारण हमारे मुँहतोड़ जवाबों को सह न सकेगा ।

उपरोक्त बातों के अलावा इस किताब में राज्य-व्यवस्था, ईसाई शिक्षा और चरित्र पर उसका प्रभाव, कानून बनाना, कौंसिल इम्पीरियल और प्राविंशियल, म्युनिसिपल सुधार, भारतीय सेना, गवर्नमेण्ट खर्चे वग़ैरह वग़ैरह पर क़लम घिसा गया है जो हर व्यक्ति Citizen of India और स्ट्राचों के British Empire को पढ़कर ब ूबी मालूम कर सकता है ।

भाषा और लेखन-शैली

गो मौलवी साहब देहलवी हैं और उर्दू ज़बान के उस्ताद, गो उन्होंने अपनी सारी क़ीमती ज़िन्दगी लिखने-पढ़ने ही में ख़र्च की है मगर अफ़सोस है कि यह किताब साहित्यिक रूप से उस सम्मान की भी अधिकारिणी नहीं, जो उसको ऐतिहासिक रूप से प्राप्त है । अंग्रेज़ी के बड़े-बड़े भारी-भरकम शब्द बिना किसी टीका के लिख दिये गये हैं जिनको समझने के लिए अरबी-फ़ारसी के अलावा अंग्रेज़ी का भी अच्छा ज्ञान होना चाहिए । कहीं-कहीं ऐसे-ऐसे पेचीदा जुमले लिखे हैं, कि उनके माने अक़्ल में ज़रा भी नहीं आते । ख़ास तौर पर जहाँ अंग्रेज़ी किताबों से तर्जुमे किये हैं वहाँ की भाषा बिलकुल अर्थशून्य हो गयी है ।

किताब का अन्त

मौलवी साहब ने अपनी किताब के अन्त में यों लिखा है—'अब मैं अपनी किताब को ख़त्म करता हूँ। मुझे यक़ीन है कि जो कमअक़्ल लोग बृटिश गवर्नमेण्ट की खूबियों और नेकियों, नेमतों और बरकतों के समझने में धोखे खाते हैं, इस किताब के पढ़ने से उनके दिलों से वह भरम और धोखे दूर हो जायँगे।' हमको सचमुच अफ़सोस होगा अगर मौलवी साहब के यह जुमले गवर्नमेण्ट तक न पहुँचे जिसके कि वह इतने बड़े भक्त हैं।

महारिबाते अज़ीम

इस किताब में मौलवी साहब ने वह सब महत्वपूर्ण और स्मरणीय घटनाएँ और लड़ाइयाँ लिपिबद्ध की हैं जो स्वर्गीया महारानी के राज्यकाल में इंगलिस्तान में हुईं। मगर यह पुस्तक इतिहास के नाते इतना कम महत्व रखती है कि इसको मौलवी साहब जैसे बड़े और अनुभवी लेखक के साथ जोड़ते हुए शर्म मालूम होती है। मौजूदा ज़माने में इतिहास लिखने का स्तर बहुत ऊँचा हो गया है। अब किसी घटना को केवल सरल भाषा में बयान कर देने का नाम इतिहास नहीं है। इतिहासकार का कर्त्तव्य है कि वह जिस घटना को लिखे, उस पर अच्छी तरह अधिकार रखता हो, उस पर ठीक राय दे सके और उसके कारणों और नतीजों पर अच्छी तरह दलील देकर बहस करे। इस हैसियत से यह किताब, जिसकी समालोचना की जा रही है, बहुत कम महत्व रखती है। इसमें किसी घटना पर अच्छी तरह बहस नहीं की गयी बल्कि उनको कुछ थोड़े से इतिहासों से लेकर सरसरी तौर पर लिख दिया है। हाँ क्रीमिया की लड़ाई के साथ खास रिआयत की गयी है। मगर किसी लड़ाई या मुहासिरे का इतिहास प्रभावशाली नहीं हो सकता जब तक कि लड़ाई का सही नक़शा आँखों के सामने मौजूद न हो। इस किताब में इस क़िस्म की एक तस्वीर या एक नक़शा भी नहीं है जिसने इसके शैक्षणिक महत्व को बहुत कम कर दिया है। इसके अलावा कुछ और बातें हैं जिनको दुहराना उचित है—

१—फ्रांस और प्रुशिया की लड़ाई, जिसने संसार के इतिहास में ख्याति प्राप्त की, बहुत ही संक्षेप में लिखी गयी है।

२—मिस्टर ग्लैडस्टन के शिक्षा-सम्बन्धी बिल पर, जो एक बहुत स्मरणीय घटना है, कुछ प्रकाश नहीं डाला गया।

३—तुर्की के बारे में ग्लैडस्टन और लार्ड बीकन्स्फ़ील्ड की पालिसियों में जो स्पष्ट अन्तर है, उसको कहीं प्रकट नहीं किया गया।

॥ आईने क़ैसरी और महारिबाते अज़ीम ॥

४—किसी-किसी जगह पर जहाँ ख़र्च या आमदनी का ज़िक्र है पौण्ड में किया है, रुपये में होना चाहिए था।

५—अंग्रेज़ी नामों के सामने रोमन लिपि में नाम लिखना चाहिए ताकि उच्चारण में ग़लती न हो।

ज़बान इस किताब की 'आइने क़ैसरी' की ज़बान से भी गिरी हुई है। बड़े-बड़े और कठिन शब्द अनावश्यक ठूँस दिये गये हैं। मसलन् 'कूवत व सतवत व शौकत व सौलत' चारों पर्यायवाची शब्द बार-बार साथ-साथ आये हैं। इसी तरह 'इस्तीला' और 'इस्तेला' वग़ैरह और कहीं कहीं तो जुमले ऐसे हैं कि समझ ही में नहीं आते। शायद यह इस वजह से है कि लेखक ने अंग्रेज़ी इतिहास को सामने रखकर उनका खुलासा किया है। अगर घटनाओं पर अधिकार रख के लिखते तो वह अंग्रेज़ी शब्दों के अजनबी-से अनुवाद न दिखायी पड़ते जो अकसर मिलते हैं।

—ज़माना, अप्रैल १९०८

महारानी विक्टोरिया की जीवनी

अगर इंगलैण्ड जैसे देश में जहाँ इतनी अधिक पुस्तकें हैं, मिस्टर मारले की पुस्तक 'ग्लैडस्टन की जीवनी' को वहाँ के पत्रों ने महीने की बेजोड़ किताब का स्थान दिया था, तो हिन्दुस्तान जैसे टुटपुंजिये देश में मौलवी ज़काउल्ला साहब की इस ताज़ा कृति या अनुकृति को साल की बेजोड़ किताब की सम्मानित उपाधि न्यायपूर्वक दी जा सकती है। यह एक मोटी किताब है, और यद्यपि इन जानकारियों का भण्डार अंग्रेज़ी भाषा में असंख्य मिलता है तब भी कई किताबों का अध्ययन करना और उनसे अपने मतलब की चीज़ें चुनकर पूरी एक किताब लिखना आसान काम नहीं है। हम मौलवी साहब को उनकी कामयाबी पर मुबारकबाद देते हैं। उर्दू ज़बान में अब तक इस सर्वप्रिय महारानी की कोई स्मरणीय जीवनी नहीं प्रकाशित हुई थी और गो इसमें शक है कि यह किताब भी याद रखने के क़ाबिल साबित होगी या नहीं, ताहम फ़िलहाल इसके फ़ायदेमन्द होने में कोई शक नहीं है। उर्दूदाँ पब्लिक पर मौलवी साहब ने सचमुच बड़ा एहसान किया है।

भाषा और लेखनशैली

इस किताब की भाषा मौलवी साहब की दूसरी ताज़ा किताबों के मुक़ाबिले में कहीं ज़्यादा अच्छी है। गो फ़ारसी के मोटे-मोटे लफ़्ज़ जगह-जगह लुढ़का दिए गये हैं और बिला ज़रूरत मुश्किल लफ़्ज़ों की भरमार कर दी गयी है, ताहम भाषा की सरलता और गम्भीरता में बहुत ज़्यादा फ़र्क़ नहीं आने पाया। बाज़ मौकों पर जो सीन बयान किये गये हैं, वह मज़े ले-लेकर पढ़ने के क़ाबिल हैं। खास तौर पर बड़ी नुमाइश को खूब विस्तार और स्पष्टता से बयान किया है। तर्जुमे जो अंग्रेज़ी किताबों से लिये गये हैं, उनके शाब्दिक अर्थों की अपेक्षा उनके आशय पर अधिक ध्यान रक्खा गया है। हाँ कहीं-कहीं अंग्रेज़ी शब्द इतने अधिक इस्तेमाल किये हैं कि वह भाषा बेचारे ग़ैर-अंग्रेज़ीदाँ के लिए लैटिन से कम नहीं है मसलन् '२७ को मलका को विण्डसर कैसिल में म्युनिस्पैलिटियों और फ्रेण्डली सोसायटियों और प्रोफ़ेशनल एसोसिएशनों और पब्लिक बॉडियों ग़रज़ इंगलैण्ड........डेपुटेशन मुबारकबाद देने आये।'

लेखक महोदय ने भूमिका में कहा है कि इस किताब में महारानी विक्टोरिया के राज्यकाल का इतिहास लिखने पर दृष्टि नहीं रक्खी गयी है बल्कि उसमें उनके निजी जीवन की बातें लिपिबद्ध की गयी हैं। मगर खुशकिस्मती से मौलवी साहब ने इस भूमिका का बहुत ज्यादा लिहाज़ नहीं रक्खा है क्योंकि उन्होंने न सिर्फ़ निजी ज़िन्दगी की दिलचस्पियाँ बयान की हैं, बल्कि राज्यकाल की भी, और सच तो यह है कि महारानी को उनके ज़माने से अलग करना मुश्किल है। दोनों एक थे और जब एक का इतिहास लिखा जाता है, तो दूसरे का ज़िक्र करना अनिवार्य हो जाता है।

महारानी के सद्गुण

महारानी के राज्य-संचालन के गुण और बादशाहत के क़ानून चाहे जो महत्व रखते हों, इसमें सन्देह नहीं कि महारानी दया का भण्डार थीं। रहमदिली और हमदर्दी उनकी घुट्टी में पड़ी थी। वह जब बालमोरल या विण्डसर कैसिल में तशरीफ़ ले जातीं तो अक्सर विधवाओं और अनाथों के झोपड़ों में बैठकर उनके साथ हमदर्दी का इज़हार फ़रमातीं। जब अंग्रेज़ी फौज रूसियों के मुकाबिले में टर्की की मदद के लिए गयी थी, उस वक़्त महारानी और उनके कुनबे ने अपने हाथों से घायल सिपाहियों के लिए मोज़े और कुरते तैयार किये थे। महारानी का स्वभाव बहुत स्नेहशील था। पति या बच्चों का वियोग एक पल के लिए भी असह्य हो जाता था और जिस गर्मी और सच्चाई और आदरपूर्ण प्रेम से वह अपने पति से पेश आती थीं, उससे हमारी हिन्दोस्तानी स्त्रियाँ बहुत क़ीमती सबक़ हासिल कर सकती हैं। महारानी पत्नी के रूप में, योरप की बीवियों की बनिस्बत हिन्दोस्तान की औरतों से ज़्यादा मिलती-जुलती हैं। विद्वानों और कलाकारों का आदर करना उनके स्वभाव का अंग था। जिस वक़्त लार्ड डिज़रायली का देहान्त हुआ महारानी ने चाहा कि उसकी लाश वेस्टमिन्स्टर ऐबे में दफ़न की जाय। मगर जब स्वर्गीय लार्ड के उत्तराधिकारी राज़ी न हुए तो महारानी ने वहाँ उनकी एक लोहे की मूर्ति अपने खर्चे से बनवाकर रख दी। छिद्रान्वेषण और छोटी-छोटी बातों में नुक्ताचीनी करने से उनको नफ़रत थी। कहते हैं अपने रोज़नामचे में योरप के बादशाहों और बड़े-बड़े लोगों की आदतों पर अक्सर क़लम चलायी है मगर किसी की शान में कोई कड़ी बात नहीं लिखी।

इंगलिस्तान की महारानी के रूप में विक्टोरिया

इस हैसियत से महारानी का स्थान इतना ऊँचा न था जिसकी तुलना

महारानी एलिज़ाबेथ से की जा सके। पहले-पहल उन्होंने पार्लियामेण्ट के लिबरल दल की तरफ़ ध्यान दिया मगर लार्ड मेलबोर्न जैसा अनुभवी व्यक्ति इस समय प्रधानमन्त्री था, उसी ने धीरे-धीरे महारानी के दिल से तरफ़दारी के खयाल दूर कर दिये क्योंकि बादशाह का किसी दल की तरफ़दारी करना देश के लिए घातक है। इसके बाद लार्ड एबरडीन और राबर्ट पील और ड्यूक आफ वेलिंग्टन और लार्ड पामर्सटन और लार्ड डिज़रायली और ग्लैडस्टन जैसे-जैसे कौम के बुज़ुर्ग प्रधानमन्त्री के पद पर सुशोभित हुए मगर महारानी के सम्बन्ध सबसे बहुत मैत्रीपूर्ण रहे। कभी-कभी लार्ड पामर्सटन की जंगजू पालिसी अलबत्ता उनको नागवार मालूम होती थी इसलिए बाहर के देशों से जो खतोकिताबत होती थी उसके मसौदे पढ़ने पर महारानी बहुत ज़ोर दिया करती थीं क्योंकि उनको लार्ड पामर्सटन पर भरोसा न था। इस राज्यकाल में सुधार के बहुत महत्वपूर्ण कानून चलन में आये मगर महारानी को उनके लिए कभी दर्दसरी की ज़रूरत पेश न हुई। उनका उसूल था कि बादशाह को क़ौम के साथ-साथ आज़ादी के मैदान में क़दम रखना चाहिए, न खुद आगे चलकर रास्ता बनाना चाहिए और न पीछे रहकर अपनी हुकूमत की पाबन्दियाँ ढीली करनी चाहिए। तमाम मंत्री और साधारण लोग दिल से महारानी को प्यार करते थे और उन्हें आदर देते थे। इसमें कोई शक नहीं कि महारानी पर कई बार घातक हमले किए गए मगर हर बार साबित हो गया कि यह हमले निजी खुदग़रज़ियों और बदमिज़ाजियों और जहालतों का नतीजा थे। महारानी के राज्याभिषेक के कुछ ही साल बाद बड़े-बड़े शहरों में चार्टिस्टों ने खूब ऊधम मचाया। यह उन मज़दूर-पेशा आदमियों की जमात थी जिनको रिफ़ार्म बिल से कोई अधिकार न प्राप्त हुए थे। महारानी हमेशा प्रयत्नशील रहती थीं कि देश में स्थायी सेना अधिक संख्या में रहा करे। अतः हिन्दोस्तान के विद्रोह के कुछ साल पहले जब हिन्दुस्तानी फौज में छटनी हुई थी उस समय महारानी ने इस प्रस्ताव का विरोध किया था। जब फ्रांस में बड़ी क्रान्ति हुई उस समय योरोप के बादशाहों का खाना-पीना और सोना हराम था मगर महारानी बेधड़क हवाखोरी और सैर के लिए निकला करती थीं। उन्होंने रिआया के दिलों में घर कर लिया था। जब कभी उनकी सालगिरह होती या वह किसी दूसरे शहर में तशरीफ़ ले जातीं उस वक्त उनका स्वागत बड़े धूम-धाम से किया जाता था। यह ज़माना इंगलिस्तान के लिए तरक़्क़ियों का ज़माना था। अगर महारानी एलिज़ाबेथ के ज़माने में लिटरेचर को तरक़्क़ी हुई, जहाज़रानी का शौक़ रिआया के दिलों में पैदा हुआ तो महारानी विक्टोरिया के ज़माने में उद्योग-धन्धों की ऐसी-ऐसी तरक़्क़ियाँ हुईं जिनको महारानी एलिज़ाबेथ चमत्कार समझतीं।

।। महारानी विक्टोरिया की जीवनी ।।

प्रिंस एलबर्ट

महारानी और प्रिंस एलबर्ट एक प्राण दो शरीर थे। सम्भव नहीं कि इस किताब को शुरू से आखिर तक पढ़कर पाठकों को प्रिंस से वही प्रेम न हो जाय जो किसी अच्छे नावेल के हीरो के साथ हुआ करता है। यह नेक-तबीयत शहज़ादा महारानी विक्टोरिया का ममेरा भाई था। पहले-पहल बड़े-बड़े अंग्रेज़ी परिवारों ने सचमुच उनका उचित सम्मान नहीं किया। लोग उनको दूसरे देश का निवासी होने के कारण अजनबी समझते थे। प्रिंस ने अपनी बारीक निगाहों से इस बेरुख़ी को ताड़ लिया और अपना शेष जीवन अंग्रेज़ी क़ौम की भलाई की कोशिशों के लिए समर्पित कर दिया। सन् १८८१ में जो बड़ी नुमायश विलायत में हुई थी और जिसने उस वक़्त संसार भर में ख्याति पायी थी, वह प्रिंस एलबर्ट की सूझबूझ और व्यावहारिक योग्यता का ही परिणाम थी। इस ज़माने में नुमाइशों से मुल्क के लिए ख़तरा पैदा होने का डर था। लिहाज़ा कुछ बड़े सम्मानित लोगों ने प्रिंस को उनके इरादे से दूर रखना चाहा मगर प्रिंस ने प्रशंसनीय लगन और एकाग्रता से इस काम को अंतिम परिणति तक पहुँचाया और इस नुमाइश ने न सिर्फ इंगलिस्तान की राष्ट्रीय प्रतिष्ठा को बढ़ाया, बल्कि अंग्रेज़ी कल-कारख़ानों को इससे बहुत ताक़त मिली। इस सफलता ने प्रिंस के हौसलों को और भी बुलन्द कर दिया। वह दिलोजान से क़ौम की भलाई में लग गये। जहाँ कहीं शिक्षा या समाज-सुधार पर कोई जलसा होता उसके सभापति प्रिंस बनाये जाते थे। इस नुमाइश की देखा-देखी और भी बहुत सी नुमाइशें हुईं और हर मौक़े पर काम करने वालों ने प्रिंस के व्यापक अनुभव से लाभ उठाया। वह ज्ञान-विज्ञान और ललित कलाओं और कल-कारखानों की उन्नति के इच्छुक थे और उनको "कल-कारखानों का प्यारा और दस्तकारियों का लाड़ला" कहना बिलकुल उचित है। अपनी इन सब व्यस्तताओं के होते हुए प्रिंस एलबर्ट महारानी के कामों में भी सहयोग दिया करते थे, बल्कि यों कहिए कि उनके खास सलाहकार और मंत्री थे। उनको इंगलिस्तान की हुकूमत की कील कहना गलत न होगा। मशहूर अंग्रेज़ी कवि लार्ड टेनिसन ने उनकी शान में एक बेजोड़ क़सीदा लिखा है।

लेकिन गो कि प्रिंस एलबर्ट तमाम तरक़्क़ी की कोशिशों की जान थे और इंगलैण्ड में सभी अच्छे पढ़े-लिखे समझदार लोग उनकी कारगुज़ारियों की तारीफ़ करते थे, तब भी एक मौके पर जब रूस की सन्धि का मसला पेश हुआ तो कुछ मन्त्रियों ने प्रिंस पर खुफ़िया जासूस और मुखबिर होने का इलज़ाम लगाया और इसी इलज़ाम पर उनको टावर में क़ैद भी कर दिया। महारानी को अपने

देश की इस कृतघ्नता से बहुत दुख हुआ। मगर जब पार्लियामेंट फिर बैठी तो लार्ड ग्रेनवेल ने बहुत समझदारी से प्रिंस के सर से वह सभी इलज़ाम दूर कर दिये।

प्रिंस की चिट्ठी-पत्री

जीवनीकारों का अनुभव है कि हीरो के एक ख़त का महत्व लेखक के दस-बीस पन्नों से ज़्यादा होता है। मौलवी साहब ने भी प्रिंस और महारानी के अनेक पत्रों के अनुवाद लिखे हैं। इन पत्रों से शहज़ादे की नेक और पाक तबीयत का साफ़ पता चलता है। ख़ास तौर पर जो ख़त उन्होंने अपने उस्ताद और सच्चे दोस्त बैरन स्टाकमेयर को लिखे हैं वह अक़्लोदानिश का ख़ज़ाना मालूम होते हैं। अक्सर चिट्ठियों में बादशाहत के उसूलों और दार्शनिक समस्याओं पर बड़ी ख़ूबी से बहस की गयी है। प्रिंस के एड्रेस हर मौके पर बड़ी दिलचस्पी से सुने जाते थे। उन्होंने बड़े अभ्यास से अंग्रेज़ी लिखने और बोलने में वह योग्यता प्राप्त कर ली थी जिससे लोगों को आश्चर्य होता था। ख़ासकर एक एड्रेस जो उन्होंने अंक विद्या के लाभों पर दिया है वह उनके कुल एड्रेसों में विशेषरूप से ज़िक्र करने के क़ाबिल है। मौलवी साहब ने उसका अनुवाद बड़ी ख़ूबी से किया है गो कि भाषा ज़रा कठिन हो गयी है।

कुछ फुटकर बातें

उपरोक्त बातों के अलावा इस किताब में महारानी के रोज़नामचे से जगह जगह मनोरंजक चयन किये गये हैं। उनके सफ़रनामे, उनकी शाही मुलाकातों के ज़िक्र, उनकी सैर और तफ़रीह के किस्से, छोटे शहज़ादों के खेल-तमाशे, बचपन की कहानियाँ, घरेलू प्रबन्ध, बच्चों की शिक्षा-दीक्षा और दैनिक जीवन की और भी बातें बड़ी ख़ूबी से लिखी गयी हैं। महारानी की न्यायप्रियता और उदारता की कहानियाँ जो बहुत प्रभावशाली हैं, सारी पुस्तक में जगह-जगह मोतियों की तरह बिखेर दी गयी हैं। ऐतिहासिक घटनाएँ सब संक्षेप में लिख दी गयी हैं और अक्सर बड़ी ख़ूबी से उनके बारे में राय भी दी गयी है।

—ज़माना, अगस्त १९०५

हाल की कुछ किताबें

हर एक भाषा की बौद्धिक और ज्ञानविज्ञान-विषयक उन्नति को जाँचने का सबसे अच्छा तरीक़ा यह है कि उसकी रचनाओं और संकलन इत्यादि पर दृष्टि डाली जाय। इस लिहाज़ से अगर उर्दू की हाल की कुछ किताबों पर निगाह डालिए तो किसी क़दर मायूसी होती है। इसमें शक नहीं कि किताबें बहुत सी प्रकाशित हुईं मगर उनका स्तर कुछ ऐसा गिरा हुआ है कि उर्दू भाषा का महत्व उनके कारण बहुत नहीं बढ़ता। 'आबे-हयात' या 'हयाते-जावेद' के स्तर की कृतियाँ अब दिनों-दिन दुर्लभ होती जाती हैं और 'तमद्दुने-अरब' के स्तर के अनुवाद तो जैसे सपना हो गये। और प्रान्तों की भाषाओं को देखिए तो ज्ञान-विज्ञान के हर क्षेत्र में अनेकों पुस्तकें लिखी जा रही हैं जो नये-नये अनुसंधानों से भरपूर होती हैं और जिनको पढ़कर यह इतमीनान होता है कि हमने अपने ज्ञान में कुछ वृद्धि की। हमारी उर्दू ज़बान में वैज्ञानिक और ऐतिहासिक पुस्तकों का तो ज़िक्र ही क्या कुछ दिनों से ऊँचे स्तर की कहानियाँ भी नज़र से नहीं गुज़रीं। कुछ लोगों का ख़याल है कि गंभीर साहित्य की मंदी का कारण उर्दूदाँ लोगों की उदासीनता और उपेक्षा है। हम इस राय से पूरी तरह सहमत नहीं हैं। सम्भव नहीं कि ज्ञान के बाज़ार में कोई अनूठी चीज़ आये और हाथों-हाथ बिक न जाये। ख़ास सबब इस मंदी का यह है कि आमतौर पर लिखने वाले न कोई ऊँची कसौटी अपनी आँखों के सामने रखते हैं और न काफ़ी तौर पर लिखने में जान ही लगाते हैं। अगर बाक़ायदा तौर पर ऐसी कोशिशें की जायँ तो पब्लिक बहुत जल्द उनकी क़द्र करने लगे और उर्दू का इल्म का बाज़ार हरा-भरा और कामयाब हो जाये। तो भी पढ़नेवालों की यह बदशौकी और लिखनेवालों की यह बेदिली देखते हुए हम इन किताबों को भी ग़नीमत समझते हैं जो पिछले कुछ महीनों में प्रकाशित हुईं और उन पर एक सरसरी निगाह डालते हैं।

मौलवी मुहम्मद हसन खाँ साहब के नाम से उर्दूदाँ पब्लिक अपरिचित नहीं है। आपकी दो किताबें 'तुज़के अब्दुर्रहमानी' और 'हाजरा' इसके पहले लोकप्रिय हो चुकी हैं। यह तीसरी किताब एक अंग्रेज़ी पुस्तक 'द डायरी आफ़ ए टर्क' का अनुवाद है। ख़ालिद जो इस पुस्तक का लेखक है एक तुर्की नौजवान है

जिसने राष्ट्रीय झगड़ों के कारण अपने देश से भागकर इंगलिस्तान में शरण ली है और वहीं यह किताब लिखी है। इसके पढ़ने से तुर्की के पिछले पचास-साठ वर्षों की सांस्कृतिक स्थितियों पर बहुत कुछ प्रकाश पड़ता है। यद्यपि लेखक खुद एक तुर्क है मगर उसने तुर्की मामलों पर एक सजग अंग्रेज़ की निगाह डाली है और अक्सर बड़ी गंभीरता से उन पर अपनी राय भी दी है। हिन्दुस्तान की तरह तुर्की भी मौजूदा ज़माने की रफ़्तार के असर से प्रभावित हो रहा है। यहाँ की तरह वहाँ भी पोलिटिकल आज़ादी और अधिकारों की माँग करनेवालों की संख्या दिनों-दिन बढ़ती जाती है। खालिद इसी श्रेणी का एक जोशीला नौजवान है और गो वह तुर्की की आन्तरिक व्यवस्था से खुश नहीं है मगर जब कोई ऐसा मौक़ा आया है उसने तुर्की को उन ग़लतफहमियों से बचाने की कोशिश की है जो योरोप में बेइंसाफ़ और द्वेष से भरे हुए पत्रों और पत्रकारों की बदौलत फैली हुई हैं। ख़ास तौर पर जिस अध्याय में उसने आरमीनियों के उपद्रव और विद्रोहात्मक षड्यंत्र और तुर्की गवर्नमेण्ट की परेशानी और बेबसी का ज़िक्र किया है उसके पढ़ने से साफ़ ज़ाहिर हो जाता है कि योरोपीय राज्य तुर्की की जड़ खोदने में, चाहे वह कितने ही अनुचित ढंग से क्यों न हो, पहलू नहीं बचा रहे हैं। इसके अलावा लेखक ने तुर्की के रीति-रिवाज और सामाजिक व्यवस्था का भी थोड़ा बहुत ज़िक्र किया है जिससे ज़ाहिर होता है कि हिन्दुस्तान की तरह वहाँ भी नयी और पुरानी सभ्यता में संघर्ष छिड़ा हुआ है। उद्योग-धंधों और कल-कारख़ानों की मंदी का वहाँ भी यही हाल है और वहाँ भी पढ़ा-लिखा समुदाय इसी तरह सरकारी नौकरियों पर जान देता है। अनुवाद की दृष्टि से यह पुस्तक प्रायः निर्दोष है मगर एक चीज़ जो तबियत को परेशान करनेवाली है वह इसकी लम्बी भूमिका है। ज्ञान जितना बड़ा हो, पग्गड़ भी उतना ही बड़ा होना चाहिए। आमतौर पर भूमिका में मूल पुस्तक के उद्देश्य और लक्ष्य बताये जाते हैं मगर मौलवी मुहम्मद हसन ख़ाँ ने अपनी भूमिका को, जो असल किताब से दो ही चार सफ़े कम है, सांस्कृतिक प्रश्नों की बहस का मैदान बनाया है। आप हिन्द की इस्लामी तरक़्क़ी की रफ्तार से दुखी और बेज़ार हैं, और ज़रूरत से ज़्यादा सख्त शब्दों में आज़ादी के उन बड़े-बड़े चाहनेवालों से अपना विरोध प्रकट करते हैं जिनमें जस्टिस तैयब जी, जस्टिस अमीर अली, सर आग़ा ख़ाँ जैसे क़ौम के नेता शामिल हैं। बहस उसी बात को लेकर है जिस पर बार-बार अख़बारों और रिसालों में लिखा जा चुका है। हाँ, इस मौक़े पर सारी आपत्तियाँ और उनके जवाब बाक़ायदा तौर पर एक जगह इकट्ठा कर दिये गये हैं। हमको इससे

बहस नहीं कि आपने ऐसे विचारों को जो मौजूदा ज़माने से क़तई मेल नहीं खाते क्यों प्रकट किया। हर आदमी को अपने विचार व्यक्त करने का अधिकार है मगर इस काम के लिए दूसरी तरह की किताब की ज़रूरत थी। काग़ज़, छपाई और लिखाई के लिहाज़ से यह किताब बहुत अच्छी है। इन गुणों को देखते इसकी क़ीमत ज़्यादा नहीं है।

समकालीन ऐतिहासिक घटनाओं पर ड्रामा लिखने का रिवाज अभी उर्दू ज़बान में बहुत कम है। एलबर्ट बिल पर एक ड्रामा छपा था। इसके बाद अब 'दकन रिव्यू' के क़ाबिल एडिटर मौलवी ज़फ़र अली खाँ बी० ए० ने रूस और जापान की लड़ाई पर एक ड्रामा लिखा है जिसमें लड़ाई के कारण, जापानी सिपाहियों और सेनापतियों का देश-प्रेम, रूसी फ़ौज के आपसी झगड़े-फ़साद और इसके बुरे नतीजे बड़े मनोरंजक ढंग से दिखाये गए हैं। कहीं कहीं हुस्नो-इश्क़ की चाशनी भी डाल दी गई है जिससे किताब की दिलचस्पी बहुत बढ़ जाती है। मगर ड्रामे का सर्वोत्तम गुण यह है कि उसका एक-एक शब्द और एक-एक वाक्यांश हृदय के आवेग से गर्म हो और सुननेवाले के दिल में कभी गुदगुदी, कभी गर्मी और घुलावट, कभी जोशो-ख़रोश और कभी ग़म और गुस्सा पैदा करे। इस लिहाज़ से हम इस किताब को ड्रामे के बजाय नाविल से ज़्यादा मिलता-जुलता समझते हैं। इसके अलावा कला का एक दोष यह है कि सारी किताब पढ़ जाइये मगर यह पता नहीं चलता कि कौन हीरो है और कौन हीरोइन। आमतौर पर ड्रामा में हीरो को ऐसी महत्वपूर्ण भूमिका दी जाती है और सारी घटनाओं में उसका अंश इतना अधिक होता है कि उसको दूसरे साधारण पात्रों से अलग पहचान लेना बहुत आसान होता है। मगर इस ड्रामे में ग़ौर करने से भी समझ में नहीं आता कि किसको हीरो कहें और किसको हीरोइन। यह भी कहना ज़रूरी है कि जल्द-जल्द सीन बदलना दोषपूर्ण है, इसका लिहाज़ किये बग़ैर कि घटनाओं के लिए दृश्य-परिवर्तन की ज़रूरत है या नहीं। इस ड्रामे में कुछ ही पन्नों में टोकियो, काबुल, सेण्ट पीटर्सबर्ग, मास्को, पोर्ट आर्थर, क़ाज़ाँ, लड़ाई का मैदान और और भी बहुत सी जगहों का नक़्शा दिखाया गया है। इसी कारण से किसी जगह पर पढ़नेवाले का ध्यान काफ़ी तौर पर जम नहीं पाता।

कैरेक्टरों के संभालने में लेखक को एक हद तक कामयाबी हुई है। ऐमी, क्लियोपैट्रा और कियो वग़ैरह इंसानियत के बेहतरीन नमूने हैं। मिकाडो की दृढ़-निश्चयता और ज़ार के हृदय की अस्थिरता भी ख़ूब दिखाई गई है मगर इसके साथ ही कहीं-कहीं मौक़े-महल का लिहाज़ न करके कैरेक्टरों से ऐसे पार्ट अदा कराये गये हैं जो किसी तरह नैचुरल नहीं मालूम होते बल्कि एक हद तक सुरुचि

को ठेस पहुँचाते हैं जैसे :

की डुगडुगी से पहले क़लन्दर ने मुनादी
फिर उठके रसन खिर्स की बंदर को थमा दी
भालू ने जो बन्कार के बंदर को सदा दी
बंदर ने भी दुम अपनी हिक़ारत से उठा दी
और खिर्स को दिखला दिये दो सुर्ख रतालू ।

ये शेर अगर किसी मसखरे की ज़बान से अदा कराये जाते तो ज़रा भी बेमौक़ा या नागवार न मालूम होते । मगर एक ऐसी मजलिस में जो शेख़-उल-इस्लाम क़ाज़ी मुहम्मद बिन यह्या के घर पर हुई है और वहाँ भी एक तहज़ीब-याफ़्ता मौलवी की ज़बान से ऐसे पोच अशआर का निकलना बहुत बुरा मालूम होता है ।

इसी तरह मुल्ला मुहम्मद सईद की ज़बान से नीचे लिखी बातचीत अदा कराई गई है :

'यूरोप के ईसाई, क्या अंग्रेज और क्या रूसी, लातों के भूत हैं, बातों से नहीं मानते । जो डंडा संभालकर उनके सिर पर सवार हो जाये उसके ये दोस्त और जो ज़रा दबा उसका उन्होंने टेटुआ दबाया ।'

यह बातचीत काबुल के अमीर जैसे समझदार, ऊँचे दिमाग़वाले बादशाह के एक सुसंस्कृत मंत्री की है मगर किसी बाज़ारू आदमी की ज़बान से निकलती तो ज़्यादा ठीक मालूम होती । इसके अलावा ऐसी बेहूदा बातचीत से काबुल के अमीर के दरबार का रोब-दाब, शान-शौकत पढ़नेवाले के दिल से दूर हो जाती है ।

सबसे बड़ी ग़लती कैरेक्टरों के दिखाने में लेखक महोदय से यह हुई है कि आपने मिस्टर और मैडम रूज़वेल्ट को बिल्कुल मटियामेट कर दिया है । आपकी मैडम रूज़वेल्ट किसी पुराने दक़ियानूसी हिन्दी क़िस्से की रानी हों तो हों मगर अमरीका के मनस्वी, बुद्धिमान प्रेसीडेन्ट की पत्नी नहीं हो सकतीं । इन दोनों कैरेक्टरों में जो बातचीत होती है वह उनके पद, सभ्यता और कुलीनता की दृष्टि से बिल्कुल छिछली है, मसलन् मिस्टर रूज़वेल्ट अपनी बीवी से कहते हैं—

यह खब्त क्या तुम्हें सूझा है ऐ मेरी प्यारी
मगर दिमाग़ तुम्हारा है अक़्ल से आरी

हम नहीं समझते कि मिस्टर रूज़वेल्ट या उनकी बीवी की नज़रों से यह शेर गुज़रे तो वह हिन्दुस्तानियों की तहज़ीब का अपने दिल में क्या अन्दाज़ा लगायें । आधुनिक सभ्यता की विशेषता स्त्रियों के साथ अत्यंत सदाचार बरतना है । अगर उनको आवश्यकतावश बुरा-भला भी कहें तो बहुत संयत और क्षमायाचना के से

स्वर में कहेंगे न कि इस तरह आमने-सामने गाली-गलौज ! मगर इसी पर खात्मा नहीं हुआ है। सारी दुनिया एकमत है कि मिस्टर रूज़वेल्ट अत्यंत शांति-प्रेमी, स्वतंत्र-विचार, और संधि व समझौते के ज़ोरदार समर्थक व्यक्ति हैं ! मगर इस ड्रामे में लिखने के जोश में उनकी ज़बान से निहायत पोच और गन्दे खयालात का इज़हार किया गया है । मसलन 'दो-तीन लाख और रूसी मारे गये तो मेरी जूती से और जापान की फ़ौजी आबादी लाख-डेढ़ लाख कम हो गई तो मेरी बला से ।'

अफ़सोस हमारे नाटककार ने एक बहुत ही नेक और बड़े आदमी को जनता की आँखों में गिरा दिया है । इसमें शक नहीं कि नाटककार हमेशा थोड़ी-बहुत अतिरंजना से काम लिया करता है मगर नेक को बद बना देना अतिरंजना नहीं है । अलबत्ता मामूली नेक को फ़रिश्ता और बद को शैतान बना देना अक्सर ड्रामा लिखनेवालों का ढंग रहा है । अफ़सोस है कि इस किताब में ऐसी बातों का बहुत कम लिहाज़ रखा गया है और शायद यही वजह है कि सारी किताब में कहीं भी भावनाओं में सच्चा उभार नहीं आता ।

भाषा इस पुस्तक की साफ़-सुथरी है । कहीं-कहीं जटिल और दुर्बोध शब्दों का प्रयोग कानों को खटकता है । कथोपकथन कहीं-कहीं बहुत लम्बे हैं जिनसे तबियत उकता जाती है । ड्रामे के लिए शब्दों की सहजता और उपयुक्तता बहुत ज़रूरी चीज़ है । भारी-भारी शब्द, जिसका ज़रूरत से ज़्यादा लिहाज़ रखा गया है, पांडित्यपूर्ण और ऐतिहासिक विषयों के लिए उचित हों तो हों मगर ड्रामा के लिए उपयुक्त नहीं।

किताब की तरफ से नज़र हटाकर जब उसकी भूमिका को देखिये तो फ़ौरन ऐसा खयाल होता है कि जैसे बाज़ार की खाक छानकर एक मसखरों की मह-फ़िल में आ गये । मौलवी अब्दुल हक़ साहब लेखन-कला के पंडित हैं । आपने उस संक्रामक रोग का, जिसको 'ज़मीन की न मिटनेवाली भूख' कहते हैं और जिसमें योरप की कुल सल्तनतें गिरफ्तार हैं, निहायत प्यारे लहजे में ज़िक्र किया है । आपकी शैली हास्यपूर्ण और बहुत ही दिल में घर करनेवाली है । एक ऐसे रूखे-सूखे पोलिटिकल मसले को ऐसे मज़ेदार ढंग से निबाहना आपही का काम है ।

अंजुमन तरक्क़िये उर्दू और अंजुमने उलूमे क़दीमाँ कुछ अर्से से क़ायम हैं और विभिन्न शास्त्रों की कुछ किताबें भी प्रकाशित कर चुके हैं मगर हमारी समझ में अब तक उनकी तरफ़ से कोई ऐसी किताब नहीं प्रकाशित हुई जो ऐतिहासिक महत्व की दृष्टि से उस पत्र-माला की बराबरी कर सके जिसका पहला नम्बर 'रुक्काते बद्र' के नाम से प्रकाशित हुआ है । मौलवी हकीम सैयद मुहम्मद अली साहब अर्श मलीहाबादी ने जो उसके सम्पादक हैं वाक़ई मुल्क और ज़बान पर

एहसान किया है। नवाब वाजिद अली शाह जब अपने भोग-विलास के कारण बरबाद हुए तो उनके अनेक महलों और बेगमों पर हसरतभरी बेचारगी की हालत छा गई। कितनी ही बेगमों ने तो सरकारी वसीक़ा लेकर संतोष किया और शहर को छोड़ कर दर-ब-दर भटकने लगीं और कितनी ही दुनिया की गंदगियों का शिकार हो गईं। मगर कुछ पतिव्रता स्त्रियों ने अपने सम्मान और शील को बनाये रक्खा और जब तक ज़िन्दा रहीं प्यारे जान आलम के नाम पर मरती रहीं। बद्र आलम साहिबा उन्हीं बेगमों में से थीं और यह किताब, जो रुक़्क़ात-बद्र के नाम से छपी है, उन पत्रों का संग्रह है जो बद्र आलम साहिबा ने प्यारे अख़्तर के नाम लिखे थे। क्योंकर मुमकिन था कि वह तबीयतें जो नाज़ो-नेमत की गोद में पली थीं, जिन्होंने मुसीबत और नाउम्मीदी को सपने में भी न देखा था और जो ऐश-परस्ती में सर से पैर तक डूबी हुई थीं, एकाएक अपनी आदतों को बदल लेतीं। गो जान आलम मटियाबुर्ज की चहारदीवारी में बंद थे, तख़्तो ताज और शान-शौकत का ख़ात्मा हो गया था, गो बद्र आलम किराये के मकान में रहती, महाजनों के तकाज़े सहती और 'झाड़ी ज़मीन पर' बैठती थीं मगर ख़त सब के सब आशिक़ाना शिकवे-शिकायत, गुपचुप माशूक़ाना इशारों और लगावटबाज़ी के जुमलों से भरे हुए हैं। ज़बान की नमकीनी का क्या पूछना। लखनऊ की एक आला दर्जे की तालीमयाफ़्ता बेगम की ज़बान में जिस क़दर नज़ाकत, पाकीज़गी और सुथरापन हो सकता है वह सब इन ख़तों में मौजूद है। हाँ चूँकि वह ज़माना 'सुरूर' के रंग का था इसलिए अक्सर सम्बोधन आदि लम्बे-चौड़े हैं और ज़्यादातर मौक़ों पर छोटी-सी बात भी बहुत अनुप्रासों से भरी हुई शैली में अदा की गई है। बद्र आलम साहिबा शायरा भी थीं और संकलित पत्रों को देखकर कह सकते हैं कि उनकी तबीयत शायराना थी। अफ़सोस ज़माना कैसा बेरहम है! उन शहज़ादियों को, जो ज़मीन पर पाँव भी न रखती थीं, ज़माने के सदमे उठाना और ज़िंदगी के ज़ुल्म सहना पड़े। इन पत्रों में एक बात जो सबसे ज़्यादा दिल पर असर करती है वह यह है कि बद्र आलम साहिबा का यही ख़याल रहा कि जान आलम से बहुत जल्द फिर लखनऊ में मिलेंगे। काश इस पत्रों के संग्रह के साथ एक भूमिका भी होती तो किताब ज़्यादा दिलचस्प हो जाती।

स्त्री-शिक्षा के प्रश्न से आजकल बड़ा लगाव दिखायी पड़ रहा है। गवर्नमेण्ट और पब्लिक दोनों ही ने उसके महत्व और उसकी आवश्यकता को स्वीकार कर लिया है और उसको व्यावहारिक रूप देने का प्रयत्न कर रहे हैं। ऐसे वक़्त में मुंशी अहमद अली ख़ाँ साहब की किताब 'अतालीक़े निस्वां' एक बड़ी ज़रूरत

को पूरा करेगी। यह किताब पाँच छोटी जिल्दों में प्रकाशित हुई है। ग्रन्थकार ने स्त्री-शिक्षा की जो कसौटी अपने सामने रखी है वह यह है कि लड़कियाँ 'दो चार हर्फ़ उर्दू ज़बान में अपने रिश्ते-कुनबेवालों को अपनी ज़रूरत के बारे में लिख-पढ़ सकें, घर का रोज़ का ख़र्च लिख लें, बच्चों को मामूली किताबें पढ़ा सकें, अपनी और घरवालों की सेहत ठीक रक्खें और बच्चों की आम बीमारियों का इलाज हकीम न मिलने की सूरत में कर लें। उनको सिखायें-पढ़ायें, स्वादिष्ट और पौष्टिक खाने पकायें, सीने-पिरोने और कुछ कशीदे काढ़ने की जानकारी रखती हों और सामान्य ज्ञान की बातों का उनके पास ख़ज़ाना हो।' हम इस कसौटी का पूरी तरह समर्थन करते हैं। हमको खुशी है कि लेखक ने इस पर अमल करने में एक बड़ी हद तक कामयाबी हासिल की है और 'अतालीक़े निस्वाँ' की पाँचों जिल्दों में कहीं यह कसौटी नज़रों से नहीं गिरने दी है। हाँ, लेखों के क्रम से हम पूरी तरह सहमत नहीं हैं। मसलन, पहले हिस्से में हिसाब की तालीम दी गई है। हमारी समझ में बच्चों के लिए सबसे पहले मामूली चीज़ों पर ज़बानी सबक़ देने की ज़रूरत है। शुरू-शुरू में उनको हिसाब से बहुत कम दिलचस्पी होती है। हिसाब का ज़िक्र स्वभावतः गृहस्थी के प्रबंध से संबंध रखता है जिसका ज़िक्र पाँचवीं जिल्द में आया है। खाना पकाने, सीने-पिरोने, काढ़ने और रँगने पर मौजूदा ज़माने की खोजों और आविष्कारों को ध्यान में रखकर बहुत फ़ायदेमंद और तजुर्बे की हिदायतें की गई हैं। सामान्य लेख और चिट्ठियाँ लिखने के पाठों का क्रम बिल्कुल अंग्रेज़ी किताबों के ढंग पर रखा गया है जिससे उम्मीद है कि यह मुश्किल काम बहुत आसान हो जायेगा।

पंजाब रिलीजस बुक सोसाइटी के ज्ञान-विज्ञान-विषयक कार्यों की 'ज़माना' के पन्नों में कई बार तारीफ़ की जा चुकी है। पिछले कुछ महीनों में इस सोसाइटी की तरफ़ से कई फायदेमंद और काम की किताबें प्रकाशित हुई हैं जिनमें विषय की दृष्टि से 'हयाते शमा' ख़ास तौर पर ज़िक्र करने के क़ाबिल है। आकार इस पुस्तक का छोटा है और पृष्ठ संख्या भी साठ से ज़्यादा नहीं मगर इनमें ग्रन्थकार ने वह सब ज़रूरी बातें भर दी हैं जो एक साइंस का आरंभिक ज्ञान रखनेवाले को जाननी चाहिए। मसलन् चिराग़ के लिए हवा चलने की क्यों ज़रूरत होती है, चिराग़ के जलने से कौन-कौन चीज़ें पैदा होती हैं, कोयले की गैस क्या है और क्योंकर बनती है वग़ैरह। अक्सर बातों को समझाने के लिए तस्वीरों से मदद ली गई है। भाषा सरल और सुबोध है। इस किताब के अलावा इसी रूप-रंग और आकार-प्रकार की कई और किताबें सोसाइटी ने छापी हैं— 'फूलों की कहानी' 'तारीख़े मिस्र' और 'राबिन्सन क्रूसो' का तर्जुमा वग़ैरह।

॥ विविध प्रसंग ॥

'फूलों की कहानी' वनस्पति-शास्त्र की एक प्राइमर है। इसमें फूलों की बनावट, उनकी अंग-रचना और क्रिया-कलाप, उनका वर्गीकरण, उनका शादी-ब्याह, उनके जन्म आदि का काफ़ी विस्तार के साथ वर्णन किया गया है। फूलों के विविध अंग तस्वीरों की मदद से दिखाये गये हैं। ऐसी हालत में जब कि उर्दू ज़बान में वनस्पति-शास्त्र पर विशद पुस्तकें बहुत कम लिखी गई हैं, हम इस प्राइमर को ग़नीमत समझते हैं। ऐसी किताबों के लिखने में एक बड़ी दिक़्क़त यह है कि मौक़े-मौक़े पर शब्दों की कमी अनुभव होने लगती है और लेखक को मजबूरन दूसरी भाषा के शब्द ज्यों के त्यों रख देने पड़ते हैं। मगर इस किताब में अक्सर अंग्रेज़ी शब्दों के मुक़ाबले में उनके फ़ारसी पर्याय ढूँढ़ निकाले गये हैं।

दूसरी किताब 'तारीख़े मिस्र' एक हिस्ट्री की प्राइमर है जिसमें पुराने ज़माने के मिस्रियों के रीति-रिवाज, रहन-सहन, आचार-विचार, राज्य-व्यवस्था, धार्मिक विश्वास, उत्थान और पतन के कारण इत्यादि का संक्षिप्त विवरण दिया गया है। मिस्र का पुराना इतिहास इंजील के अनुसार नूह के तूफ़ान के बाद ही से शुरू होता है। इस किताब में लेखक ने नये ऐतिहासिक अनुसंधानों को ध्यान में रक्खे बिना, बाइबिल के बयान का समर्थन कर दिया है। मगर मिस्र के धार्मिक विश्वासों और रीति-रिवाज का हाल पढ़कर यह विचार पक्का हो जाता है कि मिस्रियों की सभ्यता आर्यों की सभ्यता का अनुकरण थी। मसलन् मिस्र वाले आवागमन को मानते थे और जात-पाँत के पाबंद थे जो आर्य सभ्यता की विशेषताएँ हैं। यह किताब बहुत ही संक्षिप्त है मगर तो भी सिर्फ़ बादशाहों की लड़ाइयों का ज़िक्र करके ख़तम नहीं हो जाती, सांस्कृतिक स्थितियों पर भी थोड़ा-बहुत प्रकाश डालती है जिसको इतिहास-लेखन की कला का प्रधान उद्देश्य कहना चाहिए।

तीसरी किताब 'सरगुज़श्ते रॉबिन्सन क्रूसो' है। यह एक निहायत मशहूर अंग्रेज़ी क़िस्से का तर्जुमा है जिसमें एक अंग्रेज़ी मल्लाह के जहाज़ के टूटने और सुनसान वीरान जंगलों में लम्बी मुद्दत तक रहने के बाद अपने देश को वापस आने का क़िस्सा ऐसे सरल और मनोरंजक ढंग से बयान किया गया है कि यह किताब हमेशा इरादे के पक्के नौजवानों में बहुत पसंद की जाती रही है। शायद ही कोई अंग्रेज़ी बच्चा ऐसा होगा जो रॉबिन्सन क्रूसो के नाम से उसी तरह परिचित न हो जितना किसी मामूली दोस्त के नाम से। डानियल डीफ़ो, जो इस किताब का लेखक है, मलिका एन के ज़माने का एक बड़ा लेखक हुआ है जिसने बहुत दिनों तक अपने वक़्त के सवालों पर किताबें लिखने के बाद यह क़िस्सा लिखा और सच तो यह है कि अपनी अमर कीर्ति की नींव डाल गया। हमारी भाषा

में देखिए तो रेनाल्ड्स के नाविलों के तर्जुमे भरे पड़े हैं मगर अब तक इस हौसलामंद और उमंग पैदा करनेवाली किताब की किसी ने बात भी न पूछी थी। कुछ अर्सा हुआ हिन्दी में इसका अनुवाद प्रकाशित हुआ था। अब इस सोसाइटी के सत् प्रयत्नों से उर्दू में भी प्रकाशित हो गया। अनुवाद सरल और सुबोध भाषा में है मगर तस्वीरों के बिना यह किताब कुछ फीकी मालूम होती है।

'ताजो निशां' और 'गंजे शायगाँ' के लेखक मुहम्मद रफ़ी रिज़वी आली ने इसी सिलसिले में एक और किताब छापी है जिसमें विभिन्न देशों और राष्ट्रों की पगड़ियों और टोपियों की तस्वीरें दिखाने की कोशिश की गई है। ऐसे संग्रहों का महत्व अब केवल इस कारण से है कि उनसे संस्कृति के इतिहास की व्याख्या में सहायता मिलती है मगर उनसे यह फ़ायदा उठाने के लिए विषय को जिस तरह से सजाने-सँवारने की ज़रूरत है वह इसमें नहीं है। अगर लेखक ने अंग्रेज़ी टोपियों का क्रम इस प्रकार दिया होता कि पहले उनका क्या ढंग था फिर उसमें क्या परिवर्तन हुआ और अब उनकी क्या शक्ल है तो देखनेवाले को ख़ास दिलचस्पी होती। इसके अलावा ऐसी किताबें किसी काम की नहीं होतीं जब तक कि तस्वीरें साफ़ और असल से हूबहू मिलती-जुलती न हों। अफ़सोस है कि इस हैसियत से यह किताब बहुत कम महत्व रखती है। तस्वीरें ज़्यादातर ग़लत हैं जिनको देखकर असल चीज़ की तस्वीर दिमाग़ में नहीं आती। तस्वीरें रंगीन हो सकतीं तब भी ग़नीमत होता।

ऐसे अच्छे वक़्त में जब कि हिन्दुस्तान हुज़ूर शहज़ादे और शहज़ादी वेल्स के शुभ आगमन से दूसरा स्वर्ग हो रहा है, इस चर्चा का प्रकाशित होना अवसर के बहुत अनुकूल और उचित है। क़ाज़ी अज़ीज़उद्दीन अहमद साहब ने, जो इस किताब के लेखक हैं और जिनके नाम से उर्दू लिटरेचर बहुत बार परिचित हो चुका है, शहज़ादा साहब के पूरे हालात मुख़्तलिफ़ ज़रियों से जमा करके इकट्ठा कर दिये हैं मगर लेखक ने सिर्फ़ संग्रह और संपादन का कष्ट नहीं उठाया है बल्कि पुस्तक की भाषा और लेखन-शैली से उस भक्ति और सच्ची वफ़ादारी का पता चलता है जो हिन्दुस्तानियों को अपने शाही मेहमानों से है। ख़ासकर वे अध्याय, जिनमें शहज़ादे के निजी गुणों की चर्चा की गई है, बहुत ख़ूबी से लिखे गये हैं और मौक़े-मौक़े पर ऐसी जनश्रुतियाँ उद्धृत की गई हैं जो शहज़ादे की नेक तबीयत, दानशीलता और ग़रीबों की मदद करने के गुण का प्रमाण देती हैं।

—ज़माना, फ़रवरी १९०६

शरर और सरशार

हकीम बरहम साहब गोरखपुरी ने अगस्त-सितम्बर के 'उर्दुए मुअल्ला' में अद्‌भुत योग्यता और बारीकी से शरर और सरशार की तुलना की है जिसमें आपने हज़रत शरर को ऐसा आसमान पर चढ़ाया है कि बेचारे सरशार का नाम तक उनके मुक़ाबले में लिया जाना ठीक नहीं समझते। उनके लेख का सारांश यह है कि सरशार का उर्दू लिटरेचर की गर्दन पर कोई एहसान नहीं है। अच्छा होता कि ऐसा लेख लिखने के पहले हकीम साहब ने यह भी देख लिया होता कि उनसे ज़्यादा योग्य आलोचकों ने जिनमें शेख़ अब्दुल क़ादिर बी० ए० भी हैं, उर्दू जबान में सरशार को क्या जगह दी है। यह ध्यान रखना जरूरी है कि उर्दू शायरों या उनकी शायरी पर हर सुरुचि-सम्पन्न उर्दूदाँ राय दे सकता है मगर उर्दू नाविल पर कुछ लिखने की जवाबदेही वही आदमी ले सकता है जो कम से कम अंग्रेज़ी भाषा के मशहूर उपन्यासकारों की कृतियों से परिचित हो। इस लिहाज़ से शेख़ साहब की आलोचना हकीम साहब के मुक़ाबले में कहीं ज़्यादा वज़न रखती है।

मिस्टर चकबस्त का लेख आलोचनात्मक था। उसमें सरशार के गुणों के साथ-साथ उनके दोषों पर प्रकाश डाला गया था। मगर हकीम साहब ने सरशार की त्रुटियाँ तो सब की सब दिखा दीं, चाहे काल्पनिक ही सही, मगर शरर को बिलकुल निर्दोष समझा हालांकि सब लोग जानते हैं कि आज तक कोई आदमी ऐसा नहीं हुआ जिसमें खूबियों के साथ-साथ बुराइयाँ न पाई जायं।

हम हकीम साहब के कहने से इस बात को मान लेते हैं कि हज़रत शरर अरबी के फ़ाज़िल, फ़ारसी के बहुत बड़े आलिम और अपने वक़्त के बहुत बड़े विद्वान हैं। बहुत सी योरोपीय भाषायें भी अच्छी तरह जानते हैं। डिक्शनरी की मदद से तर्जुमे कर सकते हैं और उर्दू गद्य में तो एक नये रंग के प्रवर्तक और आधुनिक साहित्य के जन्मदाता हैं। इसके विपरीत बेचारा सरशार फ़ारसी में कच्चा और अरबी में नादान बच्चा है। इतिहास-भूगोल से उसको ज़रा भी लगाव नहीं, योरप की भाषाओं का क्या ज़िक्र उर्दू में भी काफ़ी योग्यता नहीं रखता। मगर हमको इस वक़्त इन बड़े लोगों की निजी योग्यताओं से बहस

नहीं। हम सिर्फ यह देखना चाहते हैं कि कहानी लिखने के मैदान में किसका कलम उड़ानें भरता है और इस कला में कौन अधिक कुशल है।

स्पष्ट है कि उपन्यास लिखना और बात है, आलिम-फ़ाज़िल होना और बात। बिलकुल उसी तरह जैसे शायरी का हाल है। गोल्डस्मिथ, शेली, बायरन जैसे बड़े बड़े कवि अपने कालेज के भगाये हुए लोगों में से थे। उसी तरह थैकरे और डिकेन्स पांडित्य की दृष्टि से अपने समय के दूसरे विद्वानों से कहीं घटकर थे मगर कहानी के आसमान पर यही दोनों नाम तारे बनकर चमके।

'फ़साना' और 'नाविल' हमको उस अनोखे भेद की याद दिलाते हैं जो हकीम साहब ने उनके बीच रक्खा है। हकीम साहब को मालूम होगा कि 'नाविल' अंग्रेज़ी शब्द है और अगर उसका अनुवाद हो सकता है तो वह 'फ़साना' है। शाब्दिक रूप से दोनों में कुछ अंतर नहीं है किन्तु आशय की दृष्टि से दोनों का अंतर काफी स्पष्ट है। नाविल उस क़िस्से को कहते हैं जो उस ज़माने को, जिसका कि वह ज़िक्र कर रहा है, साफ़-साफ़ तस्वीर उतारे और उसके रीति-रिवाज, अदब-क़ायदे, रहन-सहन के ढंग वग़ैरह पर रोशनी डाले और अलौकिक घटनाओं को स्थान न दे या अगर दे तो उनका चित्रण भी इसी ख़ूबी से करे कि जन-साधारण उनको यथार्थ समझने लगें। इसी का नाम है नाविल या नये ढंग का क़िस्सा। 'फ़सानये अजायब' या 'गुलबकावली' या 'क़िस्सए मुमताज़' या 'तलिस्मे होशरुबा' या 'बोस्ताने ख़याल' सब पुराने ढंग के क़िस्से हैं जिनमें नये क़िस्से को ख़ूबियों की गंध तक नहीं। हाँ, मीर अम्मन देहलवी की लोकप्रिय पुस्तक 'बाग़ोबहार' या 'दास्ताने अलिफ़लैला' कुछ हद तक ऊपर लिखी गई ख़ूबियाँ रखती हैं यानी अपने ज़माने की तहज़ीब पर एक धुँधली रोशनी डालती हैं।

इस कसौटी को अपने सामने रखकर अगर सरशार के क़िस्सों को देखिए तो ऐसी कौन-सी ख़ूबी है जो इनमें भरपूर नहीं। सच तो यह है कि उनकी सब किताबें अपने ज़माने की सच्ची तस्वीरें हैं। अगर आज से सौ बरस बाद कोई 'फ़सानये आज़ाद' को पढ़े तो उसको आज से पचीस बरस पहले की तहज़ीब और सोचने-विचारने के ढंग और साधारण लोगों की साहित्य-रुचि की झलकियाँ साफ़ नज़र आयेंगी जो इतिहास के अध्ययन से, चाहे वह कैसा ही विस्तृत और गंभीर क्यों न हो, हरगिज़ नज़र नहीं आ सकतीं। सांस्कृतिक जीवन का कोई ऐसा पहलू नहीं जिस पर सरशार की ज़बान ने अपने निराले ढंग से फूल न बरसाये हों। यहाँ तक कि मदारियों के खेल, भाँड़ों की नक़लें, बाज़ारू शराब पिलानेवालियों के नख़रे और ऐसी ही बेशुमार बातों की छोटी-छोटी बारीकियों में भी अद्भुत चित्रकार का कौशल दिखाया है। कहने का मतलब यह है कि'

'ज़माने की तस्वीर' में जितनी बातें शामिल हैं उन सब पर सरशार के जादू-भरे कलम ने अपना चमत्कार दिखाया है।

इसके विपरीत हज़रत शरर के जो उपन्यास मशहूर हैं उनमें कोई तो सलीबी लड़ाइयों (क्रूसेड) के ज़माने का है, कोई महमूद ग़ज़नवी के हमले के ज़माने का, कोई रोम और रूस की लड़ाई के वक्त का, कोई उस ज़माने का जब मुसलमानों के क़दम स्पेन से उखड़ चुके थे। मतलब यह कि सभी पाठक को दस-पांच सदियाँ पीछे ले जाते हैं और चूँकि हज़रत शरर को इन बातों का व्यक्तिगत अनुभव नहीं है इसलिए वह उस समय की घटनाओं का ऐसा चित्र हरगिज़ नहीं खींच सकते जो असल से मेल खाये। उनकी जानकारियों का सबसे उपजाऊ साधन इतिहास है, और ऐतिहासिक ज्ञान चाहे कितना ही व्यापक क्यों न हो, निजी और प्रत्यक्ष निरीक्षण की बराबरी नहीं कर सकता। ऐलफ्रेड लायल, जो एक जाना-माना अंग्रेज़ी आलोचक है, लिखता है कि आज तक किसी उपन्यासकार को ऐतिहासिक उपन्यास लिखने में सफलता नहीं मिलो और न उसका मिलना सम्भव है। एक ऐसे युग के विचारों और घटनाओं की फ़ोटो उतारना जिसको बीते हुए सदियाँ गुज़र गईं, सरासर कल्पना की चीज़ है। हम यही अन्दाज़ा कर सकते हैं कि ऐसो हालतों में ऐसा हुआ होगा, विश्वास के साथ हरगिज़ नहीं कह सकते कि ऐसा हुआ। जार्ज इलियट ने अपनी सारी उम्र में केवल एक ही ऐतिहासिक उपन्यास लिखा जिसमें इटली की एक ऐतिहासिक घटना बयान की और कई महीने तक उन्होंने वहाँ की सामाजिक प्रणाली का अध्ययन किया और जितने प्रामाणिक इतिहास वहाँ के पुस्तकालयों में प्राप्त हो सके उनको ध्यान से पढ़ा तब भी 'रमोला' के बारे में लोगों (अंग्रेज़ों) का खयाल है कि वह घटनाओं के अनुरूप नहीं। सर वाल्टर स्काट, जिसका शरर साहब ने अनुकरण किया है, ऐतिहासिक उपन्यासकारों का सरताज समझा जाता है मगर इसके बावजूद कि उसकी कल्पना-शक्ति बहुत प्रखर थी और वर्णन-शैली अत्यंत सशक्त तो भी उसके ऐतिहासिक उपन्यास अंग्रेज़ी आलोचकों की आँखों में नहीं जँचे। उसके रिचर्ड या सुल्तान सलाहउद्दीन बिल्कुल नक़ली मालूम होते हैं। जब स्काट और जार्ज इलियट जैसे क़लम के जादूगर भी ऐतिहासिक उपन्यास सफलतापूर्वक नहीं लिख सकते तो हज़रत शरर अपूर्ण इतिहासों की सहायता से जिस हद तक ऐसे उपन्यासों के लिखने में सफल हो सकते हैं उसका अनुमान किया जा सकता है। यह एक पक्की बात है कि कल्पना कभी निरीक्षण की बराबरी नहीं कर सकती। सरशार ने पहले ही से इन कठिनाइयों को समझ लिया और जिस प्रलोभन में पड़कर औरों ने अपनी मेहनत अकारथ की उससे बचा-

रहा। हज़रत शरर स्काट के अनुकरण के जोश में बिलकुल भूल गये और वही ग़लती कर बैठे।

मगर जब शरर के उन नाविलों को देखिए जिनमें उन्होंने मौजूदा सोसाइटी की तस्वीरें खींचने की कोशिश की है तो ख़याल होता है कि अच्छा ही हुआ उन्होंने ऐतिहासिक उपन्यास ही को अपनी कीर्ति का साधन बनाया क्योंकि भगवान ने उनको तस्वीर खींचने की वे योग्यताएँ नहीं दीं जिनके बिना प्रत्यक्ष घटनाओं की सच्ची तस्वीर खींचना असम्भव है और ऐतिहासिक उपन्यासों ने उनकी इस कमज़ोरी पर पर्दा डाल दिया।

आश्चर्य होता है कि हकीम बरहम जैसा आदमी यह लिखने की क्योंकर हिम्मत कर सका कि सरशार के 'फ़सानये आज़ाद' या दूसरे उपन्यासों में कोई कथानक या कोई निष्कर्ष नहीं है और न उनमें कोई समस्या है और न कोई उद्देश्य ही उनमें रक्खा गया है। जिनको भगवान ने न्यायपूर्ण दृष्टि दी है वे देख सकते हैं कि सरशार का कोई उपन्यास निष्कर्ष या उद्देश्य से ख़ाली नहीं है। 'फ़सानये आज़ाद' को ही ले लीजिए। क्या उसमें कोई कथानक नहीं? आज़ाद का गहरी छान-बीन करनेवाली निगाहें लेकर गलियों-बाज़ारों की ख़ाक छानना, नवाब के दरबार में नौकरी करना, बटेर की तलाश में जाना, और बी भटियारी की तिरछी चितवनों का शिकार बनना, फिर हुस्नआरा के इश्क़ में गिरफ्तार होना, बड़ी हिम्मत से काम लेकर रोम को जाना, वहाँ बहादुरी के जौहर दिखाना, पौलेण्ड की शहज़ादी के जाल में फँसना, फिर विजयी होकर हिन्दुस्तान को लौटना, हुस्नआरा से ब्याह करना—यह कथानक नहीं है तो क्या है? एतराज़ करने वाला कहेगा कि कथानक है तो ज़रूर लेकिन बिलकुल मामूली। हाँ, बहुत ठीक। प्लाट बिलकुल मामूली है और वह भी सरासर ऊपरी। भीतरी प्लाट से ज़रा भी काम नहीं लिया गया। मगर ध्यान रहे कि उपन्यास-कला का शिखर यही है कि साधारण और सीधी-सादी लेखन-शैली में जादू का रंग पैदा कर दिया जाय। जार्ज इलियट का क़ायदा था कि वह अपने उपन्यासों के कथानक कभी बयान नहीं किया करती थी। इस मौक़े पर यह अर्ज़ करना और भी मुनासिब मालूम होता है कि ऐतिहासिक उपन्यास के लिए इन दो तरह के कथानकों की अत्यंत आवश्यकता है, उनके बिना क़िस्सा चल ही नहीं सकता। मगर ऐसे उपन्यासों के लिए जिनमें समाज के चित्र दिखाये जायँ, बहुधा कथानक कथा के पात्रों को इस घर से उस घर और इस शहर से उस शहर तक ले जाने पर ही ख़त्म हो जाता है, ताकि लेखक को समाज के हर एक पहलू पर क़लम चलाने का मौक़ा मिले। चार्ल्स डिकेन्स की मशहूर किताब 'पिकविक' पढ़िये और उन पर

एतराज़ कीजिए। ऐसे उपन्यासों के कथानक आम तौर पर ऊपरी हुआ करते हैं। उस पर सरशार ने यह कमाल किया है कि आज़ाद के क़िस्से के साथ साथ शहज़ादे हुमायूँफ़र और बी अलारक्खी का क़िस्सा भी लिखा है ताकि पढ़नेवाले का दिल एक ही क़िस्सा पढ़ते-पढ़ते घबरा न जाय। इसके अलावा बीच-बीच में समाज की बुराइयाँ बड़े मोहक ढंग से दिखाता गया है जिनका सिलसिला क़िस्से से नहीं मिलता और न लिखनेवाले की यह नीयत थी।

पाठक जानते हैं कि 'फ़सानये आज़ाद' अख़बार की सूरत में प्रकाशित हुआ करता था और उस सुर्ख़ी से कभी-कभी ऐसे लेख भी निकला करते थे जिनका जोड़ क़िस्से से नहीं मिलता था और गो इस किताब के कई संस्करण छप चुके हैं मगर मालिकों ने कभी इतनी तकलीफ़ गवारा न की कि उन लेखों को फ़सानये आज़ाद से अलग कर दें ताकि क़िस्सा सिलसिलेवार हो जाय और उसके प्रवाह में कोई बाधा न पड़े। 'फ़सानये आज़ाद' के अलावा सरशार के तीन उपन्यास और हैं जो लोकप्रिय हो चुके हैं यानी 'कामिनी' 'सैरे कोहसार' और 'जामे सरशार'। इन तीनों किताबों में कथानक का तो वही रंग-ढंग है जो 'फ़सानये आज़ाद' का मगर कुछ ज़्यादा सुलझा हुआ। दैनन्दिन जीवन की घटनायें उसी हास्यपूर्ण शैली में लिखी गई हैं कि पाठक पन्ने के पन्ने पढ़ता जाता है मगर उसका जी नहीं भरता। कोई दूसरा आदमी जिसने वही दिमाग़ और वही दिल न पाया हो ऐसी रूखी-सूखी साधारण घटनाओं में ऐसी दिल-चस्पी और रंगीनी नहीं पैदा कर सकता। जिस तरह कविता में सहज बात कहना हर आदमी का काम नहीं उसी तरह क़िस्सा लिखने में भी रूखे-फीके विषय में घुलावट पैदा करना कुछ ही लोगों के बस की चीज़ है।

हकीम बरहम साहब ने फरमाया है कि सरशार के उपन्यासों में न कोई उद्देश्य है न विचार। जितना ही इस पर ग़ौर करते हैं उतनी ही उलझन मालूम होती है कि इस बात पर हँसें या गंभीरता से उसका जवाब दें। सरशार ने उन सामाजिक रोगों के उपचार का बीड़ा उठाया था जिनके पंजे में फँसकर समाज की जान निकली जा रही थी और दूसरे अनुभवी वैद्यों और हकीमों की तरह उसने भी कड़वी बदमज़ा दवायें शक्कर और मिश्री में घोलकर पिलायीं। जिन लोगों के पास आँख है वह जानते हैं कि बीमारियों की रोक-थाम का कोई साधन ऐसा उपयोगी और असरदार नहीं है जितना कि दिल्लगी का कोड़ा और सरशार ने बड़ी बेरहमी से ऐसे कोड़े लगाये हैं। मसलन रेवेन्यू एजेन्ट और सलारबख्श जो मज़ाक का निशाना बनाये गये हैं, उसका उद्देश्य सिर्फ इतना है कि वकीलों की बहुतायत और उनकी महत्वहीनता का खाका उड़ाया जाय

और इस घटना से यह भी प्रकट होता है कि दुष्ट लोग भोली-भाली औरतों को कैसी-कैसी ऊपरी दिखावे की चीज़ों से अपने धोखे के जाल में फँसाया करते हैं। डिकेन्स ने भी सर्जेन्ट बज़फ़ज़ के परदे में वकीलों की खूब ख़बर ली है। मगर सरशार की बेधड़क ठिठोली डिकेन्स के गम्भीर व्यंग से अधिक प्रभावशाली है।

इसी तरह बी अलारक्खी का अपने खूसट शौहर के नाम ख़त लिखवाना उन कामुक बुड्ढों पर हमला है जो क़ब्र में पाँव लटकाये बैठे हैं मगर कमसिन औरतों से शादी करने का चाव दिल में रखते हैं। इसी तरह नवाब के दरबार, घर-बार का जो ख़ाका खींचा है उससे वसीक़ा खानेवालों का बुद्धूपन और उनके मुसाहिबों की ऐयारी दिखाना इष्ट है। और 'जामे सरशार' तो शुरू से आख़ीर तक शराबख़ोरी के बुरे नतीजों से लोगों को सावधान करने के लिए लिखा गया है। कामिनी लाजवन्ती, वफ़ादार, पति-परायणा स्त्री का सुन्दरतम उदाहरण है और हुस्नआरा का क़ौमी जोश, जिसने साधारण ऐन्द्रिक इच्छाओं को दबा लिया है, मिस नाइटिंगेल के लिए भी गौरव का कारण हो सकता है। कहने का अभिप्राय यह कि सरशार के जितने उपन्यास हैं वे मनुष्य के विचारों, उनके अच्छे और बुरे आचरणों और उनकी सुन्दर और नीच भावनाओं के सच्चे चित्र हैं जिन पर हँसी-ठिठोली का शोख़ रंग बेहद खुशनुमा और लुभावना होता है। ऐसी कोई घटना नहीं जिसको सरशार ने अपनी किताबों में अनावश्यक स्थान दिया हो। यहाँ पर यह कह देना ज़रूरी मालूम होता है कि बहुधा किसी घटना का वर्णन करना स्वयं एक निष्कर्ष होता है।

मगर ग़ालिबन हकीम साहब ऐसे निष्कर्षों या नतीजों को नतीजा न समझेंगे। उनके नज़दीक उस नाविल के शीशे में निष्कर्ष, उद्देश्य और विचार भरे होते हैं जिस पर इस तरह का कोई लेबुल लगा होता है—

'इस उपन्यास में पर्दे के बुरे नतीजे दिखाये गये हैं।'

या

'इस उपन्यास में यह सिद्ध किया गया है कि मर्ज़ी के ख़िलाफ़ शादियों का हमेशा बुरा नतीजा होता है।'

या

'इस उपन्यास में सलीबी लड़ाइयों का जोशो-ख़रोश और आपस के मज़हबी झगड़ों के भयानक नतीजे बड़ी खूबी से दिखाये गये हैं।' आदि आदि

हज़रत शरर और उनके शिष्य स्वर्गीय आशिक़ हुसेन साहब लखनवी और मौलवी मुहम्मद अली साहब के सभी उपन्यासों के टाइटिल पेज पर इस तरह की कोई न कोई इबारत ज़रूर मिलती है, गोया उपन्यास न हुए कोई दर्शन की

किताब हुई जिसमें किसी न किसी थ्योरी को स्थापित करना ज़रूरी है। इस तरह नतीजा निकालना चाहे ईसप के क़िस्सों के लिए उचित ठहराया जा सके मगर ऊँचे दर्जे के उपन्यासों के लिए हरगिज़ ठीक नहीं है। मज़ा तो जब है कि नतीजा ऊपर से नीचे तक भरा हो और ऐसे सरल, अनायास ढंग से कि पाठक के दिलों में खुब जाय। किसी क़िस्से के ऊपर उसका उद्देश्य लिखा हुआ देखकर हमको उसके पढ़ने की इच्छा बाक़ी नहीं रह जाती। अंग्रेज़ी में शायद ही कोई उपन्यास ऐसा होगा जिसमें ऐसे निकृष्ट ढंग से निष्कर्ष दिखाये गये हों, बल्कि आस्कर ब्राउनिंग ने तो एलानिया कह दिया है कि, 'सबसे निकृष्ट उपन्यास वे हैं जिनमें कोई विशेष समस्या रक्खी जाय।' और उसने बहुत ठीक कहा है। मनुष्य की भावनाओं और स्थितियों व प्रकृति के दृश्यों और संसार के चमत्कारों की तस्वीर खींचना स्वयं एक निष्कर्ष या नतीजा है। विज्ञान या दर्शन की बारीकियों को हल करने के लिए उपन्यासकार बनाया ही नहीं गया है बल्कि सच तो यह है कि दार्शनिक कभी उपन्यास लिख ही नहीं सकता।

कथानक के बाद जब उन पात्रों को लीजिए जो उपन्यास के स्टेज पर ऐक्ट करते हैं तो ज़ाहिर होता है कि ऊँचे दर्जे के उपन्यासों में ख़ास-ख़ास पात्रों की आदतें, तौर-तरीक़े और सोचने-विचारने के ढंग में एक न एक विशेषता पाई जाती है और वही विशेषतायें भिन्न-भिन्न अवसरों पर और भिन्न-भिन्न स्थितियों में प्रकट होती हैं। इसके विपरीत निम्न श्रेणी के उपन्यासों में या तो पात्र साधारण सीधे-सादे आदमी होते हैं या उनकी विशेषतायें जाति, स्थान, पेशे या कुछ घिसी-पिटी बातों पर आधारित होती हैं और ऐसे ही उपन्यास उर्दू में अधिकांशतः दिखाई पड़ते हैं।

बंगाली जब आयेगा अपने बोदेपन का सबूत देगा। मारवाड़ी हमेशा कंजूस-मक्खीचूस बनाया जाता है। लाला साहब बेचारे हमेशा अपनी घर की बनायी हुई फ़ारसी बोलते सुनाई देते हैं। राजपूत हमेशा अक्खड़ और उग्र स्वभाव का होता है। ननद-भौजाई में आठों पहर दाँता-किलकिल हुआ करती है। मौलवी साहब हमेशा अपनी जुमेराती की फ़िक्र में परीशान रहते हैं।

मगर यह हरगिज़ न ख़याल करना चाहिए कि बड़े उपन्यासकार इस तरह के पात्रों से काम नहीं लिया करते बल्कि सचमुच अच्छे उपन्यासों में दोनों तरह के पात्र मौजूद होते हैं। मसलन् डिकेन्स के 'पिकविक' को ले लीजिए। उसमें पिकविक, विन्कल, स्नाडग्रास, टपमैन, वार्ड और विलियर में जो विशेषतायें हैं वह सरासर उनकी अपनी हैं। और परकर, बज़फ़ज़, डॉडसन और स्टिगिन्स आदि में जो भेद किया गया है वह किसी ख़ास पेशे का मज़ाक़ उड़ाने के लिए।

॥ शरर और सरशार ॥

इसी तरह और भी उदाहरण दिये जा सकते हैं।

चार्ल्स डिकेन्स की तरह हज़रत सरशार ने भी अच्छे और बुरे दोनों प्रकार के पात्रों से सहायता ली। यह बिल्कुल ठीक है कि सब पात्र लखनवी हैं। मगर जब उसने सारे क़िस्से लखनऊ ही के लिखे तो पात्र क्या लन्दन से लाता? हाँ, यह देखना चाहिए कि उनमें लखनऊ के बेफ़िक्रों की ऐसी विशेषतायें जो उन्हें दूसरों से अलग करती हैं, किस नफ़ासत से दिखाई हैं। मिर्ज़ा हुमायूँफ़र भी लखनवी हैं और आज़ाद भी लखनवी मगर दोनों के स्वभाव में बहुत स्पष्ट अंतर रक्खा गया है। अगर आज़ाद की जगह पर हुमायूँफ़र को रख दीजिए तो क़िस्सा बिलकुल पलट जायेगा। नवाब साहब भी लखनवी हैं मगर हुमायूँफ़र से बिल्कुल अलग-थलग। मिर्जा असकरी भी लखनवी हैं मगर हुमायूँफ़र या आज़ाद से उनको मिलाइये तो ज़रा भी मेल नहीं खाते। उसी तरह हुस्नआरा, जहानआरा, सिपहआरा, गेतीआरा, बहारुन्निसा सब लखनऊ की शरीफ़ज़ादियाँ हैं मगर सबों के स्वभाव में सूक्ष्म और गंभीर विशेषतायें पाई जाती हैं। बहारुन्निसा को भूल कर भी हुस्नआरा का अक्स नहीं समझ सकते और न सिपहआरा को हुस्नआरा से मिला सकते हैं। इसी को उच्चकोटि की उपन्यास-कला कहते हैं।

निम्न कोटि के पात्र भी बहुत से मौजूद हैं। मौलवी साहब, नये जंटिलमैन, बी अलारक्खी और बी अब्बासी, हकीम साहब और रेवेन्यू एजेन्ट वग़ैरह-वग़ैरह हज़ारों लोग हैं जो किसी ख़ास फ़िरक़े या पेशे का मज़ाक़ उड़ाने के लिए लाये गये हैं।

मगर इसके साथ ही यह भी ख़याल रहे कि सरशार जब कभी अपने पात्रों को लखनऊ से बाहर, दूर-दराज़ की जगहों पर ले गया है तो वहाँ उनको ग़ैर-लखनवी बनाने का खूब ध्यान रक्खा है। मिस मोडा या मिस रोज़ या पोलैण्ड की शहज़ादी लखनऊ की शरीफ़ज़ादियाँ नहीं कही जा सकतीं। अलीक़ूपाशा या कुस्तुनतुनिया के होटल का सौदागर लखनऊ के आवारा और बाज़ारी बेफ़िक्रे नहीं हैं।

हकीम साहब ने जो कमज़ोरियाँ सरशार में दिखाई थीं वह सब की सब शरर के पात्रों में पाई जाती हैं। इसमें कोई शक नहीं कि उन्होंने पात्रों का चुनाव बड़ी खूबी से किया—किसी को रोम से बुलाया, किसी को अरब से, किसी को मिस्र से, किसी को फ़ारस से, मगर न तो उनकी जातीय विशेषताओं को और न उनकी अपनी निजी विशेषताओं को सफलतापूर्वक दिखा सके। उनके जितने नायक हैं वह सब मनचले, स्वाभिमानी, सुन्दर, लंबे-तड़ंगे और सुसंस्कृत हैं। लिहाज़ा अगर हसन की जगह मलिकुल अज़ीज़ चला आये तो वह भी

अपना हिस्सा इसी खूबी से अदा करेगा। इसी तरह उनके स्त्री पात्रों में भी यही दोष मिलता है। अज़रा, वर्बीना, एंजेलिना, फ़्लोरिन्डा सब की सब हर हालत में बिलकुल एक-सी हैं, उनमें अंतर है तो इतना ही कि वह अलग-अलग कौमों की बताई गई हैं। हम एक को दूसरी से अलग नहीं पहचान सकते। अगर अज़रा का हिस्सा एंजेलिना को दे दिया जाय तो भी अस्ल क़िस्से पर कुछ असर न पड़ेगा। यह त्रुटि शरर के सब उपन्यासों में पाई जाती है और जैसा कि हम पहले कह चुके हैं जिस उपन्यास में ऐसे साधारण पात्र पाये जाते हैं उसकी गिनती निम्न कोटि के उपन्यासों में होती है।

सरशार पर यह अभियोग लगाया गया है कि उसके सब पात्र लखनऊ ही के स्त्री-पुरुष हैं। फिर इसमें हर्ज ही क्या है? एक शहर तो क्या एक मुहल्ले और एक परिवार में अलग-अलग स्वभावों और तौर-तरीक़ों के लोग हो सकते हैं और एक सचमुच कला का धनी उपन्यासकार उन्हीं की रोज़मर्रा ज़िन्दगी में जादू का-सा असर पैदा कर सकता है। इसके अलावा एक ख़ास जगह के दृश्यों और संस्कृति का विस्तृत चित्र दिखाना कहीं ज़्यादा अच्छा है बजाय इसके कि सारी दुनिया के भौगोलिक नक़्शे दिखाये जायँ।

मगर इसका हमेशा ख़याल रखना चाहिए कि उपन्यास लिखने की सफलता यही नहीं है कि पात्रों में केवल विशेषतायें पैदा कर दी जायँ। यह तो कुछ ऐसा मुशकिल काम नहीं। सच्ची कारीगरी तो इसमें है कि पात्रों में जान डाल दी जाय, उनको ज़बान से जो शब्द निकलें वह खुद ब खुद निकलें, निकाले न जायँ, जो काम वह करें खुद करें, उनके हाथ-पाँव मरोड़ कर ज़बर्दस्ती उनसे कोई काम न कराया जाय। इस कसौटी पर सरशार के पात्रों को कसिये तो वह आमतौर पर खरे निकलेंगे। उनमें वही चलत-फिरत है जो जीते-जागते आदमियों में हुआ करती है। उनमें वही छेड़-छाड़, वही हँसी-मज़ाक़, वही गुप-चुप इशारे, वही गुल-ग़पाड़े होते हैं जो हम अपनी बेतकल्लुफ़ी की मजलिसों में किया करते हैं। उनकी एक-एक बात से हमको हमदर्दी हो जाती है। वह हमको हँसाते हैं, रुलाते हैं, चिढ़ाते हैं, सताते हैं, उनके क़हक़हे की आवाज़ें हमारे कान में आती हैं, हमारे दिल में गुदगुदी पैदा होती है और हम खुद ब खुद खिलखिला पड़ते हैं। उनके रोने की दिल हिला देनेवाली आवाज़ें हम सुनते हैं और हमारी आँखों में बरबस आँसू भर आते हैं। कौन ऐसा गंभीर आदमी है जो बुआ ज़ाफ़रान और ख़्वाजा बदीया की लगावट-बाज़ियों पर हँस न पड़े। ऐसा कौन संगदिल होगा जो शहज़ादा हुमायूँफ़र की हत्या के समय प्रभावित न हो जाये या कामिनी को रँडापे का विलाप करते देखकर रोने न लगे। और पात्रों को जाने दीजिए, सरशार

का ख़ोजी ही एक ऐसी अमर सृष्टि है जो दुनिया की किसी ज़बान में उसकी ज़बर्दस्त शोहरत का सिक्का बिठाने के लिए काफ़ी है। माशा अल्लाह कैसा हँसता-बोलता आदमी है। सुबह हुई, आप उठे, अफ़ीम घोली, हुक़्क़े का दम लगाया, दाढ़ी फटकारी, और अपने भुजदंड को देखते अकड़ते अपने ज़ोम में मस्त चले जा रहे हैं। ज्योंही रास्ते में किसी चंद्र-बदन सुन्दरी को धीमे-धीमे आते देखा वहीं आपकी बाँछें खिल गईं। ज़रा और अकड़ गये। उसने जो कहीं आपके रंग-ढंग पर मुस्करा दिया तो आप फूल गये। गुमान हुआ मुझ पर रीझ गई। फौरन मूछों पर ताव दिया और मुस्कराकर तीखी-बाँकी चितवनों से आस-पास के लोगों को देखने लगे, कि पाँव में ठोकर लगी और चारों खाने चित्त। यारों ने क़हक़हा लगाया मगर क्या मजाल कि हज़रत के चेहरे पर ज़रा भी मैल आने पाये। गर्द झाड़ी, उठ खड़े हुए और बस 'ओ गीदी' का नारा लगाया, क़रौली म्यान से निकल पड़ी और चारों तरफ़ सुथराव हो गया, सर धड़ों से अलग नज़र आने लगे और लाशें फड़कनें लगीं। शाबाश ख़ोजी! तुमको ख़ुदा हमेशा ज़िन्दा सलामत रक्खे। तेरे एहसानों से एक दुनिया का सर झुका हुआ है। तेरी क़रौली ऐसे मीठे घाव लगाती है कि किसी की अधखुली शर्बती आँखों का तीर भी ऐसी प्यारी चुभन नहीं पैदा कर सकता, और तेरे तेवर बदलने में वह मज़ा आता है जो किसी सजीले माशूक़ के रूठने में भी नहीं आ सकता। बेशक तू हँसी का पुतला और दिल्लगी की जान है।

हज़रत शरर ने भी बहुत से पात्रों की सृष्टि की और उनके उपन्यास पसन्द भी किये गये मगर उनके मानस-पुत्रों में से किसी ने भी ऐसी ख्याति प्राप्त न की कि उसका नाम हर आदमी की ज़बान पर हो। सच तो यह है कि उनके स्वभाव में वह मौलिक सृजन की शक्ति ही नहीं जो अमर पात्रों को जनम देने के लिए आवश्यक है। इसमें कोई संदेह नहीं कि जब वह किसी नये पात्र को बुलाते हैं तो पहले उसका स्वागत बड़ी धूम-धाम से करते हैं और पाठकों से उसका परिचय कराते हुए फ़रमाते हैं कि यह हज़रत ऐसे हैं और वैसे हैं, आप आंतरिक और बाह्य सद्‌गुणों की खान हैं आदि-आदि। मगर केवल उनकी भूमिकाओं से पात्र में जान नहीं पड़ती क्योंकि वह बोलते हैं तो शरर की ज़बान से और उनकी एक-एक हरकत, उनकी एक-एक अदा, उनकी एक-एक बात साबित करती है कि लेखक परदे की आड़ में बैठा हुआ कैरेक्टर का पार्ट अदा कर रहा है। हमारे दिल में ख़ुद ब ख़ुद यह ख़याल नहीं पैदा होता कि हम कुछ आत्मीय मित्रों की संगत का मज़ा ले रहे हैं। वह रोयें हमको परवाह नहीं, वह हँसें हमको ख़बर नहीं, हम जानते हैं कि वह काल्पनिक हैं।

॥ **विविध प्रसंग** ॥

शरर ने अरब, अजम, फ़ारस, तुर्किस्तान, रूस, रोम, अलीगढ़, लखनऊ, और खुदा जाने कितनी जगहों के दृश्य दिखाये मगर उनके किसी उपन्यास से वहाँ के जन-साधारण के रहन-सहन और सोचने-विचारने के ढंग का पता नहीं चलता।

सरशार के जादू-भरे क़लम ने हमको गली-कूचों, मेलों-ठेलों, और बाग़-बग़ीचों की सैर ऐसी खूबी से करा दी कि शायद हम वहाँ जाकर खुद उनको देखते तो इतना लुत्फ़ न उठा सकते। हमको क़दम-क़दम पर लखनऊ के अमीर-फ़क़ीर, गँवार, ऐय्यार, भाँड़, दिल्लगीबाज़, मसखरे, तिरछे, बाँके, कुलीन-नीच, सभ्य-असभ्य, बूढ़े-जवान ग़रज़ हर रंग और हर तरह के आदमी नज़र आते हैं। वह हँसते-बोलते हैं, दिल्लगी-मज़ाक़ करते हैं, नाचते-गाते हैं मगर इसलिए नहीं कि हम देख रहे हैं बल्कि यह उनका रोज़मर्रा का तरीक़ा है, हमारा जी चाहे तो हम भी देख लें।

आस्कर ब्राउनिग ने लिखा है कि उपन्यासकार में इन चार मानसिक गुणों का होना उपन्यास के लिए नितांत आवश्यक है—

१—सशक्त वर्णन-शैली २—हँसी-मज़ाक़ कर सकना ३—दर्शन ४—ड्रामा या किसी घटना में अनायास प्रभाव उत्पन्न कर देना। अब सरशार को देखिए तो उसमें दर्शन को छोड़कर और तीनों गुण खूब मिलते हैं और हज़रत शरर अगर इन गुणों में से कोई रखते हैं तो वह एक हद तक दर्शन है मगर वह दर्शन जो धर्म और जाति से संबंध रखता है और दिलों में फूट डाल देना जिसका ख़ास, सबसे ख़ास काम है।

यहाँ पर एक ऐसी बात की चर्चा करना भी आवश्यक मालूम होता है जो कुछ लोगों को शायद बुरी लगे। सरशार ने जितनी किताबें लिखीं उनमें एक भी ऐसी नहीं कि जिसको मुसलमान या ईसाई एक-सी दिलचस्पी से न पढ़े। वे सब धार्मिक विद्वेष से मुक्त हैं। इसके विपरीत हज़रत शरर के हीरो तो हर हालत में मुसलमान होते हैं मगर हीरोइन कभी हिन्दू होती है और कभी ईसाई। हज़रत शरर तो फ़िलासफ़र हैं, कम से कम उन्हें इतनी समझ होनी चाहिए कि वह उस भड़कावे का अनुमान कर लें जो हिन्दू और ईसाइयों के दिल में उनकी इस ग़लती से पैदा होता है। क्या मुसलमानों में इतनी सुन्दर, सुशील स्त्रियाँ नहीं हैं जिनको हीरोइन बनने का गौरव मिल सके? शायद कोई साहब फ़रमायेंगे कि कुछ हिन्दू लोगों ने भी हिन्दू हीरो से मुसलमान हीरोइन का जोड़ा मिलाया है। मगर क्या ज़रूरत है कि हज़रत शरर भी वही ग़लती करें। हमने खुद देखा है कि अक्सर हिन्दू लोग मन्सूर और मोहना को घृणा की दृष्टि से देखते हैं, उसी

तरह जैसे कि कुछ मुसलमान दुर्गेशनन्दिनी को देखते हैं। प्रेम का यह ढंग बहुत बुरा है। कमजोर दिमाग़वाले चाहे इन विद्वेषों का शिकार हो जायें मगर एक जिम्मेदार आदमी की तरफ़ से उनका प्रकाश में आना अनुचित है। हिन्दुस्तान में यह आम रिवाज है कि लड़की के जातिवालों या रिश्तेदारों या भाई-बन्दों का महत्व लड़केवालों के रिश्तेदारों से कम हुआ करता है और साधारण लोगों में भोंडी रुचि के लोग दूसरों को अपना साला कह कर खुश होते हैं कि जैसे पति का तरफ़दार होना पत्नी के तरफ़दारों पर हावी होना है। बहुत बार यह भी देखने में आता है कि बेहूदा बकनेवाले शोहदे अपनी मस्तरंगी मुहब्बत का बड़े घमंड से ज़िक्र किया करते हैं। हज़रत शरर इन्हीं ओछी से ओछी भावनाओं का शिकार हो गये। बहुत कम ऐसे हिन्दू होंगे जो उनके प्रशंसक हों हालाँकि सरशार के सामने इज़्ज़त से सर झुकानेवालों में अक्सर मुसलमान साहबान हैं। यहाँ उन लोगों का ज़िक्र नहीं है जो क़ौमी एकता की आड़ में फूट का बीज बोते हैं।

उपन्यासकार के लिए रसीली, रंगीन, चुलबुली, शौक़ीन तबीयत का होना ज़रूरी है। इसके बजाय हज़रत शरर को जिहादियों का जोश और मुल्लाओं का दिल मिला है जो इस काम के लिए ठीक नहीं। किसी आदमी की क़ाबलियत की एक दलील यह भी है कि वह समझ जाये कि मैं कौन-सा काम सबसे अच्छी तरह कर सकता हूँ। सरशार ने अपने दिल को समझा, हज़रत शरर न समझ सके।

मगर सबसे बड़ा ज़ुल्म जो हकीम बरहम ने सरशार पर किया है वह उसकी लेखन-शैली पर है। हम यह कहने पर मजबूर हैं कि इस मौक़े पर बड़ी बेरहमी से इंसाफ़ का गला घोंटा गया है। अब आज उस चोटी के कलाकार के उन अधिकारों को झुठलाना जो उर्दू ज़बान पर कयामत तक रहेंगे सरासर धार्मिक विद्वेष और संकीर्ण-हृदयता का प्रमाण है। कोई कितनी ही लंबी-चौड़ी बघारे मगर इस सच्चाई को नहीं झुठला सकता कि सरशार ही वह पहला ज़ोरदार लिखनेवाला है जिसने नये अंग्रेज़ी ढंग की कहानियाँ उर्दू में लिखनी शुरू कीं। उसके साथ ही अनुकरण के जोश में आकर यहाँ तक नहीं बढ़ा कि उर्दू ज़बान और उसके लिखने के ढंग को बिगाड़ दे। सिर्फ़ तर्ज़ अंग्रेज़ी ले लिया या यों कहो कि खाका अंग्रेज़ी लिया उस पर हिन्दुस्तानी रंग चढ़ाये। अंग्रेज़ी उपन्यास की कोई खूबी ऐसी नहीं जो सरशार की कृतियों में न पाई जाय।

बरहम साहब कहते हैं कि 'फ़सानये आज़ाद' और 'फ़सानये अजायब' की शैली में कोई अंतर नहीं है। हमको यक़ीन नहीं आता कि हकीम साहब के क़लम से यह रिमार्क निकला। 'जामे सरशार' से जो दो उद्धरण लिये गये हैं वह खुद

इस दावे का खंडन करते हैं। इसमें कोई शक नहीं कि कहीं-कहीं पंडितजी ने 'सुरूर' के रंग में लिखा है मगर यह उनका खास रंग नहीं है बल्कि जहाँ कहीं तिरछे-बाँके छैलों की बातचीत लिखी है वहाँ ज़बान की रंगीनी और क़ाफ़ियेबंदी पर ज़्यादा ज़ोर दिया है और इसकी उनको दाद देनी चाहिए कि बेफ़िकरों से बहुत गंभीर नपी-तुली बातचीत नहीं कराई जो उनके मुँह से बिलकुल पराई मालूम होती। यह भी खयाल रहे कि यद्यपि उपन्यासकार का खास रंग एक ही होता है मगर चूँकि वह हर ढंग और फ़ैशन के आदमियों को बनाता-बिगाड़ता रहता है इसलिए उसकी ज़बान भी हर मौक़े पर रंग बदलती रहती है। 'फ़सानये आज़ाद' में जब कभी हकीम साहब तशरीफ़ लाते हैं तो पश्तो में बातें किया करते हैं। अब अगर कोई उनकी ज़बान को सरशार की ज़बान बतलाये तो इसका जवाब चुप रह जाने के सिवा और क्या हो सकता है। हकीम साहब ने मौलिकता के अर्थ समझने में भूल की। मौलिकता इसका नाम नहीं कि अंग्रेज़ी की अजनबी-सी तरकीबों, बंदिशों, उपमाओं और रूपकों के बेजोड़ रूखे अनगढ़ अनुवाद कर दिये जायँ जैसा कि हज़रत शरर ने किया है। इसी का नाम तो नक़्क़ाली है। उस पर तुर्रा यह कि बेचारे सरशार पर नक़्क़ाली का इल्ज़ाम इसलिए लगाया है कि वह अपने पात्रों से मौक़े के हिसाब से बातें करवाता है। हकीम साहब को जानना चाहिए कि उर्दू कहानी कला में इसी को मौलिकता कहते हैं।

हज़रत शरर जब किसी उपन्यास का आरंभ करते हैं तो पहले सीनरी का बहुत लंबा-चौड़ा बयान करते हैं और इसके बाद हर अध्याय के आरंभ में ऐसे ही बयान होते हैं जो कहानी के प्रवाह में बाधा उपस्थित करते हैं और साधारण पढ़नेवाला घबराकर उनको छोड़ देता है। हकीम बरहम साहब ने भी हाल ही में एक उपन्यास लिखा। उसमें शरर का अनुकरण इस सीमा तक किया कि नब्बे पन्नों के उपन्यास में पचीस पन्नों से ज़्यादा सिर्फ सीनरियों पर ही खर्च कर दिये थे। यही कला का दोष है। यहाँ पर इतना कहना और ज़रूरी मालूम होता है कि पश्चिमी हीरोइन की तस्वीर जो हकीम साहब ने हमारे सामने बड़ी शान से पेश की है काट-छाँट कर थोड़े से शब्दों में बयान की जा सकती है। यह बात मान ली गई है कि लेखक किसी पात्र के नाक-नक़्शे, चेहरे-मोहरे का बयान कैसी ही खूबी से क्यों न करे मगर पढ़नेवाले के सामने जैसी तस्वीर खींचना चाहता है हरगिज़ नहीं खींच सकता। जितने नये अंग्रेज़ी उपन्यास हैं उनमें शरीर-संबंधी बातों का बयान थोड़े से शब्दों में समाप्त हो जाता है और मानसिक गुणों को पहले से प्रकट करना तो अपने आप को उपन्यास-रचना के सिद्धान्तों से नितांत अपरिचित सिद्ध करना है।

॥ शरर और सरशार ॥

यह भी ग़ौर करने की बात है कि हज़रत सरशार के रंग में लिखने को बहुतों ने कोशिश की मगर किसी को सफलता न मिली। जैसे आज़ाद का अनुकरण कठिन है उसी तरह सरशार के भी रंग में लिखना मुशकिल है, हालाँकि कुछ उपन्यासकारों ने शरर से पाला मार लिया है। यही वजह है कि उनके उपन्यासों की जितनी क़द्र मुल्क ने की उसकी आधी भी शरर के किसी उपन्यास की नहीं हुई।

—उर्दुए मुअल्ला सन् १६०६

कुछ नया किताबें

आसारे अकबरी

हाल की कुछ नयी किताबों में मौलवी सईद अहमद साहब मारहरवी की ताज़ा किताब 'आसारे अकबरी' यानी 'फ़तेहपुर सीकरी का इतिहास' बड़ी आसानी से दूसरी सब किताबों से बाज़ी मार ले जाती है। यह ऐसी अनमोल किताब है जैसी बहुत अर्से से उर्दू ज़बान में देखने में नहीं आई, जिसे एक दो तीन बार पढ़िये मगर फिर भी पढ़ने की हवस बाक़ी रह जाती है। गहरी छान-बीन की दृष्टि से देखिए तो, घटनाओं की मनोरंजकता और महत्व की दृष्टि से देखिए तो और भाषा की खूबी की नज़र से देखिए तो यह किताब उर्दू की अच्छी से अच्छी किताबों के बराबर रखे जाने के योग्य है।

लेखक ने इस पुस्तक को नौ अध्यायों में बाँटा है। पहले अध्याय में फ़तेहपुर सीकरी की आबादी, उत्थान और पतन का संक्षिप्त इतिहास लिखा गया है। मुग़लिया ख़ानदान के साथ इसकी भी बुनियाद पड़ी, उसके उत्थान के साथ उसका भी उत्थान हुआ और उसके पतन के साथ उसकी भी तबाही आ गई। बुनियाद की वजह शायद पाठकों को मालूम होगी। जहाँगीर ने अपने तुजुक में इसका ज़िक्र यों किया है—

'जिन दिनों वालिद बुज़ुर्गवार को बेटे की बड़ी आरज़ू थी एक पहाड़ में सीकरी इलाक़ा आगरे के पास शेख़ सलीम चिश्ती नाम के एक पहुँचे हुए फ़क़ीर रहते थे जो उम्र की बहुत मंज़िलें तय किये हुए थे। उधर के लोगों को उनसे बड़ी भक्ति थी। मेरे वालिद जो फ़क़ीरों की बड़ी इज़्ज़त करते थे, उनके पास गये। एक दिन ऐसे वक़्त जब कि फ़क़ीर साहब अपने ध्यान में मग्न बैठे थे उनसे पूछा—हज़रत, मेरे बेटे होंगे ? फ़रमाया कि खुदा तुम्हें तीन बेटे देगा। वालिद ने कहा, मैंने मन्नत मानी कि पहले बेटे को आपकी देख-रेख में रक्खूँगा। शेख़ की ज़बान से निकला कि मुबारक हो। मैं भी उसे अपना नाम दूँगा।'

थोड़े ही दिनों में शेख़ की भविष्यवाणी सच हुई। शाहज़ादा जहाँगीर सीकरी ही में पैदा हुआ। बादशाह खुद वहाँ गये। शेख़ के वास्ते आलीशान ख़ानक़ाह (आश्रम) बनवानी शुरू की और अपने रहने के वास्ते भी रंग-महल

बनाने का हुक्म दिया । फिर क्या था, जिसे पी चाहे वही सुहागिन । शहर की रौनक़ रोज़-ब-रोज़ बढ़ने लगी । दरबारियों ने अपने-अपने महल बनवाने शुरू किये । अबुल फ़ज़्ल और फ़ैज़ी, बीरबल, मानसिंह, हकीम हम्माम और दूसरे रईसों ने मकान बनवाये । हर साल यहाँ नौरोज़ का जश्न होने लगा जिसका ज़िक्र लिखनेवाले ने बड़ी खूबसूरती से किया है । दीवाने-आम और ख़ास के चारों तरफ़ एक सौ बीस महल बन गये । इस क़स्बे की रौनक़ और आबादी थोड़ ही दिनों में यहाँ तक बढ़ी कि पूरब से पच्छिम सात मील तक फैल गई और आगरे से निकलते ही उसके मुहल्ले नज़र आने लगे । दोनों शहरों के बीच का फ़ासला बिलकुल आबाद हो गया । यह रौनक़ और धूम-धाम शाहजहाँ के वक़्त तक कमोबेश क़ायम रही । मगर जब मुग़लिया ख़ानदान का सितारा डूबने लगा, सल्तनत में कमज़ोरी पैदा हुई और मुग़ल बादशाहों को तख़्त के लाले पड़ गये तो फ़तेहपुर की ख़बर कौन लेता । चूरामन और सूरजमल जाट की लूट-खसोट शुरू हुई । मुहल्ले के मुहल्ले, कूचे के कूचे वीरान हो गये । अक्सर इमारतें ज़मीन के नीचे दबे हुए ख़ज़ाने की तलाश में खोद डाली गईं । क़ीमती पत्थर, देग, खम्भेर और भरतपुर पहुँचा दिये गये । आख़िर जो कुछ रही-सही आबादी थी उसका बड़ा हिस्सा सन् सत्तावन के भयानक ग़दर में तबाह हो गया । उसकी मौजूदा हालत का जो नक़्शा लेखक ने खींचा है वह बहुत दुख देनेवाला है—'अब यह हालत है कि आगरे दरवाज़े में घुसते ही खँडहर नज़र आना शुरू होते हैं । किसी महल की दीवारों के चिन्ह बाक़ी हैं, किसी का सिर्फ़ दरवाज़ा ही खड़ा रह गया है, किसी जगह पत्थर और चूने का ढेर लगा हुआ है, किसी मकान का हम्माम बाक़ी रह गया है । ग़रज़ कि जिसका जो कुछ हिस्सा बाक़ी रह गया है, वह एक दुख का घर है जो कि राह चलते मुसाफ़िरों और प्राचीन स्मारकों के प्रेमियों को आठ-आठ आँसू रुलाता है और सराय फ़ानी का नक़्शा आँखों के सामने पेश करता है । शहर की दीवार के अंदर और बाहर जिधर देखो खंडहर ही खंडहर नज़र आते हैं । बड़ी-बड़ी सुहानी बारादरियों और आलीशान महलों में आदमी की जगह चील-कौवों का बसेरा और उल्लू का पहरा है ।'

बाक़ी आठ अध्यायों में दक्खिन, उत्तर, पूरब, पश्चिम की लगी हुई इमारतों और पहाड़ी के ऊपर बनी हुई और आस पास की इमारतों का ज़िक्र किया गया है । इसके पढ़ने से पता चलता है कि जिस वक़्त यह शहर अपनी पूरी रौनक़ पर होगा उस वक़्त सचमुच बहिश्त का नमूना होगा । खुशनुमा बाग़ों, हरे-भरे मैदानों, और खूबसूरत बावलियों, तालाबों और नहरों के बार-बार ज़िक्र

आते हैं जिससे इस ज़माने की सुथरी रुचि और सफ़ाई का सबूत मिलता है। हर इमारत की लम्बाई-चौड़ाई, ऊँचाई, नक्काशी, गुलकारी और दूसरे गुणों का बड़े विस्तार के साथ उल्लेख किया गया है बल्कि कहीं कहीं उनके निर्माण की तिथि, कारीगरों के नाम और निर्माण का ख़र्च भी लिख दिया है गो यह खूबी सब जगह नहीं पाई जाती।

उर्दू लिटरेचर में 'आसारुस्सनादीद' के बाद कोई ऐसी किताब नहीं छपी जिसमें इमारतों के अलग-अलग हिस्सों की चर्चा इस विस्तार और खूबी से की गयी हो जैसी कि आलोच्य पुस्तक में। इमारतों के बारे में हमारा अज्ञान और ध्यान न देना यहाँ तक बढ़ गया है कि बहुत कम लोग ऐसे होंगे जो बेधड़क इमारत के अलग-अलग हिस्सों के नाम भी बतला सकें। लेखक ने यह बातें बेमज़ा और रूखी-फीकी जबान में नहीं लिखी हैं वल्कि अक्सर ज़बान ऐसी अच्छी है कि मज़ा ले-ले कर पढ़ने के क़ाबिल है। दरगाह. शरीफ़ के बुलंद दरवाज़ों को इस तरह बयान किया गया है—

'बुलंद दरवाज़े की बुलंदी एक सौ उन्तीस फ़ीट है। पढ़नेवाले खुद अंदाज़ा कर सकते हैं कि पहाड़ की ऊँची चोटी पर इतना बुलंद दरवाज़ा कैसा शानदार, अजीबो-ग़रीब और खूबसूरत नज़र आता होगा। बाहर से देखिए तो इसके बड़े दरवाज़े और इर्द-गिर्द दरों की बनावट, उनके बीच की नफ़ीस संगमर-मरी पच्चीकारी, खूबसूरत बेलें, तरह-तरह की सजावट, खुशनुमा मीनारें, गुलदस्ते, कतबे के बड़े-बड़े हरूफ़, बीच की हवादार शहनशीं, ऊपर की प्यारी प्यारी बुर्जियाँ हैरत में डाल देती हैं। अंदर की तरफ़ से देखिए तो हर मंजिल के बुर्ज और बुर्जियाँ, कंगूरे, मीनारें, गुलदस्ते एक दूसरे से मिले हुए खूबसूरती का अजीबो-ग़रीब नज़्ज़ारा पैदा करके इन्सान को हैरत में डाल देते हैं। ऊपर का हवादार सुहाना मुक़ाम जहाँ से न सिर्फ़ कुल शहर बल्कि कोसों तक का दृश्य अच्छी तरह दिखाई देता है ऐसा सुन्दर और मोहक है कि उसकी असली हालत का शब्दों में फ़ोटो उतारना असंभव है।'

इसी तरह ख्वाबग़ाह खास के बालाख़ाने की जो कैफ़ियत दिखाई है, बेमिसाल है—

'महल ख़ास की दक्खिनी इमारत की छत पर वह छोटा सा खूबसूरत और तिलस्माती कमरा है जो ख्वाबग़ाह के नाम से जाना जाता है। चूंकि यह ख़ास बादशाह के सोने के वास्ते बनाया गया था इस वजह से अच्छे-अच्छे कारीगरों और चित्रकारों ने इसको सुन्दर बनाने में कोई ऐसी तदबीर नहीं उठा रक्खी थी जो इंसान के क़ाबू के बाहर न हो। रंगसाज़ी के आला दर्जे के कारीगरों ने

अंदर-बाहर, नीचे-ऊपर तमाम दरो-दीवार को रंग-बिरंगे बेल-बूटों और तरह-तरह की गुलकारी से अलंकृत करके स्वर्ग का नमूना बना दिया था। चित्रकारों ने अपनी चित्रकला का कमाल दिखा कर तरह-तरह की तस्वीरों और भाँति-भाँति के दृश्यों से तमाम कमरे को एक अनूठी चित्रशाला बनाकर तिलस्म की दुनिया को मात किया था। मोती जैसे सुन्दर सजीले अक्षर लिखने वाले कतबा-नवीसों ने तरह-तरह की गुलकारियों के बीच में ऐसी नज़ाकत और सफ़ाई से कतबों को लिखा था कि उनके देखने से आँखों में रौशनी पैदा होती थी। ग़रज़ कि इस जगह पर हर क़िस्म के बड़े-बड़े कारीगरों ने अपनी कारीगरी को कमाल के दर्जे पर पहुँचा दिया था मगर अफ़सोस और सख्त अफ़सोस है कि यह बेजोड़ कमरा इस तमाम सज-धज और रंग-रूप के बदले अब एक खँडहर है जिस पर उदासी बरस रही है। इसके तमाम सुनहरे बेल-बूटे और गुलकारियाँ न मालूम किन ज़ालिम हाथों से खत्म हो गई, यहाँ तक कि कोई दौलत का भूखा दरवाज़ों के किवाड़ तक उतार ले गया। अफ़सोस !'

बात ज़रा नमक-मिर्च लगा कर कही गई है मगर कैसे चुस्त और सुथरे ढंग से ! अफ़सोस कि इन महान चित्रकारों के बारे में अब कुछ भी पता नहीं चलता। उनकी कारीगरी के नमूने भी जो उनके ताज़ा यादगार होते धीरे-धीरे वक़्त के हाथों बरबाद हुए जाते हैं। हाँ, पुराने विवरणों में उनके नाम अलबत्ता मिलते हैं जिनमें ख़ास-ख़ास ये हैं—मीर सैयद अली तबरेज़ी, ख्वाजा अब्दुस्समद शीरीं-रक़म, विश्वनाथ कुम्हार, बसावन, केशव, लाल, मुकुन्द, मिस्कीन, फर्रुख, माधो, जगन, महेश, खेम करन, नारा, सांवला, हरबंस। इन सब का सरदार उस्ताद बहज़ाद था जो पहले इस्माइल शाह सफ़वी ईरान के बादशाह का चित्रकार था फिर अकबरी दरबार में हाज़िर होकर ऊँचे मनसब पर पहुँचा। मरियम के ज़नाना बाग़ का जो ज़िक्र किया गया है वह किताब के बेहतरीन हिस्सों में है—

'अकबरी ज़माने में इस बाग़ के अन्दर जन्नत के बाग़ का जलवा नज़र आता था। पत्थर की पक्की रविशों में रंग-बिरंगे फूल इतर छिड़का करते थे। क्यारियों में हर तरह के दुर्लभ, अच्छे और स्वादिष्ट मेवे शाखों में झूमा करते थे। हमेशा साफ़-शफ़्फ़ाफ़ पानी बड़े अदब के साथ धीरे-धीरे खूबसूरत नालियों में चलता रहता था। जिस वक्त मौसमे बहार में लाजवंती नारियाँ अपने-अपने ऐश महल से निकलकर बाग़ की रविशों पर हौले-हौले सैर करती फिरती होंगी उस वक़्त क़िस्म-क़िस्म के फूलों की महक, सुम्बुल का बाल बिखेरना, रैहान का प्यारी-प्यारी आँखों से तकना, इत्र में बसी हुई हवा का चलना, मछली-ताल में

रंग-बिरंगी मछलियों का तैरना, सुरीले पंछियों का चहचहाना, ज़मुर्रद जैसे हरे फ़र्श का लहलहाना कैसा प्यारा, सुहाना दृश्य प्रस्तुत करता होगा।'

ऐसे मोती इस किताब में बड़ी उदारता से लुटाये गये हैं। मगर राजा बीरबल के महल पर लेखक ने फूल बरसाये हैं। कहते हैं —

'जिस तरह अकबर के नौरतन में निकटता की दृष्टि से कोई आलीजाह अमीर और शानो-शौकतवाला सरदार बीरबल के रुतबे को नहीं पहुँचता उसी तरह शाही महल की निकटता, कारीगरी और खूबसूरती में किसी अमीर का महल इस बेमिसाल मकान का मुक़ाबला नहीं कर सकता। फ़रगुसन साहब अपनी 'इमाराते मशरिक़' में कहते हैं कि बीरबल और तुर्की सुल्ताना का मकान सबसे ज़्यादा बेशक़ीमत और सबसे खूबसूरत और अकबर की दूसरी तमाम इमारतों में सबसे ज़्यादा कारीगरीवाली इमारतें हैं। ये इमारतें छोटी ज़रूर हैं लेकिन कहीं ऐसे खूबसूरत बेल-बूटे और ऐसी तस्वीरें देखना नामुमकिन है। यहाँ कोई जगह ऐसी नहीं कि जहाँ कुछ न कुछ सजावट मौजूद न हो या भद्दे तौर से की गई हो।'

एक ख़ास गुण इस किताब में यह है कि अमीरों के मकानों के साथ साथ उनके जीवन का हाल बताने का भी ढंग रक्खा गया है। शेख़ फ़ैज़ी, अबुल फ़ज़्ल, बीरबल, टोडरमल, हकीम शीराज़ी और दूसरे बुजुर्गों के अलग अलग हालात लिखे गये हैं जिनको पढ़ कर मालूम होता है कि 'दरबारे अकबरी' की नक़ल की है। इन चर्चों में कहीं-कहीं मज़ेदार छेड़-छाड़ की चाशनी भी दी गई है। जोधा बाई के बारे में लिखते हुए कहते हैं—

'एक रात जब कि चाँदनी छिटकी हुई थी, नूरजहाँ सफ़ेद कपड़े पहने हुए जहाँगीर के पास बैठी थी। इत्रे जहाँगीरी की खुशबूदार लपटों से तमाम दरो-दीवार और कपड़ों पर छिड़काव हुआ था। बादशाह और बेगम दोनों का दिमाग़ इत्र से बसा हुआ था। बादशाह ने इसी हालत में जोधा बाई को भी याद फ़रमाया। लौंडियाँ दौड़ीं और थोड़ी ही देर में यह भी सुर्ख़ कपड़े पहनकर आ मौजूद हुईं और बादशाह के बराबर बैठ गईं। बादशाह ने उनकी तरफ़ ध्यान दिया। नूरजहाँ बेगम को ईर्ष्या हुई। बादशाह की तरफ़ देखकर बोलीं कि आख़िर को जोधा बाई ज़मीन्दार ही की बेटी है। ऐसे वक्त में जब कि फौवारों से रोशनी का छिड़काव हो रहा है और चमेली व सेवती का फ़र्श बिछा हुआ है और चाँदनी छिटकी हुई है, सुर्ख़ लिबास क्या मतलब रखता है! जोधाबाई ने फ़ौरन जवाब दिया कि मेरा सुहाग क़ायम है इस वजह से मैंने सुर्ख़ लिबास

पहना है, तुम्हारा सुहाग उठ चुका है इस शोक में तुमने सफ़ेद कपड़े पहने हैं और यह दोहा पढ़ा—

'जारूँ नार तास का हिया ।
एक छोड़ जिन दो जा किया ।'

ग़रज़ कि किताब में इस तरह के गुण भरे हुए हैं । हम इससे ज़्यादा उद्धरण देना उचित नहीं समझते । शौक़ीन लोग खुद मँगायें, लेखक की मेहनत की दाद दें और दूसरी किताबों के लिए हौसला बढ़ायें। किसी साहित्य-प्रेमी का पुस्तकालय इस किताब से ख़ाली न रहना चाहिए । अफ़सोस है कि उर्दूदाँ पब्लिक की नाक़दरियों ने लेखक को यह हिम्मत नहीं दिलाई कि वह इस किताब को इमारतों की फ़ोटो से सुशोभित कर सकते जिससे इसका महत्व और भी दुगना हो जाता । इस सुन्दर लिखाई और छपाई के साथ क़लम से बनाई हुई तस्वीरों का जोड़ अच्छा नहीं मालूम होता ।

सुघड़ बेटी

जब से स्त्री शिक्षा की समस्या उठ खड़ी हुई है और गवर्नमेण्ट ने उसके प्रति व्यावहारिक सहानुभूति दिखाना शुरू किया है, लड़कियों की शिक्षा की ज़रूरतों को पूरा करने के लिए खूब कोशिशें की जा रही हैं । आख़िरी बार नई किताबों पर रिव्यू करते हुए 'तालीमे निस्वाँ' का ज़िक्र किया गया था जो पाँच जिल्दों में ख़त्म हुई थी । वह किताब कुँवारी और ब्याही सबके लिए यकसाँ फ़ायदेमंद थी । मगर 'सुघड़ बेटी' जो मुहम्मदी बेगम साहिबा की दिलचस्प किताब है सिर्फ़ कमसिन लड़कियों के लिए लिखी गई है । इसमें लेखिका ने सरल भाषा में लड़कियों को तरह-तरह की बातों पर सीख दी है । किफायतशारी का ज़िक्र करते हुए 'कौड़ियों से घर चलाया' नाम की जो कहानी है वह कम-उम्र लड़कियों के लिए बहुत दिलचस्प साबित होगी । इसके अलावा कपड़े-लत्ते, उनके इस्तेमाल, चिट्ठी-पत्री, खेल-कूद, पढ़ने-लिखने के बारे में नसीहत-भरी बातें लिखी हैं । यह ऐसी किताब है जो किसी लड़की के हाथ में शौक़ से रक्खी जा सकती है और चूंकि मुहम्मदी बेगम साहिबा बहुत सी किताबें इस क़िस्म की लिख चुकी हैं उनका सीख देने का ढंग बहुत उपयुक्त और सरल है ।

किताबे निस्वाँ

अगर 'सुघड़ बेटी' कमसिन लड़कियों के लिए लिखी गई है तो मौलवी गयासुद्दीन की नई कृति 'किताबें निस्वाँ' खास तौर पर जवान और ब्याही औरतों के लिए है । लेखक ने इस किताब को चार हिस्सों में बाँटा है । पहले हिस्से में

आचरण के संबंध में नसीहत भरी बातें लिखी हैं, जो सब लड़कियों के लिए समान रूप से लाभकारी हैं। मगर हमारी समझ में नहीं आता कि झूठ-सच, पर्दा, खाने-पीने का इंतज़ाम वग़ैरह विषयों के साथ किताब के शुरू के हिस्से में 'गवर्नमेंट के अधिकार' या 'हमारे अधिकार' जैसे प्रश्नों पर उपदेश देने की ज़रूरत क्यों आ पड़ी। ये प्रश्न न तो नीति और आचार से संबंध रखते हैं न साहित्य से। ऐसे विभिन्न विषयों को एक में मिला देना भानमती के पिटारे में जायज़ हो तो हो मगर ऐसी तालीमी किताब में हरगिज़ जायज़ नहीं। ऐसी बातें भूगोल का अंग हैं और उनके लिखने की जगह आखिरी अध्याय है जहाँ संसार के महाद्वीपों पर लेखक ने बड़ी तेज़ी से यात्रा की है। मगर इसमें भी बजाय इसके कि सरकार और प्रजा, उनके आपसी संबंध, उनकी आपसी आवश्यकताओं आदि प्रश्नों पर सामान्य रूप से विचार किया जाय, लेखक ने अंग्रेज़ी सरकार के उन एहसानों की बड़ाई गाई है जिससे हिन्दुस्तानियों का सिर झुका हुआ है। इसी हिस्से में आँकड़े और हिसाब, गृहस्थी की बातें, खाना-पकाने की विधि और दूसरी बहुत सी बातें दर्ज हैं। दूसरे हिस्से में लेखक ने औरतों को वे बातें बताई हैं जिनकी उनको स्वास्थ्य रक्षा के लिए सख्त ज़रूरत है। इनमें से अधिकांश लाभकारी बातें हैं मगर असंस्कृत शब्द इतने ज़्यादा इस्तेमाल किये गये हैं कि कोई पंक्ति उनसे खाली नहीं। बेहतर होता अगर किताब के कई हिस्से होते या कम से कम जो बातें ख़ासतौर पर औरतों के जानने की होतीं वह अलग किताब में बतलाई जातीं। इस दृष्टि से यह किताब हरगिज़ इस क़ाबिल नहीं कि किसी कुँवारी लड़की के हाथ में रक्खी जाय।

नौजवानों का रहनुमा

नवयुवतियों को नेक सलाह और मशविरों की जितनी ज़रूरत है शायद नवयुवकों के लिए उससे ज़्यादा रहनुमाई की ज़रूरत होती है क्योंकि उनके चरित्र-भ्रष्ट होने के मौक़े कहीं ज़्यादा होते हैं। इस ज़रूरत को पूरा करने के लिए पंजाब रिलीजस बुक सोसाइटी ने इस नाम का एक अच्छा अनुवाद प्रकाशित किया है। मूल पुस्तक अमरीका के एक मशहूर डाक्टर की लिखी हुई है। मिस्टर हर सरन ने उसका अनुवाद किया है और सच तो यह है कि अनुवाद में मूल का मज़ा पैदा करने की कोशिश की है। अपरिचित मुहावरे और वाक्य बहुत कम हैं और पुस्तक आदि से अंत तक मनोरंजक है। कौन नहीं जानता कि हमारी क़ौम के हज़ारों नौजवान अपनी नातजुर्बेकारियों का दंड भोग रहे हैं और कितने ही भोग-विलास के गड्ढे में ऐसे औंधे गिरे हैं कि इस ज़िन्दगी में उभरना

मुहाल है। देश की जनता की पस्तहिम्मती, नाटा कद और शारीरिक दुर्बलता उसी संयमहीनता का परिणाम है जिसके शिकार लोग अपनी नातजुर्बेकारी के कारण होते हैं। लेखक ने बड़े स्पष्ट और विशद ढंग से उन रोगों, उनके लक्षणों, उनके घातक परिणामों का उल्लेख किया है जिनका नाम लेना भी अशोभन है। उनसे बचने के लिए लेखक ने व्यावहारिक बातें बतलायी हैं। अगर युवक समाज जिसके लिए यह किताब लिखी गई है इसको पढ़ेगा और इसकी हिदायतों पर अमल करेगा तो बेशक बहुत सी बुराइयों से बचा रहेगा। 'बीवी का चुनाव', 'विवाह और उसका उद्देश्य' आदि प्रश्नों पर लेखक ने बहुत अनुभव की बातें सिखाई हैं। किताब के आखिरी हिस्से में साधारण सभ्यता और सुरुचि के बारे में भी सीखें दी गई हैं मगर हम लेखक की इस बात से सहमत नहीं हैं कि उपन्यासों का पढ़ना सरासर हानिकर है। उपन्यासों में अच्छे भी होते हैं और बुरे भी। अच्छे उपन्यास पढ़ने की मनाही करना गोया आदमी को ज़िन्दगी की एक बड़ी नेमत से वंचित करना है। हाँ, बुरे और चरित्र को भ्रष्ट करने वाले उपन्यास हरगिज़ न पढ़ना चाहिए और उपन्यास ही क्यों कवितायें, इतिहास, यात्रा-विवरण, अख़बार सभी चरित्र को भ्रष्ट करने वाले हो सकते हैं अगर उनमें गंदी भावनाओं को उभारनेवाली बातें लिखी जायँ। ऐसी किताबों से जवानों को ज़रूर बचना चाहिए। कुछ रईस लोग अपने सोने के कमरों में नंगी तस्वीरें लटकाया करते हैं। कोई किताब शायद इससे ज़्यादा रुचि को गंदा करनेवाली और तबियत को बिगाड़नेवाली न होगी।

बच्चों को आचार की शिक्षा

ऐसे समय जबकि शिक्षा का प्रश्न जीवन का एक सबसे महत्वपूर्ण प्रश्न हो रहा है इस पुस्तक का प्रकाशित होना बहुत शुभ है। विशेषतः इस कारण से कि इसके लेखक लाला गोकुल चंद एम० ए० जैसे अनुभवी विचारशील व्यक्ति हैं। बच्चों की शिक्षा हर सभ्य देश में मुफ्त दी जाती है और उसका प्रबंध और उसकी व्यवस्था देश के सबसे अच्छे दिमाग़ों की कोशिशों का नतीजा हुआ करती है। हिन्दुस्तान में ऊँची शिक्षा का प्रश्न तो छिड़ा और गवर्नमेण्ट ने उससे सच्ची हमदर्दी जताई मगर बच्चों की शिक्षा का प्रश्न अब तक ग़फ़लत में पड़ा हुआ है। अभी तक इसके सिवाय कि देहाती मदरसों के लिए सब-डिप्टी-इन्सपेक्टरों की तादाद बढ़ा दी गई है, इस मामले में और ज़्यादा उत्साह नहीं दिखाई पड़ता और सच तो यह है कि अकेले गवर्नमेण्ट की कोशिशें कभी इस बड़े काम को पूरा कर ही नहीं सकतीं जब तक कि माँ-बाप सजग होकर इसमें उत्साह और

तत्परता न दिखायें। हमको विश्वास है कि यह छोटी-सी किताब इस काम में माँ-बाप का हाथ बटा सकती है, शर्त यही है कि वह इससे मदद लेना चाहें। मगर रोना तो इसका है कि लोग ऊपरी दिखावे और सजधज की बातों में तो अनुभवी, जानकार और हुनरमंद लोगों की तलाश करते हैं मगर बच्चों की शिक्षा-दीक्षा जैसे महत्वपूर्ण प्रश्न पर ऐसी उदासीनता दिखाते हैं जिसको गुनाह कहा जा सकता है। यही वजह है उनके लालन-पालन के बारे में बहुत से ग़लत ख़याल फैल गये हैं। मसलन् जब बच्चा ज़रा भी रोने लगता है तो माँ उसको गोद में लेकर ज़ोर-ज़ोर से लोरियाँ सुनाने लगती है। लेखक महोदय की सलाह है कि जिस कमरे में बच्चा लेटा हो वहाँ बिल्कुल शोर न हो, ख़ासकर जब वह सोता हो उस वक़्त बिल्कुल खामोशी चाहिए। कुछ माँ-बाप मारे प्यार के अपने सोते बच्चों से बातें करते रहते हैं। यह हानिकर है। इससे बच्चे की श्रवण शक्ति पर बुरा प्रभाव पड़ता है।

एक आम ख़राबी जो लड़कों के लालन-पालन में पाई जाती है वह यह है कि हम उनको अपनी ही ग़लती से आज्ञा न मानना और अनुचित हठ करना सिखाते हैं। ज़रूरत इसकी है कि बच्चे से जो बात कही जाय वह ज़ोर देकर उनसे कही जाय 'क्योंकि प्रकृति ने बच्चों को ऐसी शक्ति दी है कि वे फ़ौरन ताड़ जाते हैं कि जो बात उनसे कही गई है यूँही कही गई है या गंभीरता से। अगर माँ बच्चे को कोई शरारत करते हुए देखकर नज़र उधर कर लेती है या मुस्करा पड़ती है तो बच्चा समझ जाता है कि दिल्लगी है।' उसी तरह बच्चों को भूत, काटू वग़ैरह चीज़ों से डराने से जो ख़राबियाँ पैदा होती हैं लेखक ने उनका भी ज़िक्र किया है। कभी-कभी बच्चे रूठ जाते हैं उस वक़्त मार-पीट, घुड़की-धमकी बिल्कुल बेकार होती है। लेखक की सलाह है कि ऐसी हालतों में बच्चे की तरफ़ ध्यान न देना चाहिए। उसकी तबियत ऐसी नर्म होती है कि ज़रा-सा ध्यान न देने पर हँसने-खेलने लगता है। मगर बड़े, होशियार लड़कों के साथ यह बर्ताव करना नुक़सानदेह है क्योंकि ध्यान न देने से उनको और गुस्सा आने का डर है।

हमारे यहाँ बच्चों के पालन-पोषण में उनकी कलात्मक चेतना के संस्कार की ओर कोई ध्यान नहीं दिया जाता। ज़रूरी है कि बच्चों के सामने अच्छी-अच्छी तस्वीरें पेश करके उनमें सुरुचि की बुनियाद डाली जाय। उसी तरह बच्चे के सामने भद्दी आवाज़ में गाना अनुचित है।

हमारे यहाँ हर आदमी अपने लड़के को यूनिवर्सिटी की शिक्षा दिलवाना चाहता है। उसके स्वाभाविक रुझान की छान-बीन करने की ज़रा भी कोशिश नहीं की

जाती जिसका बुरा नतीजा यह है कि बहुत से लड़के जो शिक्षा के किसी दूसरे क्षेत्र में उन्नति करते वह अपनी तबियत के खिलाफ़ किताबें रटने पर मजबूर किये जाते हैं। मगर सवाल यह है कि तबियत के रुझान का अंदाज़ा कैसे किया जाय। बचपन में इंद्रियाँ बहुत दुर्बल होती हैं और किसी विशेष रुझान का पता नहीं चलता। अतः तेरह बरस की उम्र तक जरूरी है कि बच्चे को स्कूल की साधारण शिक्षा दी जाय। उसके बाद जिस तरफ़ उसका रुझान देखें उसी ढर्रे पर लगा दें। अगर लेखक ने थोड़े से शब्दों में 'किंडरगार्टन' शिक्षा-प्रणाली का उल्लेख कर दिया होता तो पुस्तक और भी लाभप्रद हो जाती। प्राचीन स्पार्टा या प्राचीन भारतवर्ष की शिक्षा-प्रणाली की चर्चा करने से, जो अब बिल्कुल गई-गुज़री बातें हो गई हैं, किंडरगार्टन की चर्चा करना कहीं ज़्यादा गुणकारी होता।

मसलए तालीम पर चंद ख्यालात

हमारे देश-गौरव लाला लाजपत राय साहब की तालीम के मामलों से दिलचस्पी बहुत बार ज़ाहिर हो चुकी है। हाल में आपने इस नाम से एक पैम्फ़लेट प्रकाशित किया है जिसमें हमारे मौजूदा तालीमी मसलों पर बड़ी छान-बीन और खूबी से विचार किया गया है और दावत दी गई है कि जो दूसरे लोग इस मसले से हमदर्दी रखते हों वह भी इस विचार-विमर्श में योग दें और अपने अनुभवों और विचारों को व्यक्त करें ताकि विचार-विनिमय से हम सही तरीक़े पर पहुँच जायें। लाला साहब ने अपने लेख में भारतीय शिक्षा-प्रणाली की यूरोपीय शिक्षा-प्रणाली से तुलना की है जिससे प्रकट होता है कि हम जीवन-संघर्ष की दौड़ में दूसरों से कितना पीछे हैं। हमारे यहाँ की शिक्षा अभी तक अव्यावहारिक है और उसके सांस्कृतिक पक्ष पर अधिक ज़ोर दिया जाता है। यूरोप और अमरीका में शिक्षा की कसौटी बिल्कुल बदल गई है। वहाँ शिक्षा एक पूँजी है जिसके ज़रिये से शिक्षा पाया हुआ लड़का या लड़की राष्ट्र और देश की सम्पत्ति बढ़ाते हैं यानी हमारी शिक्षा बौद्धिक है और उनकी भौतिक।

हिन्दुस्तान में तो अनिवार्य शिक्षा का क्या ज़िक्र, हर चार गाँव में मुश्किल से एक गाँव में कोई मदरसा है। यूरोप और अमरीका में शिक्षा न केवल अनिवार्य है बल्कि अंधों, लूलों, लंगड़ों और अलग-अलग पेशों के लिए अलग-अलग मदरसे क़ायम हैं। लड़कों को स्वस्थ रखने और उनको मज़बूत और तन्दुरुस्त बनाने के लिए बड़ी कोशिश की जाती है। मसलन् 'हर स्कूल में डाक्टरी जाँच

का ख़ास इन्तज़ाम है। लड़कों की आँख, कान, कमर, छाती, हाथ, पैर, सिर इत्यादि सब अंगों की समय-समय पर परीक्षा की जाती है और जो लड़के उन अंगों में किसी कमज़ोरी या कमी के कारण साधारण कक्षाओं के साथ काफ़ी उन्नति नहीं कर सकते उनके वास्ते ख़ास कक्षायें खुली हुई हैं।' हमारे यहाँ अभी तक प्रायमरी शिक्षा भी मुफ्त नहीं हुई। लड़का मुश्किल से शुरू की मंज़िल तक पहुँचता है कि माँ-बाप पर पढ़ाई के ख़र्चों का बोझ पड़ने लगता है। यूरोपीय देशों और अमरीका में आरंभिक और माध्यमिक शिक्षा हाई स्कूल के दर्जे तक बिला फ़ीस, मुफ्त और बिला किसी क़िस्म के ख़र्च के दी जाती है। यहाँ तक कि कागज़, क़लम, दावात वग़ैरह का ख़र्चा भी राज्य की ओर से दिया जाता है।

हमारे यहाँ अब तक यह ख़याल फैला हुआ है कि यूरोप में ऊँची शिक्षा बहुत मँहगी है। लाला साहब इसका खंडन करते हैं। कहते हैं—

'अगर इस देश की औसत आमदनी का मुक़ाबला दूसरे यूरोपियन देशों की औसत आमदनी से किया जाये तो मालूम होगा कि हमारे देश में हर तरह की शिक्षा मँहगी है। हमारे देश में सरकारी हिसाब से औसत आमदनी फ़ी आदमी तीस रुपया सालाना है। ग़ैर-सरकारी हिसाब से सिर्फ़ अठारह रुपये सालाना है। इंगलैण्ड में औसत आमदनी फ़ी आदमी ६७५ रुपये सालाना है। जिस हिसाब से इंगलिस्तानवालों की औसत आमदनी हिन्दुस्तानवालों की औसत आमदनी से साठ गुना ज़्यादा है, क्या कोई व्यक्ति यह कह सकता है कि हमारे देश में जो फ़ीस गवर्नमेण्ट कालेजों में सरकार लेती है या जिस फ़ीस के लेने पर इमदादी कालेजों को मजबूर करती है उसका इंगलिस्तान के कालिजों की फ़ीस से वही संबंध है जो हमारी औसत आमदनी का इंगलिस्तान की औसत आमदनी से है? गवर्नमेण्ट कालेज लाहौर में बी० ए० क्लास में १० रुपया फ़ीस सिर्फ़ शिक्षा की है। क्या कोई आदमी हमको बता सकता है कि आक्स-फ़ोर्ड या केम्ब्रिज के किसी कालिज में केवल शिक्षा की फ़ीस २२५ रुपया माहवार तक पहुँचती है। हरगिज़ नहीं। हालाँकि दोनों जगहों की शिक्षा में आकाश-पाताल का अंतर है।' यही कारण है कि इन देशों में हर विद्यार्थी पर औसतन एक सौ पैंतीस रुपया ख़र्च पड़ता है और राज्य को अपनी कुल आमदनी का एक तिहाई हिस्सा केवल शिक्षा की मद में खर्च कर देने में संकोच नहीं होता।

घास-चारा

मुंशी देवी दयाल साहब ने इससे पहले 'फूल' 'दरख्त' वग़ैरह पर छोटी-

छोटी और फ़ायदेमंद किताबें लिखकर ज़बान की ख़िदमत की है। हाल में उन्होंने 'घास-चारा' और 'दूध' और 'शहद' तीन और किताबें तैयार की हैं। 'घास-चारा' में तरह-तरह की घासों के नाम और थोड़े शब्दों में उनके फ़ायदे और इस्तेमाल बयान किये गये हैं। यह भी बतला दिया गया है कि कौन सी घास मवेशियों की ख़ूराक के वास्ते ज़्यादा फ़ायदेमंद है और कौन नुक़सानदेह। इस किताब में उन लोगों के लिए, जो बहुत से घोड़े वग़ैरह रखते हैं, काम की सलाहें मिल सकती हैं।

—ज़माना, अक्तूबर सन् १९०६

चित्रकला

कविता की तरह चित्रकला भी मनुष्य की कोमल भावनाओं का परिणाम है। जो काम कवि करता है वही चित्रकार करता है, कवि भाषा से, चित्रकार पेंसिल या क़लम से। सच्ची कविता की परिभाषा यह है कि तस्वीर खींच दे। उसी तरह सच्ची तस्वीर का यह गुण है कि उसमें कविता का आनंद आये। कवि कान के माध्यम से आत्मा को सुख पहुँचाता है और चित्रकार आँख के द्वारा और चूंकि देखने की शक्ति सुनने की शक्ति की अपेक्षा अधिक कोमल और संवेदनशील होती है इसीलिए जो बात चित्रकार एक चिह्न एक रेखा या ज़रा से रंग से पूरा कर देगा वह कवि की सैकड़ों पंक्तियों से न अदा हो सकेगी। कवि जब अपनी कविता पढ़ने लगता है तो केवल भाषा को भाव की अभिव्यक्ति के लिए काफ़ी न समझकर आँखों, भँवों और उँगलियों से ऐसे इंगित करता है जिनसे उसकी कविता का आनन्द दुगना हो जाये, गोया उसे अपना मतलब अदा करने के लिए चित्रकला की आवश्यकता होती है मगर चित्रकार की तस्वीर ही उसका भाव व्यक्त करने के लिए काफ़ी होती है।

मगर जिस कला की हम चर्चा कर रहे हैं वह उस सच्ची चित्रकला की नक़ल है। चूंकि कवि का संबंध वाणी या भाषा से है इसलिए उसके दिल में बात पैदा हुई और उसने वाणी से उसे व्यक्त किया। चित्रकला के लिए निगाह का ठीक होना, हाथ की सफ़ाई और रंगों की मिलावट का ज्ञान बेहद ज़रूरी है। इसलिए चित्रकार ऐसी आसानी से अपना भाव व्यक्त नहीं कर सकता जैसे कि कवि। हर देश के इतिहास में कविता के बहुत दिनों बाद चित्रकला का उदय होता है। इटली में कविता ईसवी सन् से पहले अपने उच्चतम शिखर पर पहुँच गई थी मगर चित्रकला का उदय चौदहवीं सदी में हुआ। उसी तरह इंगलिस्तान में मिल्टन और शेक्सपियर के लगभग दो सदी बाद चित्रकला ने ज़ोर पकड़ा।

हिन्दुस्तान में अन्य कलाओं की तरह चित्रकला भी अपने शिखर पर पहुँची हुई थी। यद्यपि आजकल उस ज़माने की तस्वीरें नहीं मिलतीं मगर जिन हाथों ने एलोरा और अजंता के मंदिरों में जादूगरी की, उनकी उन्नत चित्रकला में कोई संदेह नहीं हो सकता। पुराने देशों की चित्रकला का अंदाज़ा करने के लिए ज़रूरी है कि उसकी पुरानी इमारतें देखी जाँय क्योंकि तस्वीरें बहुत अर्से तक

असली आबो-ताब पर क़ायम नहीं रह सकतीं बल्कि बहुत समय बीत जाने पर वह आप ही आप खत्म हो जाती हैं।

अकबरी दौर या उसके बाद के भारतीय चित्रों से भी यहाँ की उन्नत चित्रकला का कुछ अनुमान किया जा सकता है। गो वह ज़माना हिन्दुस्तान के लिए तरक़्क़ी का युग न था तो भी उस वक़्त की तस्वीरें बहुत ही अनमोल हैं। निस्संदेह आकृति-चित्रण में वह बेजोड़ थे। हाँ, चित्रकला की अन्य विधाओं में वह बहुत सिद्धहस्त न थे और दृष्टि-क्रम के नियमों से भी वह बहुत परिचित न थे। 'आइने अकबरी' की तस्वीरों में अगरचे चलत-फिरत, ज़िन्दादिली, अनुपात का ज्ञान, सब कुछ मौजूद है मगर दृष्टि-क्रम का बिल्कुल लिहाज़ नहीं किया गया। दरवाज़े के सामने सहन में जिस क़द-क़ामत की शकलें नज़र आती हैं उतनी ही बड़ी महल-सरा के अंदर भी दिखाई देती हैं और यह आधुनिक चित्रकला की दृष्टि से बहुत बड़ा दोष है। इसके अलावा धूप-छाँव के लिहाज़ से भी उन तस्वीरों में अक्सर दोष दिखाई देते हैं। सहन और महलसरा के अंदर एक ही अंदाज़ और वज़न की रोशनी पाई जाती है। ये दोष शायद इस कारण से पैदा हुए कि हिन्दुस्तान में चित्रकला भवन-निर्माण के समान पेशेवर लोगों के हाथों में थी और वे पढ़े-लिखे न होने के कारण अपनी कला की उपलब्धि में दृष्टि-क्रम के ज्ञान की सहायता नहीं ले सकते थे। इसलिए जहाँ तक हाथ की सफ़ाई का संबंध है उन चित्रों में कोई दोष नहीं मगर विज्ञान की दृष्टि से उनमें बहुत से दोष मौजूद हैं।

यद्यपि चित्रकला पिछली कई शताब्दियों से हमारे शिक्षा-क्रम का कोई उल्लेखनीय अंग नहीं रही है मगर इसमें कोई संदेह नहीं कि उन्नति के युग में यह कला यहाँ अवश्य प्रचलित थी। योरप ने अगर तस्वीरों से मज़हबी इमारतों और कलीसाओं को सजाया तो हिन्दुस्तान ने उन्हें सांस्कृतिक रीति-रिवाज में सम्मिलित कर दिया। शादी-ब्याहों में औरतें अपने हाथों से घर में तस्वीरें बनाती हैं। कैसा ही ग़रीब आदमी क्यों न हो मगर जब वह अपने बेटे या बेटी का ब्याह करता है तो अपने दरवाज़े पर हाथी, घोड़े, ऊँट, प्यादों की तस्वीरें ज़रूर बनवाता है। ये तस्वीरें एक रुई लपेटे हुए तिनके से बनाई जाती हैं और गेरू, खड़िया या चावल पीस कर रँगी जाती हैं और अगरचे बहुत बेडौल और भद्दी होती हैं मगर इसमें कोई शक नहीं कि वह किसी पुरानी रस्म की बिगड़ी हुई यादगारें हैं। इसी तरह हिन्दुओं में कई ऐसे त्योहार हैं जिन मौक़ों पर औरतें घरों में दीवारों पर तस्वीरें बनाती हैं और यह तस्वीरें सिर्फ़ जानवरों या फूल-पत्तियों की नहीं होतीं बल्कि एक लंबी कहानी उन्हीं निशानों से अदा की जाती है। इनमें न अनुपात होता है, न धूप-छाँव, न पर्सपेक्टिव या दृष्टि-क्रम का कुछ ध्यान रक्खा जाता है, न रंगों

की मिलावट का। हाँ, उनसे यह बात यक़ीनी तौर पर साबित हो जाती है कि पुराने ज़माने में इस कला की सभी विधाएँ हमारी स्त्रियों के शिक्षा-क्रम में सम्मिलित थीं।

योरप में चित्रकला का आरंभ तेरहवीं सदी के आस-पास हुआ और पन्द्रहवीं सदी तक वहाँ न सिर्फ़ एक से एक अनमोल तस्वीरों का खज़ाना जमा हो गया बल्कि इस कला पर अनेक पुस्तकें भी तैयार हो गईं जिनमें लियोनार्डो डा विन्ची की किताब अभी तक सजग क्षेत्रों में बहुत सम्मान से देखी जाती है। इटली वह पवित्र भूमि थी जहाँ योरोपीय चित्रकला का सूर्योदय हुआ और जहाँ से उसकी किरणें तीन शताब्दी तक दूसरे देशों को आलोकित करती रहीं। यहीं इस कला के जन्मदाता पैदा हुए—रफ़ायल, माइकेलएंजिलो, जोलियो रोमीनो और कोरेजियो जैसे प्रसिद्ध चित्रकार इसी मिट्टी में पैदा हुए जिनकी तस्वीरें आज के बड़े-बड़े उस्ताद देखते हैं और दाँतों तले उंगली दबाते हैं। इस कला में उनका वही स्थान था और वह उसी तरह अनुकरण से परे हैं जैसे होमर, वर्जिल, कालिदास या शेक्सपियर। उनकी तस्वीरों के सामने जाते ही ऐसा लगता है कि जैसे किसी तरोताज़ा बाग़ में आ पहुँचे। हाँ यह आनंद प्राप्त करने के लिए एक विशेष प्रकार का रुचि का संस्कार अपेक्षित है। इसके बग़ैर अच्छी तस्वीर से आनंद नहीं प्राप्त हो सकता बिल्कुल उसी तरह जैसे कविता के संस्कार के बिना कविता की ख़ूबियों का आनंद उठाना असंभव है।

इटली केवल आकृति-चित्रण से संतुष्ट नहीं हुआ बल्कि उसने चित्रकला की हर विधा में ऊँचा स्थान प्राप्त किया। प्राकृतिक दृश्य, धार्मिक किंवदंतियाँ, कविता के विषय आदि विधाएँ उसने पैदा कीं और उन्हें पाला-पोसा। उनमें के कुछ चित्र ऐसे लोकप्रिय हो गये हैं कि दुनिया का कोई कोना उनसे ख़ाली नहीं है। रफ़ायल की बेजोड़ तस्वीर 'मरियम का बेटा' हिन्दुस्तान के हर शहर में शरीफ़ों के कमरों में और तम्बोलियों की दूकानों पर समान रूप से शोभा देती है। उसकी रंगत की सादगी और विचारों की पवित्रता ऐसी आनंददायक है कि रुचिहीन व्यक्ति भी उसे देखकर कुछ न कुछ आत्मिक आनंद पा लेता है। यह तस्वीरें इस तरह संभाल कर रक्खी हुई हैं और उन पर रौग़न ऐसे पक्के और ठहरनेवाले दिये हुए हैं कि तीन सदियाँ गुज़र जाने के बावजूद अभी तक उनकी ताज़गी और आबो-ताब में फ़र्क़ नहीं आया। हाँ, कुछ तस्वीरें जिनकी काफ़ी एहतियात न हो सकी, अल-बत्ता कुछ ख़राब हो गई हैं। रेनाल्ड्स कहा करता था कि वह जिन उस्तादों की बनाई हुई हैं वह इन्सान नहीं फ़रिश्ते थे। इटली की शान सारे योरप पर अभी तक ऐसी छाई हुई है कि किसी देश का आदमी अपनी कला का उस्ताद नहीं

माना जाता जब तक कि वह दो-चार बार इटली की चित्रशालाओं को ठीक से देख न ले। खास तौर पर रोम की चित्रशाला वैटिकन तो हमेशा कला-प्रेमियों के लिए एक दर्शनीय स्थान रहा है।

उसकी बुनियाद पोप लियो के मुबारक ज़माने में पड़ी थी और उसी वक़्त से बड़े-बड़े उस्ताद उसकी मेहराबों और ताकों को अपनी जादू-भरी तूलिका से सुशोभित करने लगे। दुनिया में कोई दूसरी चित्रशाला ऐसी नहीं जो महत्व या महानता की दृष्टि से उसकी बराबरी का दम भर सके। यहाँ तक कि उसकी सैर करने ही से आधुनिक युग के चित्रों पर दावे के साथ कुछ कहने का अधिकार मिल जाता है। योरप में कितने ही ऐसे कला-प्रेमी पड़े हुए हैं जो उनमें की एक-एक तस्वीर के लिए दस-दस लाख पौण्ड तक देने को तैयार हैं। यहाँ बड़े-बड़े उस्तादों ने सौन्दर्य और यौवन, वीरता और पौरुष, पवित्रता और उपासना, तप और साधना, प्रेम और वात्सल्य के अच्छे से अच्छे नमूने अपने जादू-भरे क़लम से बनाकर रख दिये हैं जो प्रकृति-चित्रकार की अच्छी से अच्छी कारीगरियों से टक्कर लेते हैं।

सब कलाओं का नियम है कि जब वह आरंभिक दशाओं को पार करके उत्कर्ष को पहुँचती हैं तो उनमें विभिन्न रंग पैदा हो जाते हैं। हिन्दुस्तान में दर्शन और धर्म-चर्चा के सात रंग मौजूद हैं। उसी तरह उर्दू शायरी में दिल्ली और लखनऊ की शैलियाँ अलग-अलग हैं। उसी तरह इटली में चित्रकला के अलग-अलग रंग हो गये जिनमें रोम, वेनिस, फ्लोरेन्स और मिलान बहुत प्रसिद्ध हैं। हर रंग को अपनी विशेषताओं पर गर्व है। कोई आकृति-चित्रण पर जान देता है, कोई प्रकृति-चित्रण पर, कोई कल्पना की रंगीनी पर। उनकी कला की सूक्ष्मताओं में भी अंतर हैं और हर रंग के साथ बड़े-बड़े उस्तादों के नाम जुड़े हुए हैं।

रोम से फ्रांस, स्पेन, और डेनमार्क ने सबक़ सीखा और इन्हीं तीनों देशों के कुछ बड़े चित्रकारों ने इंगलिस्तान में इस कला का प्रचार किया। इटली के बाद चित्रकला में फ्रांस का स्थान है और वहाँ की चित्रशाला 'लूव्र' भी दूसरा वैटिकन है।

जो लाभ मनुष्य को कविता से प्राप्त होते हैं वही लाभ चित्र से भी प्राप्त होते हैं। कविता स्वयं एक मोहक वस्तु है, चित्र का भी यही गुण है। कवि की दृष्टि सौन्दर्य पर लोट-पोट हो जाती है, चित्रकार तड़पने लगता है। श्रेष्ठ कविता मनुष्य के भावों को दिखाती और हमारे हृदय की कोमल स्थितियों को व्यक्त करती है, दिलों को उभारती और हमारे विचारों को हीनता से निकालकर उत्कर्ष पर पहुँचाती है। यानी कवि का श्रेष्ठतम कर्तव्य मनुष्य को सुन्दरतर बनाना

है। श्रेष्ठ चित्रकला भी हमारे सामने मानव समाज के सबसे अच्छे पहलू दिखाती और अच्छे-अच्छे कामों के नमूने पेश करती है। यानी कविता की तरह उसका कर्तव्य भी आदमी को इंसान बनाना है। कभी-कभी कविता की तरह चित्रकला भी ज़माने की बुराइयों पर कोड़े लगाती है। मगर दोनों कलाएँ गुलदस्ते सजानेवाले बाग़बान हैं न कि घास-पात उखाड़नेवाले माली।

कविता के समान चित्रकला भी व्यक्तियों को राष्ट्रीयता की ओर ले जाती है बल्कि इस वक़्त हिन्दुस्तान को कविता से अधिक चित्रकला की ज़रूरत है। ऐसे देश में जहाँ सैकड़ों विभिन्न भाषाएँ प्रचलित हैं, अगर कोई सर्व-सामान्य भाषा चल सकती है तो वह तसवीर है। यही भाषा कश्मीर से कन्याकुमारी तक हर आदमी की समझ में यकसाँ आ सकती है। स्वर्गीय राजा रवि वर्मा अगर तेलुगू भाषा में कविता करते तो उनके नाम से यह प्रदेश आज परिचित भी न होता और न उससे समग्र राष्ट्र का कुछ भला होता। मगर उनके चित्रों ने सारे देश में एक सामीप्य, एक आत्मीयता की भावना उत्पन्न कर दी है। बंगाली भी शकुन्तला के चित्र से उतना ही आनंदित होता है जितना कि पंजाबी या मरहठा हो सकता है क्योंकि सब हिन्दू समुदायों में कालिदास और उसकी नायिका का नाम बच्चे-बच्चे की ज़बान पर है। उसी तरह अनगिनत ऐसे धार्मिक और सांस्कृतिक विषय हैं जो सब हिन्दुस्तानियों के दिलों में एक ही विचार, एक ही उत्साह, एक ही भावना उत्पन्न कर सकते हैं और जो चित्र ऐसे पवित्र विषयों को अंकित करता है वह देश में सच्ची राष्ट्रीयता फैलाता है क्योंकि एक ही विचार से प्रभावित हो जाने का नाम राष्ट्रीयता है। कौन ऐसा हिन्दू होगा जो राजा रामचन्द्र के बनवास पर आँसू न बहाये। श्रीकृष्ण की बाँसुरी की मोहक पुकार से कौन विभोर न हो जायगा। दमयन्ती के सतीत्व की क़सम कौन हिन्दुस्तानी न खायेगा। यह तो ख़ैर धार्मिक बातें हैं। सिर्फ़ एक हिन्दुस्तानी घराने की तसवीर, एक भारतीय पति का अपनी प्यारी पत्नी से विदा लेना, एक हिन्दू औरत का अपने परदेश जाने वाले बालम के घर लौटने के लिए आँचल उठाकर सूरज से प्रार्थना करना, एक हिन्दू लड़के का अपनी माँ की गोद में खेलना—ऐसे विषय हैं जो एक जादू-भरे चित्रकार के हाथों में सच्ची जातीयता के चिन्ह बन सकते हैं।

चित्रकला से हमारा अभिप्राय फ़ोटोग्राफ़ी कदापि नहीं है। फ़ोटोग्राफ़ी सीखना दिनों का काम है, चित्रकला वर्षों का, बल्कि उससे भी कहीं ज़्यादा। यद्यपि आजकल चित्रकला की तुलना में फ़ोटोग्राफ़ी की उसके सस्तेपन के कारण बहुत उन्नति हो रही है लेकिन कला-मर्मज्ञ फ़ोटोग्राफ़ी को कला की श्रेणी में लाते ही

नहीं। इसमें संदेह नहीं कि फ़ोटोग्राफर बहुत थोड़े समय में असल चीज़ की नक़ल उतार लेता है मगर यह नक़ल बेजान, मुर्दा और बेरंग होती है। प्रकृति की चित्र-विचित्र रंगारंगी दिन की तरह रौशन है। ऐसी कोई प्राकृतिक वस्तु नहीं जो कोई न कोई रंग न रखती हो। फ़ोटोग्राफर इस बात को बिल्कुल आँख से ओझल कर देता है। मसलन् अगर किसी पहाड़ी दृश्य की तस्वीर उतारेगा तो पहाड़ का दामन, उसकी चोटी, उस पर के हरे-भरे पेड़, उसके दर्रे और गुफाएँ और उसके सामने का विस्तृत और मोहक दृश्य सब एक ही रंग के होंगे। आसमान नीले के बजाय कुछ पीलापन लिये होगा। अगर इस पहाड़ में कोई झरना होगा तो फोटो में एक सफेद लकीर की तरह दिखाई देगा जिसमें गति, तेज़ी और झाग नाम को न होगी। उसको देखकर हम यह न पहचान सकेंगे कि यह किस दृश्य का चित्र है चाहे वह दृश्य हमारी आँखों में कैसा ही परिचित क्यों न हो। इसके विपरीत, चित्रकार अगर इसी दृश्य का समाँ सुबह के वक़्त दिखायेगा तो पहाड़ की चोटियों पर धुंधली सुनहली किरणें होंगी, पहाड़ की तलहटी ऊपरी हिस्से से कुछ ज़्यादा कालापन लिये होगी, पेड़ हरे-भरे और सुनहरे होंगे, आसमान पर सूर्योदय की लाली फूली हुई, झरने का पानी मचलता और लहराता हुआ, पहाड़ के सामने का मैदान पीलापन लिये हुए शबनमी रंग का नज़र आयेगा। अगर हमने कभी इस दृश्य को देखा है तो तसवीर के देखते ही फौरन पहचान जायेंगे। निस्संदेह फ़ोटोग्राफर यथार्थ-चित्रण में चित्रकार से बढ़ा रहता है मगर कला वह है जो प्रकृति की सुन्दरताओं में और भी कुछ जोड़े, सुन्दर को सुन्दरतर बनाये, न कि प्राकृतिक सौन्दर्य को और घटाकर और उसे प्राकृतिक अलंकारों से वंचित करके हमारे सामने प्रस्तुत करे। चित्रकार अगर कोई दृश्य दिखाता है तो केवल यथार्थ-चित्रण करके संतुष्ट नहीं हो जाता बल्कि वह अपनी मौलिक सृजन-शक्ति और विवेक से काम लेता है। अगर कोई भद्दी चीज़ सामने आ गई है तो वह उसे आँख की ओट कर जाता है और किसी दूसरे दृश्य की सुन्दर चीज़ें ऐसे सुरुचिपूर्ण ढंग से लाकर मिला देता है कि चित्र का सौन्दर्य दुगना हो जाता है। वह प्रकृति की नक़ल नहीं करता बल्कि प्रकृति को सँवारता और सुधारता है। बेचारा फ़ोटोग्राफर अपनी कला के बन्धनों से विवश है। वह नक़ल करता है और नक़ल भी ऐसी जिसका असल से कोई मेल नहीं होता।

कवि के समान चित्रकार में भी उन्मेष हुआ करता है मगर कवि तो होश सँभालते ही अपनी कवि-प्रकृति का परिचय देने लगता है और बेचारा चित्रकार बहुत दिनों तक प्राकृतिक दृश्यों, मानव स्वभावों और वृत्तियों और जानवरों की आदतों का अध्ययन और निरीक्षण करता रहता है। उसके लिए इन बारीकियों

को बहुत ध्यान से देखने की कवि की अपेक्षा कहीं अधिक आवश्यकता है। चित्रांकन वह कला है जिसके लिए बहुत अवकाश, बड़ी तीक्ष्ण दृष्टि, बड़ी व्यापक और ज्वलंत कल्पना, बड़ा दर्दमंद और नाजुक दिल होना चाहिए। इन खूबियों के होने पर भी आदमी बग़ैर दिन-रात अभ्यास किये और रंगों के रहस्य और उनकी बारीकियाँ समझे, बग़ैर उस्तादों की बनाई हुई तस्वीरें देखे और उनकी खूबियों को समझे इस कला में दक्षता नहीं प्राप्त कर सकता। उसकी एक-एक विधा बल्कि एक-एक विधा की एक-एक शाखा में दक्षता प्राप्त करने के लिए एक ज़िन्दगी दरकार है। कोई चित्रकार फूलों का प्रेमी होता है और वह उन्हीं की खूबियाँ दिखाने में अपनी ज़िन्दगी खर्च कर देता है, कोई ज़िन्दगी भर कुत्तों की ही तसवीरें खींचता है। किसी ने बच्चों की तसवीरें खींचना अपने जीवन का कार्य बना लिया है और कोई समुद्री दृश्यों पर मुग्ध है। यह क्षेत्र इतना विस्तृत है कि उस पर सम्पूर्ण रूप से अधिकार कर लेना एक आदमी की शक्ति से बाहर है। उसके एक छोटे से टुकड़े को ले लीजिए और उसी पर अपनी इमारतें बनाइये और तब वह इमारत ऐसी होगी कि देखनेवाले उसकी तारीफ़ करेंगे और वह बहुत दिनों तक क़ायम रह सकेगी।

योरप की बहुत-सी पत्रिकायें नियमपूर्वक चित्रकला पर लेख प्रकाशित किया करती हैं। खास इंगलिस्तान में ऐसी कई पत्रिकायें हैं। इन लेखों का जनता के हृदय में क्या महत्व है वह इससे स्पष्ट है कि ऐसे लेख हमेशा बहुत ऊँचा स्थान पाते हैं। वहाँ कोई अच्छी तस्वीर निकल जाती है तो चारों ओर उसकी चर्चा होने लगती है, पत्रिकायें उसकी अनुकृतियाँ छापती हैं, उस पर टीका-टिप्पणी की जाती है, उसकी अच्छाइयों और बुराइयों पर बहसें होती हैं। हिन्दुस्तान में इस कला की उन्नति की यह मंज़िल कोसों दूर है। देखा चाहिए हम कब तक वहाँ पहुँचते हैं।

—ज़माना, मार्च १९०७

टामस गेन्सबरो

चित्रकला की विभिन्न विधाओं में प्रकृति-चित्रण को सबसे कठिन और सूक्ष्म ठहराया गया है और आकृति-चित्रण को सबसे सरल। अगर रेनाल्ड्स, जो अंग्रेज़ी चित्रकला का ब्रह्मा समझा जाता है, आकृति-चित्रण की कला को उत्कर्ष के शिखर पर ले गया तो गेन्सबरो ने प्रकृति-चित्रण को कमाल के दर्जे तक पहुँचाया। रेनाल्ड्स के पहले इंगलिस्तान में वैन्डाइक और रुबेन्स जैसे-जैसे बड़े चित्रकार आकृति-चित्रण की कला का प्रवर्तन कर चुके थे और सामान्य रुचि भी उसी की ओर झुकी हुई थी। गेन्सबरो के पहले इंगलिस्तान में किसी ने प्रकृति-चित्रण का साहस न किया था और इस दृष्टि से वह अपने देश में इस कला का प्रवर्तक और जन्मदाता कहा जा सकता है।

टामस गेन्सबरो सन् १७४७ ई० में सफ़ोक नामक सूबे के एक नगर में पैदा हुआ। उसका बाप बज़ाज था और अपनी ईमानदारी, लेन-देन की सफ़ाई और मेहनत के लिए आस-पास मशहूर था। उसकी माँ साधारण माँओं की तरह मुहब्बती, गंभीर और अपने लड़कों पर गर्व करनेवाली थी। यह ख़ानदान वहाँ बड़ी इज़्ज़त से देखा जाता था। टामस अपने तीन भाइयों में सबसे छोटा था लेकिन अक़्ल और मिज़ाज की तेज़ी में सबसे बढ़कर था। चित्रकला का प्रेम वह माँ के पेट से लेकर आया था। उसे इससे स्वाभाविक लगाव था। उसके मकान के पास एक बहुत ख़ूबसूरत, चार मील के घेरे की झील थी। उसके किनारे-किनारे बड़े-बड़े पुराने छतनार छाँहदार पेड़ लगे हुए थे। झील के पेचीदा नाले बड़ी बाँकी अदा से धीमे-धीमे अठखेलियाँ किया करते थे। टामस स्कूल जाता तो उन्हीं सुहानी जगहों के सैर-सपाटे किया करता और उस सुन्दर, मोहक दृश्य को देखते-देखते उसे प्राकृतिक दृश्यों से प्रेम-सा हो गया और आख़िरकार वह दृश्य-चित्रण में कमाल पर पहुँचा। अब भी वह कोने, वह पेड़ मौजूद हैं जहाँ बैठकर वह फूलों, पत्तियों, पेड़ों और सुन्दर दृश्यों के चित्र खींचा करता था और कहा जाता है कि उनमें आनेवाले ज़माने के कमाल का पूर्वाभास मिलता है, केवल अभ्यास की कमी है। दस ही बरस की उम्र में उसके हाथों की तेज़ी और आँखों की सफ़ाई के जौहर खुलने लगे और बारह बरस की उम्र में तो वह कुशल चित्रकार बन गया। ज़ाहिर है कि ऐसी हालत में उसकी स्कूली शिक्षा

नाम मात्र को हुई होगी मगर जो लोग प्रकृति से कलाकार उत्पन्न होते हैं वह अपने किताबी ज्ञान की कमी को अपने निजी अनुभव और प्रत्यक्ष निरीक्षण से बहुत जल्द पूरा कर लिया करते हैं।

कुछ दिनों तक तो टामस अपने इस व्यसन को अपने माँ-बाप से छिपाता रहा मगर कब तक छिपाता। एक रोज़ उसके जी में आयी कि झील के किनारे बैठकर खूब प्रकृति की सैर कीजिए, मगर स्कूल बंद न था। आख़िर अपने पिता की ओर से मास्टर के पास एक ख़त लिखा कि टामस को आज की छुट्टी दे दीजिए। उस वक़्त तो चकमा चल गया मगर बाद को जब भेद खुला और मास्टर ने टामस के पिता के पास वह ख़त इसलिए भेजा कि बेटे को सावधान कर दिया जाय तो बाप ने बड़े दुख से कहा—यह छोकरा तो एक ही घाघ निकला! यह कभी न कभी ज़रूर फाँसी पर चढ़ेगा! मगर जब गाँववालों ने कहा कि उस दिन तो टामस झील के किनारे बैठकर तस्वीरें बना रहा था और बाप ने उन तस्वीरों को देखा तो दुख की जगह हार्दिक प्रसन्नता हुई। बोल उठा—टामस, तुम तो चित्रकार हो गये।

एक बार वह अपने बाप के बाग़ीचे में बैठा हुआ एक पुराने, ठूँठे लेकिन सुन्दर पेड़ की तस्वीर उतार रहा था कि उसने गाँव के एक आदमी को चहार-दीवारी के ऊपर से कुछ लाल-लाल पके हुए आड़ुओं की तरफ़ ललचाई आँखों से ताकते देखा। सूरज की तिरछी किरणें उसके ललचाये हुए चेहरे पर कुछ इस तरह पड़ रही थीं कि उस पर धूप-छाँव को बड़ी सुहानी कैफ़ियत पैदा हो रही थी। टामस ने उसी वक़्त उसका चेहरा भी उतार लिया। बाद में जब उसके पिता ने यह तस्वीर देखी तो बहुत खुश हुआ और किसान को बुलाकर कहा, ज़रा अपनी सूरत देखो! बेचारा किसान बहुत लज्जित हुआ। यह तस्वीर खुद टामस को ऐसी भली मालूम होती थी कि उसने बहुत अरसे के बाद उसे रंग-रौग़न से सजाया और कला के पारखियों ने उसकी बड़ी तारीफ़ की। ऐसी जल्दी में उसने जो तस्वीरें बनायी हैं उनमें ऐसी स्वच्छन्दता और सहजता है कि वह उसकी सबसे अच्छी तस्वीरों में हैं।

उसके बचपन के दिनों के ख़ाकों में अब कोई ख़ाका बाक़ी नहीं मगर किसी वक़्त वे सैकड़ों की तादाद में थे। चरती हुई गायें, शाख़ों पर चहचहाती हुई चिड़ियाँ, पानी पीती हुई भेड़ें, बाँसुरी बजाता हुआ किसान, गाय को दाना खिलाती हुई अहीरिन, नदी किनारे का वातावरण, खुशनुमा घाटियाँ, कोई चीज़ ऐसी न थी जिस पर उसने अपनी पेन्सिल न चलायी हो। वह उनके ख़ाके खींच-खींच रखता जाता कि आगे चलकर उनकी तस्वीरें बनाऊँगा मगर जब वह इस

कला में निपुण हुआ तो ये ख़ाके आँख में न जँचे, उन्हें यार-दोस्तों में बाँट दिया। एक कला-मर्मज्ञ ने इन ख़ाकों में से एक देखा था जिसमें एक पेड़ का कुंज बना हुआ था। उसकी राय थी कि यह अपने ढंग की एक बेजोड़ तस्वीर थी।

गेन्सबरो जब चौदह बरस का हो गया और चित्रकला की ओर उसके रुझान को काफ़ी ख्याति मिल चुकी तो लोगों की सलाह हुई कि उसे इस कला का और भी ज्ञान प्राप्त करने के लिए किसी चित्रकार के पास भेजा जाय। होगार्थ के मित्रों में एक हेमैन नाम का आदमी था। टामस को उसका शिष्य बना दिया गया। उसकी बुद्धि, मौलिकता, विनयशीलता और हाथ की तेजी ने उसे मित्रों की दृष्टि में बहुत प्रतिष्ठा दे रक्खी थी मगर अभी तक न उसको और न उसके गुण के किसी पारखी को यह ख़याल हुआ था कि वह इस कला के शिखर पर पहुँच सकेगा। वह समझते थे कि किसी छोटे-मोटे शहर में वह इस पेशे से अपने गुज़ारे भर को कमा लेगा। टामस को शुरू ही से आकृति-चित्रण में रुचि न थी और ऐतिहासिक घटनाओं के चित्रों में दिमाग़ बहुत ख़र्च होता था और कमाई बहुत कम। शायद वह इन दोनों विधाओं में चित्रकारी करने के लिए बनाया ही नहीं गया था। प्राकृतिक दृश्यों के चित्रण से उसे स्वाभाविक लगाव था और उसी को चमकाने और उसकी बदौलत ख़ुद चमकने का उसने निश्चय कर लिया था। अंग्रेज़ी चित्रकला के क्षेत्र में अब तक इस फ़न को जाननेवाला कोई नहीं निकला था। निस्संदेह विल्सन की तबीयत इस ओर बहुत झुकी हुई और इसके उपयुक्त थी मगर वह जीविकोपार्जन की आवश्यकताओं से विवश होकर लोगों की आकृतियाँ बनाने लगा था। टामस चार बरस तक लंदन में रहा और रंग बनाने और उसमें तेल मिलाने की कला में निपुण होकर अपने शहर को लौट आया।

वह अब अपने अठारहवें साल में था। उसकी ख्याति अपने मित्रों की मंडली से निकलकर आस-पास फैलने लगी थी। उसका हँसमुख स्वभाव, उसकी मर्दाना ख़ूबसूरती और उसका हँसोड़पन ऐसे गुण थे जो उसे हर जगह एक विशेष स्थान दिला सकते थे। एक रोज़ वह शाम को सैर कर रहा था कि संयोग से एक पेड़ की ख़ूबसूरती ने उसे अपनी तरफ़ खींचा। उसके नीचे भेड़ें ख़ामोश आराम कर रही थीं और ऊपर फ़ाख्ते और कबूतर बसेरा ले रहे थे। वह वहीं ज़मीन पर बैठ गया और उस दृश्य का ख़ाका उतारने लगा कि एक सुन्दर युवती भी घूमती हुई आ पहुँची। युवक चित्रकार ने फ़ौरन उसको उस तस्वीर में और साथ ही अपने दिल में जगह दे दी। थोड़े दिनों के बाद दोनों की शादी हो गई और वह दोनों इस्पियोक में एक छोटा सा मकान छः पौण्ड सालाना के किराये

पर लेकर बसर करने लगे। मियाँ-बीवी एक दूसरे पर जान देते थे और यो अभी पेशे से बहुत कम आमदनी होती थी मगर यह किफ़ायतशार, सुवड़ स्त्री दिलों में बदमज़गियाँ नहीं पैदा होने देती थी।

यहाँ टामस की मुलाक़ात मिस्टर फिलिप से हुई जो एक क़िले के गवर्नर थे। मिस्टर फ़िलिप तबियत के रईस थे और गोष्ठियों के प्रेमी। उस बीहड़ जगह में इस तरह की गोष्ठियों का कोई मौक़ा न था और न ऐसे लोग थे जो महफ़िल को गरमा सकें। ऐसे लोगों को तो कुछ शहरों ही से लगाव है। उसने जब टामस को ऐसा नेक, हँसमुख और कला का धनी पाया तो उससे मेल-जोल पैदा किया। टामस भी इस जगह पर अभी तक गुमनाम था और उसकी ज़रूरत थी कि रईसों की मंडली में उसकी पहुँच हो और लोग उसको जानें। अतः उस गवर्नर की संरक्षकता उसने स्वीकार कर ली। फ़िलिप नेक मिज़ाज का आदमी तो था मगर घमंडी बहुत ज़्यादा था। जितना वह किसी के लिए करता उससे ज़्यादा कहता। वह ऐसा आदमी न था कि किसी के साथ भलाई करे और भूल जाय बल्कि एक बार भी किसी के साथ कोई सलूक कर लेता तो बार-बार कहा करता। यह बात टामस जैसे स्वाभिमानी आदमी को क्योंकर पसंद आ सकती थी। तब भी वह बहुत अर्से तक सिर्फ़ इस ख़याल से कि मैं कहीं कृतघ्नता का दोषी न ठहरूँ, गवर्नर साहब की ये घमंड भरी बातें सहता रहा। मगर जब उसकी ख्याति फैली और इधर दिलों में भी गाँठ पड़ी तो फ़िलिप टामस का वैरी बन गया। दुनिया में ऐसे बहुत आदमी मिलेंगे जो आपके साथ उस वक़्त तक हर तरह से अच्छा बर्ताव करते रहेंगे जब तक आप उनको अपना देवता, अपना बुज़ुर्ग और अपना आदर-पात्र समझते रहेंगे। मगर ज्योंही वह आपके तौर-तरीक़ों में स्वतंत्रता की ज़रा भी गंध पायेंगे त्योंही आपके दुश्मन हो जायेंगे क्योंकि ऐसे लोगों की निगाह में इससे बढ़कर कृतघ्नता दूसरी नहीं हो सकती।

फ़िलिप ने टामस से फ़रमाइश की कि मेरे क़िले और उसके आस-पास के दृश्य खींचो। पारिश्रमिक तीस पौण्ड ठहरा। टामस ने इस तस्वीर में अपनी जान खपा दी। एक नामी मूर्तिकार ने उसे पट्टी पर खोदा और थोड़े ही दिनों में उस तस्वीर की बहुत सी कापियाँ बिक गईं। असली तस्वीर अब वक़्त के हाथों तबाह हो गई। इस तस्वीर के अलावा टामस ने इसपियोक के तमाम सुहाने दृश्यों की तस्वीरें लीं और इस सीमित क्षेत्र में उसकी ख्याति स्थापित हो गई और ज़रूरत हुई कि वह अब इस जगह से हटकर किसी ज़्यादा आबाद और रौनक़दार जगह पर रहना शुरू करे। बाथ इंगलिस्तान का शिमला या नैनीताल है। यहाँ पचास

पौण्ड सालाना का मकान किराया करके उठ आया। गवर्नर फ़िलिप इस जगह के फ़ैशनेबुल लोगों में बहुत मशहूर था। लिहाज़ा उसने टामस गेन्सबरो से अपनी तस्वीर खींचने की फ़रमाइश की ताकि उसकी तस्वीर देखकर दूसरे रईसों का ध्यान भी उसकी ओर जाय। मगर टामस उस वक़्त तक इस घमंडी आदमी के नाज़ उठाते-उठाते तंग आ गया था। उसने उसकी तस्वीर शुरू तो की मगर पूरी न कर सका और यही गोया गवर्नर साहब के कुपित होने का पहला कारण था। मगर टामस को गवर्नर साहब के कोप की क्या परवाह थी। वह अपना समय दृश्य-चित्रण, आकृति-चित्रण और गाने-बजाने में ख़र्च करता था। पहले उसकी बनायी हुई एक पोरट्रेट की फ़ीस पाँच पौण्ड थी फिर आठ पौण्ड हुई और ज्यों-ज्यों ख्याति बढ़ती गई फ़ीस भी बढ़ती गई। यहाँ तक कि उसे आधे क़द की तस्वीर के चालीस और पूरे क़द की तस्वीर के सौ पौण्ड मिलने लगे। अब चारों तरफ़ से दौलत बरसने लगी। उसके हाथ में तेज़ी थी और स्वभाव परिश्रमी था। अब उसको अपने शौक़ की उन चीज़ों में रुपया ख़र्च करने का मौक़ा मिला जो अब तक ग़रीबी के कारण न कर सकता था। किताबों से उसे प्रेम न था और न लेखकों से अनुराग था बल्कि शहरवाले उसकी संगत के जितने इच्छुक थे टामस उनसे उतना ही घबराता था। वह कहा करता कि मैंने प्रकृति की किताब पढ़ी है और मेरी ज़रूरतों के लिए यही काफ़ी है। हाँ, उसे संगीतज्ञों से गहरी निष्ठा थी। उनकी संगत में बैठने से उसकी आत्मा को आनंद मिलता था। वह एक अच्छे गवैये को अत्यंत सम्मानित और एक अच्छे बाजे को ज़माने की सबसे अच्छी ईजाद समझता था। तस्वीर खींचने से जो अवकाश उसे मिलता उसको वह संगीत के ज्ञान की प्राप्ति में खर्च करता था। एक जीवनीकार कहता है कि यद्यपि टामस गेन्सबरो का पेशा चित्रकारी था और संगीत फ़ुर्सत का दिल बहलाव मगर इस कला में वह जितना अभ्यास करता था उससे मालूम होता था कि वह संगीत को जीविकोपार्जन का साधन और चित्रकारी को मनोरंजन समझता है। गाने से उसे कितना प्रेम था वह इस क़िस्से से प्रकट होता है। एक मर्तबा उसने वैन्डाइक की किसी तस्वीर में एक बाँसुरी की तस्वीर देखी और उससे समझा कि बाँसुरी कोई बहुत अच्छा बाजा होगा। फिर उसे याद आया कि मैंने एक जर्मनी के प्रोफ़ेसर को बाँसुरी बजाते देखा है। उनके पास पहुँचा। प्रोफ़ेसर साहब मेज़ पर बैठे हुए भुने सेब चख रहे थे और बाँसुरी बग़ल में रक्खी हुई थी। टामस ने सलाम-बंदगी के बाद कहा—जनाबमन, मैं आपकी बाँसुरी ख़रीदने आया हूँ। दाम कहिए और यह नक़्द हाज़िर है।

प्रोफ़ेसर ने कहा—जनाबमन, मैं अपनी बाँसुरी नहीं बेचता।

टामस—दाम पर मत जाइए, जो कहिए हाज़िर है।

प्रोफ़ेसर—उसका दाम बहुत है, आपके दिये न दिया जायेगा, दस पौण्ड।

टामस—बस, ये लीजिए दस पौण्ड, इसको आप बहुत कहते थे !

यह कह कर बाँसुरी ले ली। रुपये गिने। थोड़ी दूर चला था कि फिर लौटा।

टामस—जनाब, मैं अधूरा काम करके चला जाता था। ये बाँसुरी मेरे किस काम की है जब तक आपकी किताब भी न हो।

प्रोफ़ेसर—कैसी किताब ?

टामस—अजी वही जो आपने इस बाँसुरी को बजाने के लिए बनाई है।

प्रोफ़ेसर—वह किताब मैं नहीं बेच सकता।

टामस—लाइए, लाइए, दिल्लगी न कीजिए। आप जब चाहें ऐसी किताब बना सकते हैं। लीजिए दस पौण्ड। आदाबअर्ज़।

चंद क़दम चला था कि फिर लौटा।

टामस—आपने मुझे अच्छा फाँसा, भला यह ख़ाली-ख़ूली किताब लेकर मैं क्या करूँगा ? इसे समझायेगा कौन और बाँसुरी कैसे बजेगी ? उठिए तशरीफ़ ले चलिए और मुझे सिखा दीजिए।

प्रोफ़ेसर—आप चलिए, मैं कल आऊँगा।

टामस—नहीं, आपको अभी चलना होगा।

प्रोफ़ेसर—ज़रा कपड़े तो पहन लूँ।

टामस—कपड़े पहनकर क्या कीजिएगा, आप यूँ ही हज़ारों में एक हैं।

प्रोफ़ेसर—ज़रा हजामत तो बना लूँ।

टामस—वाह ! तब तो आपका हुलिया ही बिगड़ जायेगा। क्या आप समझते हैं वैन्डाइक आपकी तस्वीर खींचता तो दाढ़ी सफ़ाचट करने देता ?

ग़रज़ कि इतनी माथा-पच्ची के बाद वह प्रोफेसर साहब को खींच-खाँच कर अपने घर ले गया। उसे इस कला से ऐसा प्रेम था कि उसका घर गाने के बीसों ही यन्त्रों से भरा रहता था और उसकी मेज़ और दस्तरख़ान पर हमेशा संगीत के प्रोफ़ेसर बैठे नज़र आते थे। वह उठते-बैठते गाने की ही चर्चा किया करता। तस्वीर बनाते वक़्त भी यही चर्चा रहती और ज्योंही फ़ुरसत मिलती एक न एक बाजे पर गाने लगता।

बाथ में एक गाड़ीवाला रहता था जिसके हाथ में सरकारी डाक का इंतज़ाम था। उससे टामस की दोस्ती हो गई। गाड़ीवाले के पास एक अच्छा घोड़ा था। टामस ने दो-तीन दिन के लिए उसे उधार माँगा ताकि उसको एक तस्वीर में लाये। गाड़ीवाला चित्रकला का आदर करता था। उसने घोड़े को साज-सामान

से दुरुस्त करके टामस के सुपुर्द कर दिया। टामस ने भी इस दरियादिली का जवाब दिया। उसने उसके घोड़े और गाड़ी की तस्वीर उतारी और उसके कुनबे को मय अपने उस गाड़ी में बिठा दिया। कहते हैं कि यह तस्वीर उसकी बेहतरीन तस्वीरों में से है।

अब गेन्सबरो की आमदनी, ख्याति और सम्मान इतना हो गया कि उसे बाथ से लंदन में आकर रहने का साहस हुआ। यहाँ वह गवर्नर फ़िलिप की नाज़-बरदारी से आज़ाद हो गया और पोरट्रेट बनाने व प्राकृतिक दृश्यों के चित्र खींचने में दिनों-दिन उन्नति करने लगा। उसका मकान बहुत लम्बा-चौड़ा और उसकी चित्रशाला बहुत सुन्दर और सुरुचिपूर्ण ढंग से सजी हुई थी। और चूँकि उसने इसके पहले बहुत-सी पोरट्रेटें बनाई थीं उसे लंदन में ज़्यादा दिनों बेकार न बैठना पड़ा। इसमें संदेह नहीं कि उन दिनों रेनाल्ड्स की तूती बोलती थी मगर शौक़ीनों की तादाद इतनी ज़्यादा थी कि वह अकेले सब की फ़रमाइशें पूरी न कर सकता था और एक ऐसे आदमी के लिए काफ़ी गुंजाइश थी जो ज़ोर, आज़ादी और स्वभाव-चित्रण में कभी-कभी वैन्डाइक से टक्कर खाता था। शाही ख़ानदान ने भी क़द्रदानी की। बादशाह, मलिका और तीन शहज़ादियों ने छोटे-छोटे पैमाने पर उससे तस्वीरें बनवाईं। इसमें शक नहीं कि अगर उसके स्वभाव में ज़रा ज़्यादा सहिष्णुता, ज़रा ज़्यादा धीरज और ज़रा ज़्यादा शिष्टाचार होता तो वह रेनाल्ड्स से भी बाज़ी ले जाता। उसके रंगों में ठहरनेवाली शोख़ी थी और जिस चीज़ पर वह पेंसिल उठाता उसमें जान और ताज़गी डाल देता था। उसकी ख्याति ने जिन शौक़ीनों को उस तक पहुँचाया उनमें डेवनशायर की बेगम भी थी। वह रूप और सौन्दर्य की दृष्टि से अपने समय की तमाम सुन्दरियों की रानी समझी जाती थी। मगर जब टामस तस्वीर लेने बैठा तो उसके सर्वजयी सौन्दर्य और उसकी मोहक बातचीत का उसके दिल पर इतना असर हुआ कि उसके हाथों से चपलता, स्वच्छन्दता और सहजता जाती रही। उसने कई बार कोशिश की, अपनी कला का सारा ज़ोर ख़र्च कर दिया मगर बेगम के सौन्दर्य की जो कसौटी उसके दिल में क़ायम हो गई थी उसे किसी तरह अदा न कर सका। आख़िर कई बार नाकाम कोशिश करने के बाद उसने यह कहकर कि यह शकल मेरी ताक़त से परे है, उसे छोड़ दिया। उसके मरने के बाद इस तस्वीर के दो-तीन मसौदे मिले जो बहुत ही ख़ूबसूरत थे।

इसी तरह एक रईस उसके यहाँ तस्वीर खिंचवाने आये। कपड़े बिल्कुल नये और भड़कीले थे। बैठने का ढंग भी ऐसा था जिससे रोब-दाब झलकता था। जब गेन्सबरो ने हाथ में पेंसिल ली तो आपने फ़रमाया, 'जनाबमन, मेरी ठुड्डी

पर एक गड्ढा है, उसे न भूल जाइयेगा।' टामस आपकी चाल-ढाल देखकर हँस रहा था। खुशामद से उसको चिढ़ थी, न ज़बान से न पेंसिल से वह किसी की खुशामद करना पसंद करता था। बोल उठा—जनाब, तशरीफ़ ले जाइये। मैं आपकी तस्वीर खींचने से बाज़ आया।

एक बार मशहूर ऐक्टर डेविड गैरिक टामस के यहाँ तस्वीर खिचवाने आया मगर जब चित्रकार ने उसके चेहरे पर निगाह डाली उसने एक नये अंदाज़ और अनोखे ढंग का चेहरा बनाया, कभी आँखें छोटी कर दीं, कभी होंठ मोटे कर दिये। आखिर गेन्सबरो इन शरारतों से घबरा गया। गैरिक खुश होते हुए लौटे और रेनाल्ड्स से अपनी इस शरारत को बड़े गर्व से बयान किया। इस मंडली में इस पर खूब क़हक़हे रहे।

लेकिन बहुत कम ऐसे लोग हैं जो किसी कला की हर विधा में कमाल रखने का दावा कर सकते हों। आकृति-चित्रण में टामस निश्चय ही अभ्यस्त था लेकिन रेनाल्ड्स उससे बढ़ा हुआ था। उसकी स्वाभाविक रुचि प्रकृति-चित्रण में थी और इस क्षेत्र में वह बेजोड़ था। नेचर को उसने बेशुमार दिलचस्प सूरतों में तस्वीर खींची और उसकी पेंसिल ने अछूती सहजता से नेचर की कोमल से कोमल भावनाओं को लिपिबद्ध किया। कभी एक बड़े पेड़ की तस्वीर, कभी बेलों से लिपटी हुई झाड़ी, कभी अपनी हँसिया तेज़ करता हुआ घसियारा, कभी सीटी बजाता हुआ हलवाहा, कभी बाँसुरी बजाता हुआ चरवाहा—प्रकृति के ये तमाम दृश्य उसने ऐसी सफ़ाई, खूबी और नज़ाकत से दिखाये हैं कि कोई दूसरा नहीं दिखा सकता।

टामस को कवियों और लेखकों से बहुत लगाव न था। तो भी प्रसिद्ध व्याख्याता एडमंड बर्क, और नाटककार शेरिडन आदि जैसे कलाप्रेमी लोगों से उसे विशेष प्रेम था। सर जार्ज बोमान्ट इस ज़माने के शौक़ीन-मिज़ाज रईस थे। अधिकांश कवि और कलाकार उनके आतिथ्य-सत्कार का लाभ उठाया करते थे। बर्क, शेरिडन गेन्सबरो के यहाँ दिलबहलाव के लिए जमा हुआ करते थे। जार्ज बोमान्ट अपने एक क़िस्से में बयान करते हैं कि 'एक बार गेन्सबरो की मैंने दावत की। बर्क वग़ैरह भी शामिल थे। उस रोज़ टामस ने सबको खूब हँसाया, खूब हाज़िरजवाबी दिखायी, ऐसी कि हम सब उसकी तीक्ष्ण बुद्धि के क़ायल हो गये और दस बजे रात तक खूब चहल-पहल रही। आखिर चलते वक़्त यह वादा हुआ कि दूसरे दिन फिर लोग जमा हों। उस दिन फिर लोग आये मगर टामस की हाज़िरजवाबी विदा हो गई थी। वह चुपचाप एक तरफ़ बैठा रहा। लोगों ने बहुत चाहा कि उसकी तबीयत को गरमायें मगर नाकाम रहे। आखिर उसने

शेरिडन का हाथ पकड़ लिया और एक ओर अकेले में ले जाकर बड़ी गंभीरता से बोला—अब मेरे मरने के दिन पास आ गये हैं। मैं देखने में जवान नज़र आता हूँ मगर मेरी मौत के दिन दूर नहीं। इसलिए मैं चाहता हूँ कि कम से कम अपने एक दोस्त को हमदर्दी के लिए अपने साथ ले चलूँ। तुम चलोगे या नहीं? साफ़ बोलो, हाँ या नहीं! शेरिडन ने हँस कर कहा, ज़रूर चलूँगा। इतना सुनते ही टामस की दिल्लगीबाज़ी फिर लौट आयी। वह फिर बुलबुल की तरह चहकने लगा और बाक़ी वक़्त नाच-गाने में कटा।'

कलाकारों में और गुणों के साथ-साथ ईर्ष्या का गुण भी आमतौर पर ज़्यादा होता है। एक व्यक्ति दूसरे की रचना को तुच्छ समझता है और अपने को उससे बड़ा साबित करने की कोशिश करता है। रेनाल्ड्स और गेन्सबरो में बराबर खटपट रहा करती थी। रेनाल्ड्स पोरट्रेट बनाता था और उस ज़माने में पोरट्रेट बनाने की जितनी क़द्र थी उतनी प्रकृति-चित्रण की नहीं हो सकती थी। इसी कारण से सब चित्रकार उससे जलते थे। गेन्सबरो खुल्लमखुल्ला उसकी बुराई किया करता था। एक बार आपसी मेल-जोल का ज़ोर यहाँ तक हुआ कि दोनों आदमी एक दूसरे की तस्वीर खींचने के लिए तैयार हो गये थे मगर फिर बिगाड़ हो गया और फिर दोनों आदमी अलग हो गये। गेन्सबरो ने मृत्यु-शय्या पर अपने प्रति-द्वन्द्वी को याद किया। रेनाल्ड्स की साफ़दिली देखिए कि उसी वक़्त हाज़िर हो गया। दोनों कलाकार गले मिले और दिलों में जो दोनों के डाह के काँटे चुभे हुए थे वह उसी वक़्त निकल गये। अनबन और अदावतें उसी वक़्त तक रहती हैं जब तक उनसे तबीयत को कोई खुशी हासिल होती है। जब दुनिया की तरफ़ से दिल बुझ जाते हैं तो स्वाभाविक रूप से दुख होता है कि हम क्यों इतने दिनों तक एक-दूसरे की बुराई और एक-दूसरे को नुकसान पहुँचाने की कोशिश करते रहे।

गेन्सबरो अपनी तस्वीरों पर दस्तखत नहीं किया करता था। उसका ख़याल था कि किसी तस्वीर का आदर इसलिए नहीं होता कि वह किसी चित्रकार की बनाई हुई है बल्कि इसलिए कि उसमें स्वयं क्या गुण हैं। उसको विश्वास था कि मेरे चित्रों में ऐसे गुण मौजूद हैं जो मेरी विशेषतायें हैं और इन विशेषताओं के कारण मेरे चित्र हमेशा सबसे अलग पहचाने जायेंगे। अपनी तस्वीरों में 'लकड़हारा और उसका कुत्ता आँधी में उसे बहुत पसंद थी। लकड़हारे की आँखों में जो आसमान की तरफ़ उठी हुई हैं कि जैसे भगवान से प्रार्थना कर रही हैं कि मुझे इस आँधी, बिजली, पानी से मुक्ति दे, एक ग्रामीण की भावना का बेजोड़ चित्र खिंच गया है। उसी तरह 'गड़रिये का लड़का और बरखा' भी

देहाती ज़िन्दगी के एक बहुत दिलचस्प पहलू की तस्वीर है। दोनों तस्वीरों के भोगनेवालों के चेहरे से ऐसी निराशा और बेबसी टपक रही है जिसे किसी तरह व्यक्त नहीं किया जा सकता। पहला चित्र नष्ट हो गया है लेकिन उसका ख़ाका अभी तक मौजूद है और ज़ाहिर करता है कि तस्वीर बहुत ऊँचे पाये की होगी। टामस उसकी क़ीमत एक सौ गिनी ख़याल करता था मगर उसकी ज़िन्दगी में ऐसा कोई क़द्रदाँ न मिला जो सौ पौण्ड भी उसके लिए दे सके। उसके मरने के बाद मिसेज़ गेन्सबरो ने वही तस्वीर पाँच सौ पौण्ड में बेची। टामस के अन्य लोकप्रिय चित्रों में 'घड़ा लिये पनिहारिन और उसका कुत्ता' है। हमारे देश में अभी तक किसी ने इन दैनंदिन घटनाओं का चित्र खींचने का प्रयत्न नहीं किया। स्वर्गीय राजा रवि वर्मा कवित्वपूर्ण और काल्पनिक विषयों की ओर झुक गये। कभी कभी अंग्रेज़ी पर्यटकों के फ़ोटो अलबत्ता दिखाई दे जाते हैं मगर फ़ोटो की तस्वीरें कभी ऐसी प्रभावोत्पादक, सुन्दर और आकर्षक नहीं हो सकतीं जैसी कि हाथ की बनाई हुई तस्वीरें।

रेनाल्ड्स की तरह गेन्सबरो भी खड़े-खड़े तस्वीर बनाया करता था और जो पेंसिलें वह इस्तेमाल करता था उनमें लंबी-लंबी नोकें लगी होती थीं जो कभी कभी दो गज़ से भी ज़्यादा लम्बी होती थीं। वह अपनी तस्वीर के नमूने यानी माडल से जितनी दूरी पर खड़ा होता था उतनी ही दूरी पर तस्वीर को भी रखता था ताकि दोनों के रंगों में निगाह के फेर से कोई गड़बड़ी न पैदा हो जाये। वह बहुत सबेरे उठता और सबेरे ही से काम में लग जाता था। बारह एक बजे तक काम करने के बाद वह अपने दिल बहलाने के कामों में लग जाता था। उसे शाम के वक़्त अपनी पत्नी के साथ बैठकर तरह-तरह के ख़ाके खींचने में बहुत मज़ा आता था। ख़ाके खींच-खींच वह मेज़ के नीचे फेंकता जाता था। उसमें से जो मन के अनुकूल हो जाते उन पर ज़्यादा ध्यान देकर उन्हें तस्वीर की सूरत में लाया करता था। गर्मी में वह देहात के हरे मैदानों और साफ़ हवा में घूमा करता था और जाड़े में जब काम करके थक जाता तो अपनी खिड़की से सर निकालकर धूप खाया करता।

इस चित्रकार में तन्मयता का कुछ विशेष गुण था। एक जीवनीकार लिखता है कि टामस को बीन बजाने का बहुत शौक़ था। एक रोज़ कर्नल हैमिल्टन नाम के एक व्यक्ति ने उसके सामने बीन बजाना शुरू किया। टामस पर इस आनन्द का ऐसा नशा छाया कि उसने कर्नल से कहा, 'गाये जाओ मैं तुम्हें 'लड़का छप्पर पर' वाली तस्वीर दूँगा जिसके ख़रीदने की तुम कई बार दरख़्वास्त कर चुके हो।' कर्नल ने ख़ूब दिल लगाकर गाया और टामस मुग्ध भाव से बैठा

सुनता रहा। खुशी के आँसू आँखों से जारी थे और सच्चा आत्मिक उल्लास चेहरे से झलक रहा था। कर्नल हैमिल्टन ने उसी वक़्त गाड़ी किराया की और उस तस्वीर को घर ले गया।

जिस दावत का सर जार्ज बोमान्ट ने ज़िक्र किया है उसे मुशकिल से एक साल गुज़रा होगा कि गेन्सबरो के नाम सचमुच मृत्यु का संदेश आ गया। वारेन हेस्टिंग्स उस ज़माने में हिन्दुस्तान से ताज़ा-ताज़ा वापिस गया था और उसकी उन ज़्यादतियों के सिलसिले में जो उसने यहाँ पर देशी रियासतों के साथ की थीं, उसकी अच्छी तरह मरम्मत की जा रही थी। एडमंड बर्क अपनी भाषण-शक्ति का अद्वितीय उदाहरण प्रस्तुत कर रहे थे। हर रोज़ हाउस ऑफ़ कॉमन्स के सामने भीड़ लगी रहती थी। गेन्सबरो भी शेरिडन के साथ बर्क का भाषण सुनने गया और एक खिड़की के सामने पीठ करके बैठ गया। थोड़ी देर के बाद यकायक उसे मालूम हुआ कि किसी ने मेरी गरदन पर बर्फ़ रख दी, फिर रगें तन गईं और दर्द होने लगा। घर आकर उसने फ़लालैन वग़ैरह बाँधा मगर कुछ फ़ायदा न हुआ। आखिर जर्राहों और डाक्टरों को दिखाया। सबने कहा, यह मामूली सर्दी है, कोई ख़तरे की बात नहीं। मगर गेन्सबरो के दिल में कोई बैठा हुआ कह रहा था कि तुम्हारा अंत निकट है। आख़िरकार अंत आ गया। दूसरी अगस्त सन् १७८८ को इकसठवें साल में उसका देहान्त हो गया। मरने के पहले उसने रेनाल्ड्स को याद किया था और दोनों आदमियों में मेल हो गया था। रेनाल्ड्स और शेरिडन लाश के साथ-साथ क़ब्र के दरवाज़े तक गये।

गेन्सबरो की मृत्यु के बाद उसकी विधवा पत्नी ने सभी तस्वीरें बेचने के लिए पेश कीं जिनमें छप्पन तस्वीरें और सौ से ज़्यादा खाके थे। बहुत उसी मौक़े पर बिक गईं। कुछ नीलाम कर दी गईं। उनमें की दो तस्वीरें वक़्त की तबाही से बचते-बचते बच रही हैं। एक का नाम 'नीला लड़का' और दूसरे का 'झोपड़े का दरवाज़ा' है। पहली तस्वीर रेनाल्ड्स की ज़िद में खींची गई थी। रेनाल्ड्स ने अपने भाषण में कहा था कि 'नीला रंग कपड़े वग़ैरह के लिए ठीक नहीं।' गेन्सबरो ने 'नीला लड़का' बना कर इस दावे का खण्डन किया। बहुत से आलोचकों का कहना है कि अंग्रेज़ी चित्रकारिता में किसी लड़के का चित्र ऐसे ऊँचे पाये का नहीं। नीले रंग का इस्तेमाल बहुत मुश्किल है और इसी लिहाज़ से टामस वैन्डाइक से बहुत मिलता था जो इस खूबी के लिए दुनिया में मशहूर है। इस लड़के के चेहरे से ऐसा प्राकृतिक सौन्दर्य प्रकट होता है और उसकी भंगिमा ऐसी सहज है कि देखनेवालों को आश्चर्य होता है। दूसरी तस्वीर

में एक खूबसूरत-सा झोंपड़ा है जिसके दरवाज़े पर एक औरत एक बच्चे को गोद में लिये बैठी है और उसके इधर-उधर कई बच्चे खेल-कूद रहे हैं। यह झोंपड़ा बहुत घने पेड़ों की छाया में बनाया गया है और पेड़ों के बीच से पानी के सोतों और हरे-भरे लहलहाते हुए मैदानों का दृश्य दिखाई देता है। उसके रंग बहुत शोख़ हैं। उसमें एक तरह का भूरा सुनहरापन पाया जाता है जो इस चित्रकार की एक विशेषता है। औरत खुद एक तन्दुरुस्त, गदरायी हुई देहाती औरत की बेहतरीन मिसाल है जिसके चेहरे का सौन्दर्य और सलोनापन उसकी आँखों की सादगी और होंठों की मुस्कराहट से और भी दुगना हो जाता है।

शक्ल-सूरत में गेन्सबरो बहुत सुन्दर कहा जाता है। उसने भी होगार्थ की तरह यूनिवर्सिटी की शिक्षा न पाई थी मगर उसके पत्र जो मिले हैं उनमें जो हास्यप्रियता और कोमलता है वह बहुत कम अंग्रेजी लेखकों की कृतियों में पाई जाती है। हाँ, इसमें शक नहीं कि वह ज़रा हँसोड़ आदमी था और इस वजह से अपने लिखने में भी वह गंभीरता नहीं बरत सकता था जो किसी दार्शनिक के लेख में होनी चाहिए। उसके इरादे बहुत मज़बूत हुआ करते थे। जिस बात से एक बार जी हट गया फिर नहीं जमता था। सन् १७७४ में उसने जब एक तस्वीर रॉयल एकेडेमी में नुमाइश के लिए भेजी तो यह ताकीद कर दी कि उसको जहाँ तक हो सके नीचे लटकाया जाय। मगर एकेडेमी में कोई शर्त उसके ख़िलाफ़ थी। लोगों ने विरोध किया। गेन्सबरो ने तस्वीर वापस ले ली और फिर कभी न भेजी।

उसके ख़ाके बहुत से हैं और कोई ऐसा नहीं जिससे उसके ज़माने का पता न चलता हो। शायद किसी चित्रकार ने भी इतने ख़ाके नहीं छोड़े। उनमें से कुछ उसकी बेहतरीन तस्वीर के मुक़ाबले के हैं। उन सबों में नफ़ासत और अनोखापन मौजूद है। एक आलोचक लिखता है कि 'लेडियों के जो ख़ाके मैंने उनके देखे वैसे और कहीं देखने में नहीं आये। इनमें बहुत से ख़ाकों के नाम मिट गये हैं मगर हाल में इसी चित्रकार के एक परपोते रिचर्ड लेन ने जो स्वयं भी उच्च कोटि के चित्रकार हैं इन स्केचों को प्रकाशित करना शुरू किया है। अब तक दो-ढाई दर्जन निकल चुके हैं और शायद यह सिलसिला बहुत दिनों तक चलेगा।'

मगर टामस गेन्सबरो केवल दृश्यों का चित्रकार न था। ऐसे चित्रकारों का नियम है कि अपने बाग़ीचों को स्वर्ग का उपवन बना देंगे। उनकी नदियाँ तूबा की नहर को शरमायेंगी। उनके मैदान, उनकी पहाड़ियाँ, उनके झरने

सभी ऐसे नज़र आयेंगे कि जैसे वह इंसान के लिए नहीं बने हैं बल्कि फ़रिश्ते और देवता उनकी सैर का मज़ा उठाते हैं। इन तस्वीरों में इंसान का काम नहीं होता, बाग़ीचे सजे रक्खे हुए हैं मगर सजानेवाले आँखों से ओझल हैं। झरनों से पानी बड़ी खूबसूरती से गिर रहा है मगर इस दृश्य का मज़ा उठाने वाला कोई तस्वीर में नहीं है। इसके विपरीत गेन्सबरो जब किसी दृश्य का चित्र उतारता है तो उसमें आदमी का पार्ट बड़ी खूबी से दिखाता है। उसके बाग़ीचे फ़रिश्तों से बसने के लिए नहीं बल्कि इंसान की सैर और तफ़रीह के लिए बने हुए होते हैं और उसमें इंसान चलते-फिरते नज़र आते हैं। उसकी नदियाँ, उसके झरने, सभी मौक़ों पर हज़रत इंसान मौजूद नज़र आते हैं। वह किसी ख़ास उसूल या किसी ख़ास स्कूल का पाबंद न था। वह फ्लोरेन्स या वेनिस या डेनमार्क का अनुकरण करनेवाला न था। वह वैन्डाइक या टिशियन या रफ़ायल का अनुकरण करनेवाला न था। वह इंगलिस्तान में पैदा हुआ था और वहीं अपनी कला की उपलब्धि की। इसीलिए उसके दृश्य सब अंग्रेज़ी दृश्य हैं। उसके स्त्री-पुरुष सब अंग्रेज़ हैं। उसकी नदियाँ, झोंपड़े सब अंग्रेज़ी हैं। वह रेनाल्ड्स की तरह उस्तादों से अपनी तस्वीरों के नमूने नहीं लेता था और न विल्सन की तरह स्विटज़रलैण्ड और इटली की सीनरी खींचता है। किसी स्कूल, किसी पद्धति और किसी शैली से वह परिचित नहीं। उसने प्रकृति की पाठशाला में शिक्षा पाई और इसी शिक्षा के बल पर दुनिया के पन्ने पर अपनी मुहर लगा गया।

कभी-कभी तस्वीरें जल्दबाज़ी या कम ध्यान देने के कारण ख़राब हो गई हैं। जैसा आमतौर पर बहुत मेधावी लोगों का नियम है कि वह किसी एक बात पर तबियत को बहुत देर तक नहीं लगा सकते, उसी तरह गेन्सबरो भी एक तस्वीर को बनाते-बनाते जब घबरा जाता था तो उसे जल्दी-जल्दी ख़त्म कर देता और फिर पलटकर उस पर नज़र न डालता। दिमाग़ में ख़यालात बिजली की दमक की तरह आते हैं। यकायक कोई ताज़ा, तस्वीर के क़ाबिल ख़याल आया और फ़ौरन पेंसिल से उसका ख़ाका खींच लिया। अब जब तक इस ख़ाके को तस्वीर की सूरत में लाये, उस पर रंग भरे और उसमें बहुत सी ऐसी-ऐसी छोटी-मोटी खूबियाँ पैदा करे जो अभ्यास और चिन्तन से पैदा होती हैं, तब तक ख़याल की वह ताज़गी बिदा हो गई। इसलिए वह बड़ी तेज़ी से काम किया करता था ताकि जहाँ तक जल्द मुमकिन हो ख़याल अदा हो जाये। इस जल्दबाज़ी के कारण उसको कुछ बड़ी अनमोल तस्वीरें ख़राब हो गई हैं। रेनाल्ड्स अपने समकालीनों के दोष और गुण पर कभी ज़बान नहीं खोला

करते थे मगर जब गेन्सबरो के देहान्त ने उसको समकालीनों की सूची से अलग कर दिया तो कभी-कभी उसकी कला की प्रशंसा करने लगे। कहते हैं, 'गेन्सबरो की तस्वीरों को जब नज़दीक से जाकर खूब ग़ौर से देखिए तो बेशुमार छोटे-छोटे निशान और लकीरें नज़र आती हैं जो बारीकियाँ समझनेवाले चित्रकारों की दृष्टि में भी उस समय ऐसी मालूम होती है कि जैसे संयोग से रह गई हैं और उनसे चित्रकार का कोई विशेष अभिप्राय नहीं है, लेकिन जब कुछ फ़ासले पर चले जाइए तो यही लकीरें, यही बेजोड़ अनावश्यक निशान जैसे जादू के ज़ोर से आकार ग्रहण करने लगते हैं और जो काम उनके सुपुर्द किया गया है उसे पूरा करने लगते हैं। इसलिए मजबूरन यह कहना पड़ता है कि गेन्सबरो में जल्दबाज़ी और लापरवाही के परदे में मेहनत छिपी हुई है। गेन्सबरो खुद अपनी तस्वीरों की इस खूबी को जानता था जो उसकी इस ताकीद से पता चलता है कि प्रदर्शनी में हमेशा मेरी तस्वीरें पहले नज़दीक और तब ज़रा फ़ासले से देखी जाया करें।'

गेन्सबरो के दृश्यों में छोटे-छोटे हँसते-खेलते बच्चों का इधर-उधर आज़ादी से दौड़ना बहुत प्यारा मालूम होता है, ख़ास तौर पर जब रेनाल्ड्स के बच्चों से उनकी तुलना करके देखिए। इसमे संदेह नहीं कि शहरों के बच्चे भी बड़ी प्यारी चीज़ें हैं, बड़े सहज, स्वच्छन्द और सुन्दर लेकिन ऐसा मालूम होता है कि वह मखमली गद्दों पर सोने और सुनहरे चमचों से खिलाये जाने के आदी हैं। गेन्सबरो के बच्चों में एक प्रकार का ग्रामीण सौन्दर्य, एक स्वच्छन्द बाँकपन, एक स्वस्थ अबोधता पाई जाती है जिससे उनके देहाती और अक्खड़ होने का पता चलता है। वह प्रकृति के बच्चे मालूम होते हैं जो प्रकृति के उपवन में आज़ादी से हँसी-खुशी दौड़ रहे हैं। उनको इस बात की परवाह नहीं कि मेरे साटन के कोट ख़राब हो जायेंगे या मेरे नरम नरम जूते भीग जायेंगे। वह हरी-हरी घास पर लोटते, ख़रगोशों की तरह झाड़ियों में फुदकते और नालों और चश्मों में मछलियों की तरह तैरते फिरते हैं।

—ज़माना, सितम्बर १६०७

समीक्षाएँ

विक्रमोर्वशी

उर्दू भाषा का स्रोत यद्यपि फ़ारसी और संस्कृत दोनों ही हैं मगर उर्दू के शायर शुरू ही से फ़ारसी कविता के अनुकरण में इतना ज़्यादा लगे रहे हैं कि शायद रामायण और दो एक और धार्मिक पुस्तकों को छोड़ कर दूसरी किसी महान् संस्कृत पुस्तक ने उर्दू ज़बान का जामा नहीं पहना। अर्सा हुआ कि हिन्दी भाषा ने, जिसका अल्प सामर्थ्य एक पक्की बात है, कालिदास और भवभूति की अधिकांश कृतियों से अपना भंडार भर लिया। उर्दू ज़बान में 'शकुन्तला' के एक टूटे-फूटे तर्जुमे को छोड़कर अभी तक इनमें से किसी एक का भी तर्जुमा नहीं हुआ। खुशी की बात है कि उर्दू के मशहूर क़लम के जादूगर मौलवी मुहम्मद अज़ीज़ मिर्ज़ा साहब ने अब इस तरफ़ ध्यान दिया है और कालिदास के प्रसिद्ध नाटक 'विक्रमोर्वशी' का तर्जुमा उर्दू पब्लिक के सामने पेश किया है। मिर्ज़ा साहब सिद्ध-हस्त लेखक हैं और आपका नाम उर्दू दुनिया में बहुत मशहूर है। इस अनुवाद का महत्व इस कारण से और भी बढ़ गया है कि एक मुसलमान लेखक की क़लम से वह निकला। अगर किसी हिन्दू ने यह काम किया होता तो शायद इसके हिन्दूपन की वजह से यह किताब मुसलमानों में इतनी लोकप्रिय न हो सकती जिसका उसे हक़ है।

मौलवी साहब ने असल तर्जुमे से पहले एक लम्बी-चौड़ी भूमिका लिखी है जिसकी गहरी छान-बीन तारीफ़ के क़ाबिल है। उसको ध्यानपूर्वक देखने से स्पष्ट हो जाता है कि प्राचीन काल में हिन्दुस्तान में नाट्य-कला की रुचि कितनी समुन्नत थी। नाटक के सिद्धान्तों, प्रकारों, विषयों, विषयों के प्रकार, वर्णन शैली, नायकों के प्रकार आदि सूक्ष्म बातों पर जो जो बाल की खाल प्राचीन काल के हिन्दुओं ने निकाली है उससे उनकी सर्वतोमुखी रुचि और बौद्धिक वैभव का पता चलता है। इसमें तनिक भी संदेह नहीं किया जा सकता कि उन्होंने नाट्य-लेखन को एक विज्ञान बना दिया था।

मगर यह अभियोग कुछ मुसलमानों ही के सर नहीं है कि उन्होंने हिन्दी ज्ञान-विज्ञान और साहित्य से लाभ नहीं उठाया। हिन्दुओं पर भी यही इल्ज़ाम

अनुवादक—मौलवी अज़ीज मिर्ज़ा साहब बी० ए० होम सेक्रेटरी हुज़ूर निज़ाम।

पूरी तरह लागू होता है। मुसलमानों के ज़माने में तो ख़ैर संस्कृत की धार्मिक और कुछ साहित्यिक पुस्तकों के अनुवाद हुए भी मगर हिन्दुओं ने तो शायद फ़ारसी और अरबी साहित्य की किसी एक कृति को भी भाषा या संस्कृत का जामा नहीं पहनाया। 'गुलिस्ताँ' जैसी सर्वप्रिय पुस्तक का अनुवाद भी हिन्दी भाषा में कुछ महीने पहले तक मौजूद न था। इसमें शक नहीं कि हिन्दुओं ने फ़ारसी में अपनी शायरी की यादगारें छोड़ी हैं। टेकचंद, माधोराम, क़तील सब अमर नाम हैं मगर इनमें से किसी ने भी यह कोशिश न की कि फ़ारसी किताबों को हिन्दी या संस्कृत का आभूषण पहनाते। उन्होंने प्रचलित ढंग का अनुकरण किया और इसी से संतुष्ट रहे। इस तरह दोनों क़ौमें सदियों से एक जगह रहने-सहने के बावजूद भी एक-दूसरे के ज्ञान-विज्ञान और साहित्य से अपरिचित हैं। और हालाँकि यह बेगानापन पूरे तौर पर दोनों जातियों के आपसी विरोध के लिए ज़िम्मेदार नहीं कहा जा सकता तो भी इस इल्ज़ाम से वह बरी नहीं है। लेखक महोदय ने भूमिका में कहा है—

'इस काम की ज़रूरत मुझे इस वजह से और भी महसूस हुई कि मौजूदा ज़माने में मुल्क की बदनसीबी से हिन्दुस्तान की बड़ी क़ौमों, हिन्दू-मुसलमानों में सख़्त विरोध पैदा होता जाता है और मेरे ख़याल में अगर कोई तदबीर इस आपस के विरोध को रोकने या उसकी जगह हमदर्दी पैदा करने की है तो वह यही है कि एक-दूसरे के लिट्रेचर से लाभान्वित हों। इसका मौक़ा, जो फ़ारसी लिटरेचर के दोनों क़ौमों की दिमाग़ी और दुनियावी तरक़्क़ी के लिए लाज़मी होने की वजह से था, बाक़ी नहीं रहा।'

हिन्दू और मुसलमानों की एकता और समझौते का सवाल ऐसा महत्वपूर्ण और पेचीदा है कि इसकी प्रेरणा जिस किसी तरफ़ से हो वह सच्चा क़ौमी हमदर्द कहे जाने का हक़दार है और उसकी कोशिश मुबारकबाद के क़ाबिल है।

कालिदास के जीवन पर ऐसा पर्दा पड़ा हुआ है कि उसके बारे में इसके सिवा और कुछ मालूम नहीं है कि वह राजा विक्रमादित्य के नौरतन का एक अनमोल हीरा था। यहाँ तक कि कभी-कभी छान-बीन करनेवालों को शेक्सपियर की तरह उसके अस्तित्व पर भी संदेह होता है। बाद के संस्कृत कवियों में उसके काव्य का जो ऊँचा स्थान है और उसको जो प्रतिष्ठा और लोकप्रियता प्राप्त है वह भवभूति को छोड़कर, जो उसके एक शताब्दी बाद पैदा हुआ, और किसी संस्कृत कवि को प्राप्त नहीं। उसके काव्य की महत्ता के संबंध में लेखक महोदय कहते हैं—

'योरप और हिन्दुस्तान के बड़े-बड़े काव्य-मर्मज्ञ एकमत हैं कि कालिदास जन्म

से ही चितेरे की दृष्टि, कवि का मन और नक़्क़ाशी करनेवाले का हाथ लेकर आया था। उसकी व्यापक दृष्टि न केवल मानव-प्रकृति के पेचीदा रहस्यों बल्कि प्रकृति के तमाम दिल लुभानेवाले करिश्मों या चकित कर देनेवाली घटनाओं की तह तक पहुँच गई थी और वह जो कुछ देखता था उसकी प्रबल स्मरण-शक्ति उसको बिना काटकसर किये अपनी कल्पना के भंडार में जमा कर लेती थी।'

जर्मन के सबसे बड़े कवि गेटे ने 'शकुन्तला' की इन शब्दों में प्रशंसा की है जिनसे एक कवि की काव्य-मर्मज्ञता का पता चलता है—

'नये साल की कलियाँ और बीते हुए साल के मेवे और वह सब चीज़ें जो आत्मा के लिए भोजन या कंठ और जिह्वा के लिए स्वादिष्ट हैं या जो उसको लुभा सकती हैं या विभोर कर सकती हैं, ग़रज़ जो कुछ धरती और आकाश में अच्छा और सुन्दर है वह सब तूने एक नाम में जमा कर दिया है। ओ शकुन्तला, तेरा नाम ज़बान पर आया और वो सब नेमतें गोया कि मिल गईं।'

कोमल भावनाओं की अभिव्यक्ति और प्रकृति के चित्रण में उसको जो अधिकार प्राप्त है उसकी बदौलत संसार के समस्त कवियों में उसे एक ऊँचा स्थान मिला है।

'विक्रमोर्वशी' कालिदास के तीन प्रसिद्ध नाटकों में से है और यद्यपि उसमें 'शकुन्तला' का सा आकर्षण नहीं है मगर रंगीनी और वर्णन की सहजता और कोमल भावनाओं की चाशनी की दृष्टि से, जो कालिदास के साहित्य की विशेषतायें हैं, वह और नाटकों के समकक्ष है। शेक्सपियर की तरह कालिदास भी अपने ड्रामों के लिए नये प्लाट नहीं गढ़ता बल्कि पुरानी घटनाओं पर रंग-रोग़न चढ़ाकर एक आकर्षक रूप में प्रस्तुत करता है। 'शकुन्तला' और 'विक्रमोर्वशी' दोनों पुराने क़िस्से हैं, हाँ 'मालविकाग्निमित्र' एक ऐतिहासिक कहानी है।

मुसलमानों ने क्यों हिन्दू नाटक से फ़ायदा नहीं उठाया, इस प्रश्न पर विद्वान् अनुवादक ने कुछ न्यायपूर्ण बातें कही हैं। आपका ख़याल है कि मुसलमान अपने क़ौमी इल्म और अदब पर इतना नाज़ करते थे कि किसी दूसरी क़ौम के साहित्य या अदब से फायदा उठाना अपनी शान के ख़िलाफ़ समझते रहे जिसका अफ़सोसनाक नतीजा यह है कि उर्दू साहित्य का विकास कृत्रिमता पर जाकर समाप्त हो गया। काश उर्दू शायरी की बुनियाद भाषा या संस्कृति पर क़ायम की गई होती तो, आज दूसरा ही समाँ नज़र आता और बयान के ज़ोर और प्रकृति के चित्रण की स्थिति ही कुछ और हो जाती और वह चीज़ जिसको अब हमारी आँखें बेफ़ायदा उर्दू शायरी में ढूँढ़ती हैं और जो हर क़ौम की शायरी की जान है उसका पता सिर्फ़ उसके न होने से न चलता।' लिहाज़ा अब ज़रूरत है कि उर्दू शायरी की

रगों में नया खून दौड़ाया जाय। इस भूमिका में सिर्फ़ एक छोटी सी बात है जिस पर हम अनुवादक महोदय से सहमत नहीं हो सकते। आप कहते हैं कि नाटक की उद्भावना सबसे पहले यूनान वालों ने प्रस्तुत की और इस मामले में जर्मनी के पंडितों को आप प्रमाण मानते हैं जिनका आमतौर पर यह तरीक़ा है कि वे हर तरह की रौशनी और तहज़ीब को योरप ही से जोड़ें या अगर कभी न्याय-प्रियता की भावना में आकर हिन्दुस्तान के ज्ञान-विज्ञान और कला की प्रशंसा भी करें तो एक ऊँचे आसन पर बैठकर, संरक्षक के से स्वर में, जिसमें सच्चाई की बहुत कम गंध आती है। कहते हैं कि हिन्दुओं ने काव्य के दो प्रकार बतलाये थे—एक 'दृश्य' जो देखा जा सके और दूसरा 'श्रव्य' जो सुना जा सके। चूँकि नाटक पहले प्रकार का काव्य है इससे यह ख़याल किया जा सकता है कि जिन लोगों ने यह दो प्रकार बतलाये वे नाटक की कला से अपरिचित न थे। किसी भी वर्गीकरण के लिए आवश्यक है कि उन वर्गीकृत चीज़ों का अस्तित्व हो। जब तक हमारे सामने सभी तरह के रंग मौजूद न हों, हम उनकी अलग-अलग क़िस्मों को एक-दूसरे से अलग नहीं कर सकते और हिन्दुओं का यह विभाजन उतना ही पुराना है जितनी कि हिन्दू कविता। लिहाज़ा यह मानना पड़ेगा कि हिन्दुओं ने नाटक की उद्भावना यूनानियों से नहीं ली। यह बेशक समझ में आने वाली बात है कि संस्कृत के आचार्यों ने श्रव्य प्रकार पर अधिक बल दिया और इसी में साहित्य-रचना करते रहे, दृश्य की ओर अपेक्षाकृत कम ध्यान दिया। इसकी मिसाल उर्दू शायरी से मिल सकती है कि बावजूद दो सौ वर्षों से ज़्यादा की मश्क़ के अभी एक भी ऐसा ड्रामा नहीं निकला जिसे अमर जीवन का अधिकार प्राप्त हो। यह बात भी ध्यान में रखनी चाहिए कि नाटक का जो अर्थ आज-कल है वह हिन्दुओं के यहाँ नहीं था और न सिर्फ़ हिन्दुओं के यहाँ बल्कि इंगलिस्तान में भी शेक्सपियर के वक़्त तक ड्रामों ने मौजूदा ढंग अख्तियार न किया था। न जादू करनेवाले परदे होते थे न आश्चर्यजनक दृश्य। लोग कोमल भावनाओं और ललित भाषा से आनंद उठाने के लिए जाया करते थे।

जहाँ तक अनुवाद का संबंध है, पुस्तक प्रायः निर्दोष है। कहीं-कहीं संस्कृत उपमायें उर्दू लिबास में भोंडी नज़र आती हैं जिसका कारण शायद यह है कि हमारी रुचियाँ बिगड़ी हुई हैं। ड्रामे के लिए केवल कविता की कल्पनाओं की आवश्यकता नहीं है बल्कि कविता के परिधान की भी आवश्यकता है और पद्य जब गद्य का रूप ले लेता है तो उसकी आकर्षकता में बहुत अंतर आ जाता है। क्या उर्दू के बड़े-बड़े कवि जो गुलो-बुलबुल और ग़मज़ा-ओ-अदा और शिकवे-शिकायात में अपनी जान खपाया करते हैं इस तरफ़ ध्यान न देंगे। हज़रत सुरूर,

तालिब बनारसी, पं० बृज नरायन चकबस्त, हज़रत कैफ़ी और हज़रत नज़र अगर इस काम में हाथ लगायें तो अपनी अमर कीर्ति का शिलान्यास कर सकते हैं। लिखाई-छपाई इस किताब की ख़ासी है और जिल्द बहुत ख़ूबसूरत और मज़बूत। कीमत डेढ़ रुपया। दफ्तर ज़माना कानपूर से मिल सकती है।

विदुर नीति

प्राचीन काल के हिन्दू नीति-आचार्यों में विदुर जी महराज को जो ऊँचा स्थान प्राप्त है उससे बहुत कम लोग परिचित हैं। संस्कृत में शंकर, चाणक्य और विदुर की नीति-शिक्षा बहुत ऊँचा स्थान रखती है। विदुर महाराज धृतराष्ट्र और पाण्डु के भाई थे मगर दोनों ओर से कुलीन न होने के कारण धन-संपदा से वंचित कर दिये गये थे। उनका जीवन बहुत सरल था मगर इसके साथ ही विचार बहुत ऊँचे थे। उनकी सरलता का यह हाल था कि श्री कृष्ण जी महराज जैसे महान् व्यक्ति की दावत की तो मामूली साग से अधिक स्वादिष्ट कोई चीज़ न पेश कर सके। विदुर का साग आज तक मशहूर है मगर बावजूद इस सादगी के निर्भीक स्वतंत्रता-प्रेमी ऐसे थे कि जब उनसे कभी किसी बात में परामर्श लिया जाता था तो बड़े निर्भीक ढंग से अपनी राय देते थे। उनकी अच्छी सीखें संस्कृत साहित्य में हमेशा से बहुत ऊँचा स्थान पाती रही हैं। जब कौरवों और पाण्डवों में समझौते से काम न निकलने के कारण झगड़े पैदा हुए तो धृतराष्ट्र जो अपने भाई विदुर के पास सलाह लेने गये। विदुर जी ने उस वक़्त उन्हें जो सलाह दी है उसका एक-एक अक्षर सोने के पानी से लिखे जाने योग्य है। खेद है कि अब तक उर्दू की दुनिया इस अनमोल मोती, ज्ञान और बुद्धि की इस खान के अस्तित्व से बिल्कुल अपरिचित थी। हाल में हैदराबाद के श्रीयुत मानिकराव विट्ठल राव ने इसका अनुवाद प्रकाशित किया है। यह सज्जन पहले भी कई लाभप्रद पुस्तकें लिख चुके हैं और यह अनुवाद कुल मिलाकर बुरा नहीं। हम पाठकों के मनोरंजन और लाभ के लिए उसमें से कुछ उद्धरण प्रस्तुत करते हैं। इन्हें पढ़कर यह अनुमान किया जा सकेगा कि सांसारिक प्रश्नों पर अच्छी राय क़ायम करने के लिए इस बात की ज़रा भी ज़रूरत नहीं कि आदमी दुनिया का गुलाम होकर रहे। पहले ही उद्धरण में विद्वान के जो गुण बतलाये गये हैं उनसे यह साफ़ ज़ाहिर होता है कि हमारी बड़प्पन की कसौटी कितनी गिर गई है। आज हम उस व्यक्ति को विद्वान कहने में ज़रा भी नहीं झिझकते जो दो चार भाषाओं से परिचित हो, जो अपने विचारों को सुथरे ढंग से व्यक्त कर सके और जो आवश्यकतानुसार क़ायदे

अनुवादक—श्री मानिक राव विट्ठल राव हैदराबादी

से बहस-मुबाहसा कर सके। हम यह अक्सर सुनते हैं कि अमुक सज्जन यद्यपि ज़रा शराब पीते हैं मगर इसमें शक नहीं कि अपने समय के बड़े विद्वान् हैं। ग़रज़ यह कि इंसान में सैकड़ों ऐब हों मगर सिर्फ़ उसके बौद्धिक वैभव के आधार पर उसे विद्वान् कहने में ज़रा भी आगा-पीछा नहीं किया जाता। देखिए विदुर जी क्या कहते हैं—

'विद्वान् उसी को कह सकते हैं जो संसार के व्यापार में लिप्त रहने पर भी ऐन्द्रिक इच्छाओं और धन-सम्पदा से ऊँचा स्थान सदाचार को देता हो। जो व्यक्ति अपना अनमोल समय व्यर्थ नहीं गंवाता और विचारों पर जिसको अधिकार होता है उसे विद्वान कहते हैं। पंडित और बुद्धिमान वही है जो संसार की आपद-विपद से ऐसा ही निश्चिन्त रहे जैसे नदी अपने मे कंकड़-पत्थर फेंके जाने से रहती है।'

कुछ और सीखें सुन लीजिए—

१—मनुष्य के शरीर से खून निकालने के लिए दो नश्तर हैं जिनमें से पहला नश्तर तो कंगाल को अकूत सम्पत्ति की लालसा है और दूसरा है कमज़ोरी के बावजूद दूसरों पर गुस्सा करना।

२—निम्नलिखित दो व्यक्तियों को कमर में पत्थर बाँधकर नदी में डुबो देना चाहिए—एक तो ऐसे धनवान को जो अपने धन में अधिकारी व्यक्तियों को सम्मिलित न करे और दूसरे ऐसे कंगाल को जो ग़रीबी के बावजूद परमेश्वर की उपासना न करे।

३—दो आदमी ऐसे आफ़त के परकाले होते हैं कि सूरज के लम्बे-चौड़े घेरे को भी चीर-फाड़ कर ऊपर दाखिल हो सकते हैं—पहला तो प्राणायाम करनेवाला संन्यासी है और दूसरा लड़ाई के मैदान में बहादुरी के साथ दुश्मन का मुक़ाबला करके शहीद हो जानेवाला वीर।

४—प्रतापी राजाओं के लिए अगले लोग कह गये हैं कि उन्हें कायर, सहानुभूतिशून्य और खुशामदी लोगों से परामर्श न करना चाहिए।

५—भाई, अगर तू खुशहाली से ज़िन्दगी बसर करना चाहता है तो इन चारों बातों पर अमल कर—खानदान के बड़े-बूढ़ों, मुसीबत के मारे शरीफ़ आदमी, ग़रीब दोस्त और निस्संतान बहन को अपने घर में जगह दे, उनकी इज़्ज़त कर और उनका ध्यान रख। खानदान के बड़े-बूढ़ों से न सिर्फ़ तेरा भरम बना रहेगा बल्कि तुझे बीते हुए ज़माने की बातें भी मालूम हो सकेंगी। शरीफ़ मुसीबत का मारा क्यों न हो लेकिन उसके अच्छे गुणों का प्रभाव तेरे बच्चों पर पड़ेगा। दोस्त हमेशा तेरी भलाई चाहेगा और उससे अच्छी सलाह देनेवाला तुझे न

मिलेगा। बहन गृहस्थी के प्रबंध में तुझको जो मदद दे सकेगी वह दूसरे से मुमकिन नहीं।

६—मनुष्य में जो पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ हैं अगर उनमें से एक पर भी तेरा अधिकार न रहा तो रोजनदार चर्मी डाल से बह कर निकल जानेवाले पानी की तरह आदमी के दिमाग़ से तमाम खूबियाँ ग़ायब हो जाती हैं।

७—छः व्यक्ति अपने कृपालुओं की कृपा को महत्व नहीं देते और उसकी परवाह नहीं करते—पढ़कर निकल जानेवाला शिष्य अपने गुरु की, विवाहित पुत्र अपनी माँ की, जिसने अपनी वासना पूरी कर ली है ऐसा आदमी औरत की, ग़रज़मंद ऐसे आदमी की जिससे ग़रज़ पूरी हो गई, तूफान से बचा हुआ आदमी किश्ती की, स्वस्थ होने के बाद रोगी वैद्य की।

८—जिस तरह शहद की मक्खी फूल को बनाये रखकर उसमें से सिर्फ़ शहद ले लिया करती है उसी तरह राजा को चाहिए कि प्रजा की स्थिति बनाये रखकर उससे क़र वसूल करे।

९—सदाचार से सद्‌गुणों की, अध्ययन से ज्ञान की, अच्छे आचरण से सौन्दर्य की, नेक आचरण से परिवार की, नाप-तोल से ग़ल्ले की, फेरने से घोड़े की, देख-भाल से जानवरों की और सादे कपड़ों से स्त्री के सतीत्व की रक्षा होती है।

हम पाठकों से विनती करते हैं कि यह पुस्तक पढ़ें। इसे वे धार्मिक, सांसारिक, राष्ट्रीय अर्थात् सभी बातों में अपना सच्चा मार्ग-दर्शक पायेंगे। मैनेजर ज़माना के पास से मिल सकती है।

—ज़माना, फरवरी १९०८

संयुक्त प्रान्त में आरम्भिक शिक्षा

दिसम्बर के मॉडर्न रिव्यू में सेंट निहाल सिंह ने एक अनूठा लेख लिखा है जिसमें अमरीका के एक देहात की कैफ़ियत बयान की है। उसे पढ़कर हैरत भी होती है, और मायूसी भी। हैरत इसलिए कि तहज़ीब की जो आसानियाँ और जो सुविधाएँ इस गाँव में हैं, वह हिन्दोस्तान के बड़े-बड़े शहरों को भी नसीब नहीं। और मायूसी इसलिए कि शायद हिन्दोस्तान की क़िस्मत में तरक़्क़ी करना लिखा ही नहीं। दो हज़ार आदमी का मौज़ा और हाई स्कूल ! उसकी इमारत, उसके पुस्तकालय, उसकी लेबोरेटरी पर हिन्दोस्तान का कोई कालेज गर्व कर सकता है। क्या हिन्दोस्तान के कभी ऐसे नसीब होंगे !

अब एक तरफ़ तो इस देहाती मदरसे को देखिए और दूसरी तरफ़ एक हिन्दोस्तानी देहाती मदरसे का ख़याल कीजिए। एक पेड़ के नीचे, जिसके इधर-उधर कूड़ा-करकट पड़ा हुआ है और जहाँ शायद वर्षों से झाड़ नहीं दी गयी, एक फटे-पुराने टाट पर बीस-पच्चीस लड़के बैठे ऊँघ रहे हैं। सामने एक टूटी हुई कुर्सी और पुरानी मेज़ है। उस पर जनाब मास्टर साहब बैठे हुए हैं। लड़के झूम झूमकर पहाड़े रट रहे हैं। शायद किसी के बदन पर साबित कुर्त्ता न होगा। धोती जाँघ के ऊपर तक बंधी हुई, टोपी मैली-कुचैली, शक्लें भूखी, चेहरे बुझे हुए ! यह आर्यावर्त का मदरसा है जहाँ किसी ज़माने में तक्षशिला और नालन्दा के विद्यापीठ थे। कितना फ़र्क़ है। हम तहज़ीब की दौड़ में दूसरी क़ौमों से कितना पीछे हैं, कि शायद वहाँ तक पहुँचने का हौसला भी नहीं कर सकते।

हमारी आरम्भिक शिक्षा के सुधार और उन्नति के लिए सबसे बड़ी ज़रूरत योग्य शिक्षकों की है। और योग्य आदमी आठ रुपये या नौ रुपये माहवार के वेतन पर दुनिया के पर्दे में कहीं नहीं मिल सकते। जिस आदमी को पेट की फ़िक्र से आज़ादी ही नसीब न होगी वह तालीम की तरफ़ क्या ख़ाक ध्यान देगा? ऐसे बहुत से ज़िले हैं जहाँ अभी तक मुदर्रिसों को चार और पाँच रुपये से ज़्यादा तनख़्वाह नहीं मिलती। ऐसे आदमियों के हाथों में हमारी सरकार ने रिआया की तालीम रख दी है और ताज्जुब किया जाता है कि तालीमी हालत क्यों ऐसी रद्दी है। जब सरकारी मदरसों का यह हाल है तो इमदादी मदरसों का ज़िक्र

ही क्या ! उनमें कम से कम तीन चौथाई ऐसे हैं, जिन्हें सरकार चार रुपये माहवार इमदाद देती है और उसमें एक आना मनीआर्डर का महसूल कट जाता है, तीन रुपये पन्द्रह आने में कौन महीना भर दर्दसरी गवारा करेगा। शहरों में कहारों की तनख़्वाहें छः और सात रुपये माहवार हैं बल्कि अक्सर तो इससे भी ज़्यादा। मामूली मज़दूर चार आने पैसे रोज़ कमा लेता है। मगर ग़रीब मुदर्रिस इनसे भी ज़लील समझा जाता है। मजबूरन या तो वह ग़रीब खेती की तरफ़ चला जाता है या सरकारी क़ायदे के ख़िलाफ़ पाव आने की जगह एक आना या इससे ज़्यादा फीस लेना शुरू करता है। इसका नतीजा यह है कि लड़कों की तादाद में बढ़ती नहीं होने पाती। बहुत से इमदादी मदरसे तो सिर्फ़ इसलिए क़ायम हैं कि एक ग़रीब आदमी तीन-चार रुपये घर बैठे पा जाता है। फ़र्ज़ी लड़कों के नाम लिख लिये जाते हैं और जब कोई मुआइना करने वाला अफ़सर पहुँच जाता है, तो थोड़े से लड़के इधर-उधर से बटोर कर दिखा दिये जाते हैं।

वेतन का तो यह हाल है। अब यह देखिए कि एक मुदर्रिस के सर काम का कितना बोझ लादा जाता है। आम तौर पर लोअर प्राइमरी में एक मुदर्रिस रहता है और प्राइमरी मदरसे में दो या तीन। ग़ौर कीजिए कि एक मुदर्रिस चार दर्जों की तालीम क्योंकर दे सकता है। मदरसों के एक इंसपेक्टर साहब बहुत सही तौर पर पूछते हैं कि एक आदमी दर्जा अलिफ़ के पैंतीस, दर्जा बे के पन्द्रह, दर्जा अव्वल के सात, दर्जा दोयम के पाँच लड़कों की पढ़ाई की देखभाल क्योंकर कर सकता है। अपर प्राइमरी मदरसों में दो-दो, तीन-तीन दर्जे एक-एक आदमी के सिपुर्द रहते हैं। इसका लाज़मी नतीजा यह होता है कि मुदर्रिस किसी दर्जे को भी ठीक से नहीं पढ़ा सकता। लड़के साल-साल भर से पढ़ने आते हैं मगर अभी हरूफ़ लिखना भी नहीं आया। माँ-बाप देखते हैं कि जब उसका मदरसे जाना न जाना बराबर है तो घर ही पर क्यों न रहे, ताकि कुछ घर का काम-काज ही सम्हाले। नार्मल स्कूलों से जो लोग पढ़ाने का तरीक़ा सीखकर आते हैं, वह भी मदरसों में आकर अपना सब तरीक़ा भूल जाते हैं। बेचारे क्या करें, वहाँ उन्हें एक वक़्त एक दर्जे की तालीम का सबक़ दिया गया। यहाँ उन्हें एक वक़्त में चार दर्जे पढ़ाने को मिले। उन उसूलों पर क्योंकर अमल करें। एक दर्जे के पढ़ाने में लगे तो दूसरे दर्जे को हिसाब दे दिया, किसी दर्जे को इमला, किसी दर्जे को भूगोल। आँख तो एक ही है कैसे इमले को सुधारे, कैसे हिसाब समझाये, कैसे ठीक ढंग से भूगोल की शिक्षा दे, ग़रज़ यह कि हड़बोंग सा मचने लगता है। लड़के शैतान, मुदर्रिस को मशग़ूल देखा तो धौल-धप्पा शुरू किया।

इसलिए सरकार अगर सचमुच शिक्षा की उन्नति चाहती है, सच्ची उन्नति,

काग़ज़ी और नुमाइशी नहीं, तो मिस्टर डिलाफ़ास की राय के अनुसार मुदर्रिसों की तादाद और तनख्वाह बढ़ाये। किसी मुदर्रिस की तनख्वाह पन्द्रह रुपये से कम न रहनी चाहिए, और कोई मुदर्रिस नौकर न रखा जाना चाहिए जिसने उर्दू और हिन्दी मिडिल की सनद न हासिल की हो और पढ़ाने के ढंग का जानकार न हो। और कोई मदरसा ऐसा न रहना चाहिए जिसमें कम से कम दो मुदर्रिस न हों। तभी तालीम की हालत सुधर सकती है। इसमें कोई शक नहीं कि इन सब तरक़्क़ियों के लिए बहुत रकम की ज़रूरत है मगर क़ौम की तालीम एक ऐसा मसला है जिस पर कितना ही खर्च हो, उसे बेकार नहीं कहा जा सकता। पिछले साल संयुक्त प्रान्त में उन्नीस लाख आरम्भिक शिक्षा में ख़र्च हुआ और औसत के हिसाब से प्रति छात्र साढ़े तीन आने। यह औसत दूसरे सभ्य देशों के मुक़ाबिले में बहुत ही कम है। क्या सरकार ऐसे पवित्र काम के लिए पचास लाख सालाना भी खर्च नहीं कर सकती? रुपये की कमी एक ऐसा बहाना है जो गवर्नमेण्ट के लिए कभी सच्चा नहीं कहा जा सकता। गवर्नमेण्ट के साधन असीम हैं, और इतनी रक़म वह बड़ी आसानी से खर्च कर सकती है। जब लड़ाई के ख़र्च इतने ज़ोरों से साल-ब-साल बढ़ते चले जाते हैं, अफ़सरों के ऐश और सहूलतों पर रुपया कौड़ियों की तरह लुटाया जा रहा है तो ग़रीबी या तंगदस्ती का हीला कभी यक़ीन करने के क़ाबिल नहीं ठहर सकता। यह भी गवर्नमेण्ट की एक चालाकी है कि उसने डिस्ट्रिक्ट बोर्डों पर शिक्षा का बोझ डालकर अपने को अलग कर लिया और अब 'एक जंजाल से और छुट्टी मिली' के तरीक़े पर अमल कर रही है। बोर्ड कहाँ से रुपया लगायें जब प्राविंशियल गवर्नमेण्ट अपने मुक़र्रर किये हुए हिस्से को सख़्ती से वसूल करती चली जाती है। पिछले दो-तीन वर्षों से हरेक ज़िले में मास्टरों को पढ़ाने का ढंग सिखाने के लिए दो-तीन मदरसे क़ायम किये गये हैं। हरेक मदरसे में सालाना छः मुदर्रिसों की तालीम होती है और सनद हासिल करने के बाद वह सरकारी मदरसों में नौकर रक्खे जाते हैं। इस मामले में भी सरकार ने ग़लती की है। अब मदरसों में मास्टर एक नार्मल स्कूल का सनदयाफ्ता होता है जिसकी तनख्वाह पन्द्रह रुपये माहवार होती है। ज़ाहिर है कि जो आदमी खुद मिडिल तक तालीम पाये हुए हो वह मिडिल पास मुदर्रिसों को पढ़ाने का ढंग क्या सिखायेगा? हक़ीक़त में यह रुपया बिलकुल बर्बाद होता है। बहुत अच्छा होता अगर एक-एक ज़िले में ऐसे तीन-तीन मदरसों के बजाय सिर्फ़ एक मदरसा होता और उसमें इलाहाबाद के ट्रेनिंग कालेज का सनदयाफ्ता सीनियर या जूनियर आदमी तालीम देता। वह अंग्रेज़ी तालीमयाफ्ता होने और तालीम के उसूलों का जानकार होने के

कारण मुर्दरिसों की तालीम ज़्यादा ख़ूबी से कर सकता।

कुछ तो रुपये की कमी है और कुछ बेजा ख़र्च। कभी-कभी सरकार ने दो-चार लाख ज़्यादा दिया भी तो वह इन्सपेक्टर और डायरेक्टरों और मैं और तू के बाँट-बखरे में पड़ जाता है और मुर्दरिस ज्यों का त्यों भूखा रह जाता है। इस साल तीन इन्सपेक्टर और बढ़ाये गये जिसके माने यह हैं कि चालीस हज़ार रुपये का ख़र्च और बढ़ गया। दुर्भाग्य से सरकार का ख़याल है कि मुआइना ज़्यादा होना चाहिए चाहे तालीम हो या न हो। मुआइने पर रुपया ख़र्च किया जाता है मगर तालीम की ख़बर नहीं ली जाती। पिछले साल मिस्टर चौधरी ने बंगाल में वहाँ की गवर्नमेण्ट पर एक एतराज़ किया था कि तालीम के मुक़ाबिले में मुआइने पर ज़्यादा ख़र्च किया गया। यही एतराज़ ग़ालिबन यहाँ भी किया जा सकता है। गवर्नमेण्ट कब यह समझेगी कि मुआइना कभी तालीम की जगह नहीं ले सकता।

उस पर से आफ़त यह है कि मुर्दरिसों के सर काम का इतना बड़ा बोझ भी काफ़ी नहीं समझा जाता। कम से कम पच्चीस फ़ी सदी हल्क़ेबन्दी मदरसे ऐसे हैं जिनमें मुर्दरिस तालीम के अलावा डाकख़ाने का काम भी किया करते हैं। इस अतिरिक्त काम के लिए उन्हें तीन रुपये से लेकर पाँच-छः रुपये तक मिलते हैं। चूँकि बोर्ड जानती है कि मुर्दरिसों को सरकार से काफ़ी तनख़्वाह नहीं मिलती इसलिए वह उन्हें डाकख़ानों का काम हाथ में लेने से रोकने की कोशिश नहीं करती। बल्कि अक्सर मुर्दरिसों की कारगुज़ारियों का पुरस्कार इसी पोस्टल अलाउंस की शकल में दिया जाता है। गवर्नमेण्ट की यह कंजूसी तालीम के हक़ में जितनी नुक़सानदेह है उसका अंदाज़ा करना मुश्किल है। डाकख़ाने का काम रोज़-ब-रोज़ ज़्यादा होता जाता है। मुर्दरिस इस काम के लिए कोई ख़ास वक्त मुक़र्रर नहीं कर सकता। देहात के ज़मीदार और काश्तकार जिस वक़्त फ़ुरसत पाते हैं, मुर्दरिस के पास पहुँच जाते हैं, और ग़रीब मुर्दरिस को उनकी दिलजोई करते ही बन पड़ती है। अगर वह क़ायदे बघारने लगे तो ज़मीदार साहब नाराज़ हो जायँ, पोस्टमास्टर जनरल के यहाँ शिकायत कर बैठें, या मुर्दरिस की लान-तान करना शुरू करें और उसकी हस्ती ख़तरे में डाल दें। इसलिए वह जिस वक़्त आ जाते हैं, मुर्दरिस को उनका काम करना पड़ता है। यह सिलसिला सबेरे से शाम तक जारी रहता है और चूँकि मुर्दरिस को भी डाकख़ाने के काम से कुछ ज़ाती फ़ायदा हो रहता है वह इस बेवक़्त आने को बेजा नहीं ख़याल करता। लगान के फ़सल में एक-एक दिन कई-कई सौ के मनीआर्डर आ जाते हैं, और हरेक मनीआर्डर पर मुर्दरिस को कुछ आने पैसे मिल जाते हैं। यह

बहुत स्वाभाविक बात है कि मुदर्रिस जैसी छोटी हैसियत का आदमी ज़ाती फ़ायदे के इन मौक़ों को हाथ से न जाने दे। अफ़सोस की बात है कि हमारी गवर्नमेण्ट की निगाहों में हमारी शिक्षा का कोई महत्व नहीं।

दूसरी बड़ी ज़रूरत पाठ्यक्रम में सुधार करने की है। इस प्रश्न पर न शिक्षा विभाग और न गवर्नमेण्ट कोई पक्की राय क़ायम कर सकी, कोई कुछ कहता है और कोई कुछ। कुछ लोगों का ख़याल है कि आरम्भिक शिक्षा का उद्देश्य सिर्फ़ यह होना चाहिए कि लड़का अक्षर पहचानने लग जाय और कुछ मोटा हिसाब जान ले। दूसरी जमात का यह ख़याल है कि लड़के की आरम्भिक शिक्षा इस ढंग पर हो कि उसे आगे चलने में मदद मिले। हमारे ख़याल में दोनों रायें एक-दूसरे की विरोधी हैं। जिस शिक्षा को हम आरम्भिक शिक्षा कहते हैं वह देहातों के लिए आरम्भिक शिक्षा नहीं है बल्कि नब्बे फ़ी सदी लड़कों के लिए वही अंतिम शिक्षा है। अपर प्राइमरी पास करने के लिए औसतन छः वर्ष लगते हैं, मगर मुश्किल तो यह है कि छात्रों का दो तिहाई हिस्सा अपर प्राइमरी दर्जे तक भी नहीं पहुँचने पाता, लोअर प्राइमरी दर्जे तक ही उसकी शिक्षा का अन्त हो जाता है। इसलिए ज़रूरी और बहुत ज़रूरी है कि हमारी आरम्भिक शिक्षा का पाठ्यक्रम ऐसा स्थिर किया जाय कि चार वर्ष तक पढ़ने के बाद लड़का अपनी ज़रूरतों के लिए काफ़ी तौर पर शिक्षा पा जाय। एक कलक्टर साहब बहुत सही लिखते हैं कि 'हल्क़ेबंदीवाले मदरसों के लगभग तमाम लड़के मदरसा छोड़ने के बाद बिन-पढ़े लड़कों को जमात में जा मिलते हैं। शिक्षा का कोई दिखाई पड़नेवाला प्रभाव उन पर नहीं पाया जाता और चूँकि उनकी शिक्षा नाममात्र के लिए होती है, वह थोड़े ही दिनों में सब कुछ भुला बैठते हैं।'

हमारा ख़याल है कि अपर प्राइमरी दर्जे की पढ़ाई अगर ज़रा और व्यापक कर दी जाय तो किसानों की ज़रूरतों के लिए काफ़ी है। रीडरें जो इस वक़्त चल रही हैं, भाषा की दृष्टि से सब निकम्मी हैं। उनके पढ़ने से लड़के मामूली बोलचाल के सिवा न तो हिन्दी भाषा जानते हैं और न उर्दू। उनकी भाषा का सुधार होना चाहिए ताकि लड़के रामायण तो समझ लें। व्याकरण की कोई ज़रूरत नहीं, उसे ख़ारिज कर देना चाहिए। भूगोल की शिक्षा काफ़ी है। हिसाब में भी कुछ कसर नहीं। अमली सवालों की मश्क़ ज़्यादा होना चाहिए। ड्राइंग व्यर्थ है। उसके बदले तन्दुरुस्ती के बारे में एक छोटी सी प्राइमर होनी चाहिए और भाषा के व्याकरण की जगह पर खेती के कुछ उसूल सिखाये जाने चाहिए। इस वक़्त चिट्ठी-पत्री का तरीक़ा नहीं सिखाया जाता। यह एक बहुत ज़रूरी चीज़ है। इसका भी कुछ प्रबन्ध होना चाहिए। और तब आरम्भिक शिक्षा का

मसला गोया हल हो जायगा। यह खयाल रहे कि यह सब कुछ सिर्फ चार सालों का कोर्स है और जब तक कि मुदर्रिसों की तादाद में उचित वृद्धि न की जाय यह नतीजे इतने कम समय में नहीं हासिल हो सकते। मगर यह बात निःसंकोच कही जा सकती है कि इस कोर्स को खतम करने के लिए चार साल की मुद्दत हरगिज़ कम नहीं। जनसाधारण में शिक्षा के लोकप्रिय न होने का एक बड़ा कारण यह है कि लड़के वर्षों पढ़ते रहते हैं और कुछ नतीजा नहीं निकलता। इसके लिए मास्टरों की कमी, उनके पास उचित योग्यता का न होना और शिक्षा के पाठ्यक्रम में खामी तीनों जवाबदेह हैं।

शिक्षा के लिए तीसरी ज़रूरत ठीक मकान की है। आम तौर पर मदरसों की इमारती हालत बेहद अफ़सोसनाक है। तहसीली मदरसों में तो खैर कहीं-कहीं पक्के मकान बन गये हैं मगर लोअर प्राइमरी और प्राइमरी मदरसों की हालत बहुत रद्दी है। उन्हें देखकर मवेशीखाने या अनाथालय का खयाल पैदा होता है। दीवारें पुरानी, दरवाज़े टूटे हुए, छतें गिरी हुई, ज़मीन का फ़र्श कच्चा। यहाँ भी रिश्वत और ग़बन की गर्म-बाज़ारी है। अगर किसी निर्माण के लिए हज़ार रुपया मंजूर हुआ है तो यह यक़ीनी बात है कि कम-से-कम आधी रक़म ज़रूर बीच की मंज़िलें तय करने में खर्च हो जायगी। ज़िम्मेदार अफ़सरों में लाज-शरम की भावना ऐसी ठंडी हो गई है कि इस अच्छे काम की अमानत में भी खयानत करने से वह बाज़ नहीं आते। एक तो बोर्डों की ग़रीबी, उस पर मंजूरशुदा रक़म की यह नोच-खसोट मदरसों की हालत को बहुत ही बुरा बनाये हुए है। अक्सर बोर्ड की तरफ़ से मदरसों के लिए इमारत भी नहीं होती। अगर गाँव में कोई समझदार आदमी हुआ तो उसने अपने दरवाज़े पर या तो कोई झोपड़ा डलवा दया था, अपने गऊशाले में एक टाट बिछाने की जगह दे दी। मुदर्रिस और मदरसे पर इतना एहसान करके वह अपनी निगाहों में हातिम बन बैठता है। ज़ाहिर है कि ऐसी जगहों में शिक्षा की ओर ज़रा भी ध्यान नहीं दिया जा सकता। ज़मींदार साहब दरवाज़े पर असामियों को लेकर बैठ जाते हैं और बुलन्द आवाज़ में फ़रमाते हैं कि डिप्टी साहब ने मुझसे यह सवाल किया तो मैंने उसका यह जवाब दिया और मुद्दालेह के वकील को यों लाजवाब कर दिया। उपस्थित लोग कान लगाये उनकी बातें सुन रहे हैं। क्योंकर मुमकिन है कि लड़के का ध्यान इस तरफ़ न खिंच जाये। लड़कों में ध्यान जमाने को योग्यता यों भी कम होती है और जब उस ध्यान को हटाने के लिए कोई हीला हाथ आ जाये तो फिर पूछना ही क्या है। यह तो हुआ उन मौज़ों का हाल जहाँ के ज़मीन्दार साहब ज़रा उदार हृदय हैं। जिन गाँवों में ऐसे आदमी नहीं हैं वहाँ का हाल तो ऐसा है कि क्या

कहें। मुदर्रिस पेड़ के नीचे बैठ जाता है और उस खुली हुई जगह में जाड़े की सर्दी और ग्रीष्म की गर्मी सब झेल डालता है। ऐसी हालत में वह मदरसा आस-पास के लोगों में मक़बूल नहीं होने पाता और शिक्षा के फैलने में रुकावट डालता है। जब तक कि हरेक मदरसे के लिए सरकारी इमारत न हो जाय शिक्षा के ढंग में सुधार होना बहुत मुश्किल है क्योंकि मुदर्रिस आम लोगों के सामने हँसी और मज़ाक के डर से शिक्षा के बेहतरीन तरीक़ों पर अमल नहीं कर सकता।

हमारी शिक्षा का तो यह हाल है और हमारे पबलिक काम करने वाले इन मसलों की तरफ़ से बिलकुल ग़ाफ़िल बैठे हुए हैं। कितने ऐसे पत्रकार या रिज़ोल्युशन पास करने वाले वकील हैं, जिन्होंने किसी ज़िले में दौरा करके यह पता लगाया हो कि कितने मदरसों में इमारत है और कितनों में नहीं। डायरेक्टर साहब की रिपोर्ट से ज़ाहिर नहीं होता कि फ़ी सदी कितने मदरसे सरकारी इमारत पर गर्व कर सकते हैं। डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के मेम्बर साहबान जैसे लायक़ और तालीमयाफ़्ता होते हैं उनसे यह उम्मीद करना कि इन मसलों पर वह कुछ कर सकते हैं, एक बेकार की उम्मीद है।

—ज़माना, मई-जून सन् १९०९

ज़ुलेख़ा

फ़ारसी हुस्न-ओ-इश्क़ की दुनिया में ज़ुलेख़ा को जो आम शोहरत हासिल है वह बयान की मुहताज नहीं। उसकी ज़िन्दगी हुस्न-ओ-इश्क़ की एक लाजवाब और दिलकश दास्तान है। एक बादशाह के महल में पैदा हुई, लाड़-प्यार में पली और बहार आते ही इश्क़ में क़ैद हो गई। फिर मुद्दत तक मुसीबतें झेलीं, शहज़ादी से फ़क़ीर बनी, सब कुछ इश्क़ में लुटा दिया मगर लगातार नाकामियों पर भी मुहब्बत की गली न छोड़ी। कभी-कभी माशूक की बेवफ़ाई और दुनिया के तानों से मजबूर होकर अपने माशूक़ पर सख्तियाँ भी कीं, मगर यह भी अथाह मुहब्बत का तक़ाज़ा था। इस इश्क़ के खंजर की घायल के नाम को फ़ारसी के अमर कवि जामी ने अमर बना दिया है। उसके सौन्दर्य की तारीफ़ यों की है—

कफ़े राहत दहे हर मेहनत अंदेश
निहादा मरहमे बर हर दिले रेश।

उसका हाथ परीशान को आराम पहुँचाता और दिल के ज़ख्म पर मरहम रखता था—

मियानश मूए, बल कज़ मूए नीमे
ज़े बारीकी बरद अज़ मूए बीमे।

उसकी कमर क्या थी, बाल थी, बल्कि बाल से भी आधी थी। बारीकी में उसे आधा बाल भी कहते डर लगता है—

सहीसर्वाँ हवादारीश करदे
परी-रूयाँ परस्तारीश करदे।

खुबसूरत लौंडियाँ उसकी ख़िदमत करतीं और परी जैसी सूरत वाली उसको पूजती थीं।

शुरू जवानी में इश्क की घातें उस पर होने लगती हैं मगर यह इश्क़ माशूक़ के देखने से नहीं पैदा होता बल्कि आम क़ायदे के खिलाफ़ वह चैन की नींद सो रही थी कि अचानक—

दर आमद नागहश अज़ दर जवाने
चेमी गोयम जवाने, नै कि जाने।

उसके दरवाज़े से एक जवान आया, वह जवान क्या आया बल्कि जान आया।

हुमायूँ पैकरे अज़ आलमे नूर
बबाग़े खुल्द करदा ग़ारते हूर।

सर से पाँव तक एक मुबारक नूर जिसने जन्नत के बाग़ की हूरों को लूट लिया। इस खूबसूरत जवान को देखते ही जुलेख़ा पर उसकी खूबसूरती का जादू चल गया—

गिरिफ़्तज़ क़ामतश दर दिल ख़याले
निशाँद अज़ दोस्ती दर दिल निहाले।

उसके सजीले बदन का ख़याल दिल में बैठ गया और उसने दिल में दोस्ती का बोज बो दिया—

ज़े रूयश आतशी दर सीना अफ़रोख़्त
वज़ाँ आतश मताये सब्रो-दीं सोख़्त।

उसके आग-जैसे चेहरे ने दिल में आग लगा दी और उस आग से धरम और धीरज की पूँजी जल गई। मगर जुलेख़ा यह जलन, यह दिल की आग सहती है लेकिन किसी पर ज़ाहिर नहीं करती। सखियों-सहेलियों से हँसती-बोलती है मगर दिल का भेद नहीं कहती—

निहाँ मी दाश्त राज़श दर दिले तंग
चू काने लाल लाल अंदर दिले संग।

ये भेद वह अपने दिल में ऐसे छुपाये रहती थो जैसे पत्थर अपने दिल में लाल छिपाये रहता है—

फ़रो मी खुर्द चूँ गुंचा बदिल ख़ूँ
न मी दाद अज़ दुरूँ यक शिम्मा बेरूँ।

वह अपने ग़म में दिल ही दिल में खून पीती थी मगर दिल का हाल कली की तरह दिल ही में बंद रख़ती थी, ज़रा भी ज़ाहिर न करती थी—

नज़र बर सूरते अग़ियार मीदाश्त
वले पैवस्ता दिल बायार मीदाश्त।

नज़र ग़ैरों पर रखती थी और दिल में माशूक़ का ख़याल।

कभी कभी जब वह जलन से बेचैन हो जाती है तो यार से यों बातें करती है—

कि ऐ पाकीज़ा गौहर अज़ चे कानी
कि अज़ तू दारम ईं गौहर फ़िशानी।

ऐ क़ीमती मोती, तू किस खान का है, मुझे तुझसे कुछ कहना है।

न मी दानम कि नामत अज़ के पुरसम
कुजा आयम मुक़ामत अज़ के पुरसम।

मैं तेरा नाम नहीं जानती, किससे पूछूँ। मैं तेरी जगह नहीं जानती, कहाँ जाऊँ।

मगर यह इश्क़ का भेद कब छुपता है। ज़ुलेखा ज़बान से कुछ नहीं कहती मगर उसकी खून बरसानेवाली आँखें और पीली-पीली सूरत यह भेद खोल देती हैं। गुलाब की-सी सूरत पीले फूल की तरह ज़र्द पड़ जाती है, ठंडी आहें भरती है, लौंडियाँ आपस में खुसुर-फुसुर करने लगती हैं। कोई कहती है 'ऊपर का असर है,' कोई कहती है, 'जादू है'। इन्हीं लौंडियों में ज़ुलेखा की एक दाई भी है। इश्क़ की दास्तानों में ऐसी औरतें बहुत आती हैं मगर इनमें शायद ही किसी का हवाला इस खूबसूरती से चन्द शेरों में दिया गया हो—

अज़ाँ जुमला फ़ुसूंगर दायाए दाश्त
कि अज़ अफ़सूंगरी सरमायाए दाश्त।

उसकी लौंडियों में एक जादूगर दाई भी थी जो अपने जादू-जैसे करतब का खज़ाना रखती थी—

बराहे आशिक़ी कार आज़मूदा
गहे आशिक़ गहे माशूक़ बूदा।

वह मुहब्बत के रास्तों को खूब जानती थी। वह कभी आशिक़ और कभी माशूक़ बन जाती थी—

बहम वसलत दहे माशूक़ो आशिक़
मुआफ़िक़ साज़ यारे नामुआफ़िक़।

वह आशिक़ और माशूक़ को मिला देती थी। फिरे हुए दोस्त को सच्चा दोस्त बना देती थी। यह जादूगरनी एक दिन ज़ुलेखा से यह प्यार-भरी बातें करती है—

वगर रफ़्तम तराज़े दोश बूदे
चू खुफ़्तम खुफ़्ता दर आग़ोश बूदे।

मैं चलती थी तो तू मेरे कंधे की शोभा होती थी और जब मैं सोती थी तो तू मेरी गोद में सोती थी—

चू ब नशस्ती बख़िदमत ईस्तादम
चू खुस्पीदी बपायत सद निहादम।

जब तू बैठती थी तो मैं तेरी ख़िदमत में खड़ी हो जाती थी और जब तू सोती थी तो मैं तेरे पाँव पर सिर रख देती थी—

ज़ेमन राज़े दिलत पिनहा चे दारी
न खुद बेगाना अम ज़े निसियाँ चे दारी।

तू मुझसे अपने दिल का हाल क्यों छिपाती है। मैं कोई ग़ैर नहीं हूँ। तू भूल कर रही है।

ज़ुलेखा मेहरबान दाई से रो-रोकर अपनी रामकहानी कह सुनाती है मगर दाई या तो आसमान के तारे तोड़ लाने को तैयार थी या यह दास्तान सुनकर बोल उठती है—

वले हर्फ़े बनक़्शे हर ख़यालस्त
के नादानिस्ता रा जुस्तन मुहालस्त।

हाँ, हर तस्वीर के लिए एक ख़याल है मगर अनजान को ढूँढ़ना मुश्किल है।

इसके कुछ दिनों बाद ज़ुलेखा एक दिन ग़म के बिस्तर पर पड़ी हुई अपने दिल से फ़रियाद कर रही है कि उसे फिर दोस्त का सुन्दर मुखड़ा दीखता है और वह उसे सपने में देखते ही उसके पाँव पर गिर पड़ती है और अपनी बेचैनी का बयान करती है। उसकी बेचैनी देख कर माशूक़ या माशूक़ की तस्वीर यह कहती है—

तुरा अज़ मा अगर बरसीना दाग़स्त
न पिन्दारी कज़ाँ दाग़म फ़राग़स्त।

अगर मेरे इश्क़ का दाग़ तेरे सीने पर है तो तू यह न समझ कि मैं इस दाग़ से ख़ाली हूँ—

मराहम दिल बदामे तुस्त दरबन्द
ज़ेदाग़े इश्क़े तू हस्तम निशामन्द।

मेरा दिल भी तेरी मुहब्बत के जाल में फँसा हुआ है और तेरे इश्क़ के दाग़ की मुझे ख़बर है।

दोस्त की तस्वीर की यह तड़प ज़ुलेखा के इश्क़ की आग को और भी भड़का देती है। कुछ दिन और इस तकलीफ़ में बीतते हैं, फिर तीसरी बार उसे माशूक़ का दुनिया को जला देनेवाला हुस्न नज़र आता है। इश्क़ के पैदा होने और बढ़ने की यह सूरत मुहब्बत की दास्तानों में बिलकुल निराली है। ज़ुलेखा फिर दोस्त की तस्वीर के पाँव पर गिर पड़ती है और इन शब्दों में उससे मुहब्बत भरी निगाह करने की विनती करती है—

न मी गोयम के दर हश्मत अज़ीज़म
न आख़िर मर तुरा कमतर कनीज़म।

मैं यह नहीं कहती कि मेरी शान बादशाह की-सी है। मैं तो तेरी एक

छोटी-सी लौंडी हूँ ।

चे बाशद गर कनीज़ेरा नवाज़ी
ज़े बन्दे मेहनतश आज़ाद साज़ी ।

क्या अच्छा हो कि तू इस लौंडो को अपना ले और दुखों के बन्धन से छुटकारा दे । मगर दूसरी बार की तरह इस खयाली माशूक़ ने अबकी इस रोने-धोने पर उसकी तसल्लो नहीं को और न अपना दुख ज़ाहिर किया, बस इतना कहा—

अज़ीज़े मिस्रअम व मिस्रम मुक़ामस्त

मैं मिस्र का (बादशाह-लक़ब) वज़ीर हूँ और मिस्र मेरा मुक़ाम है । इतना ही कहा और ग़ायब हो गया ।

शायर ने यहाँ ठोकर खाई है । जब इश्क़ की सूरत बिलकुल खुदा की तरफ़ से दिल पर ज़ाहिर हुई है तो चाहिये था कि दोस्त की तस्वीर का यह पता सही होता । मगर वाक़यात इसके खिलाफ़ हैं क्योंकि हज़रत यूसुफ़ मिस्र के वज़ीर न थे । फिर भी ज़ुलेखा को बहुत तसल्ली हो गई । जब माशूक़ का पता मिल गया तो उसे ढूँढ़ निकालना क्या मुश्किल था । थोड़ी देर के लिए उसका पागलपन दूर हो गया । इधर ज़ुलेखा दोस्त की जुदाई में परीशान थी उधर उसके रूप का सारी दुनिया में चर्चा फैला हुआ था—

सराने मुल्क रा सौदाये ऊ बूद
बबज़्मे खुसरवाँ ग़ौग़ाये ऊ बूद ।

देश के सरदारों के सर में उसकी चाह थी और बादशाहों की सभा में उसका चर्चा था ।

बहरवक़्त आमदे अज़ शहरयारे
ब उम्मीदे विसालश ख़ास्तगारे ।

हर वक़्त शहर का बादशाह आता और उससे मिलने की इच्छा करता ।

ज़ंग, रूम और शाम के बादशाहों ने अपने-अपने राजदूत ज़ुलेखा के बाप शाह तीमूस के पास भेजे मगर मिस्र के अज़ीज़ की तरफ़ से कोई पैग़ाम न आया । शाह तीमूस ने ज़ुलेखा को अपने सामने बुलाया और प्यार से अपने पास बिठाकर सब बादशाहों के पैग़ामों का ज़िक्र किया । मगर जब मिस्र के अज़ीज़ का ज़िक्र न आया तो वह निराश होकर बेद की टहनी की तरह काँपती हुई अपने एकांत में आ बैठी और रो-रोकर कहने लगी—

मरा ऐ काश के मादर नमीज़ाद
वगर मीज़ाद कस शीरम नमीदाद ।

क्या अच्छा होता कि मुझे मेरी माँ न जनती और अगर जनती तो कोई मुझे दूध न देता—

कयम मन अज़ वुजूदे मन चे खेज़द
वज़ीं बूदे न बूदे मन चे खेज़द।

मैं वह हूँ कि मेरी ज़िन्दगी से क्या हो सकता है। इस ज़िन्दगी के होने से न होती तो क्या नुक़सान होता। मजबूर होकर शाह तीमूस ने अज़ीज़े मिस्र को अपनी तरफ़ से पैग़ाम भेजा। अज़ीज़े मिस्र खुशी के मारे फूला न समाया। ग़रज़ यह कि ज़ुलेखा बड़ी शान के साथ मिस्र की तरफ़ रवाना हुई। हज़रत जामी ने इस जुलूस का ज़िक्र बहुत फैलाकर और बड़ी आन-बान से किया जिसका ज़िक्र इस फ़ाक़ेमस्ती और बर्बादी के ज़माने में बेकार है। ज़ुलेखा खुश-खुश चली जा रही थी कि अब कामनाओं के पूरे होने के दिन आये—

शबे ग़म रा सहर खाहद दमीदन
ग़मे हिजराँ बसर खाहद रसीदन।

ग़म की रात का सबेरा हो जायेगा, बिरह का दुख खत्म हो जायेगा।

मगर उसे क्या खबर थी कि जादूगर आसमान उसे सब्ज़ बाग़ दिखा रहा है। अज़ीज़े मिस्र राजधानी से उसके स्वागत के लिए आया हुआ था। ज़ुलेखा ने तम्बू के झरोखे से उसे देखा मगर ज्योंही

ज़ुलेखा कर्द अज़ाँ खीमा निगाहे
बरावुर्द अज़ दिले ग़मदीदा आहे।

ज़ुलेखा ने तम्बू से एक निगाह की और ग़म-भरे दिल से एक आह भरकर रह गई।

के वावेला अजब कारेम उफ़्ताद
बसर तापाये दीवारेम उफ़्ताद।

दुहाई है कि मेरा बना-बनाया काम बिगड़ गया और मेरे सर से पाँव तक दीवार गिर पड़ी—

न आनस्त आंके अक़्लोहोश मन बुर्द
इनाने दिल बबेहोशेम बसपुर्द।

यह वो नहीं है जिसने मेरी अक़्ल और मेरा होश लूटा और मेरे दिल की लगाम पागलपन को सौंप दी—

दरेग़ा बख़्ते सुस्तम सुस्ती आवुर्द
तुलूए अख़्तरम बदबख़्ती आवुर्द।

अफ़सोस है कि मेरी फूटी क़िस्मत और भी फूट गयी और मेरे नसीबे के

सितारे बदनसीबी लाये—

मनम ऋाँ बादबाँ कश्ती शिकस्ता
बरहना बरसरे लौहे नशस्ता ।

मैं कश्ती की फटी हुई पाल हूँ और कश्ती के बदले एक लकड़ी के तख्ते पर हर तरफ़ से खुली हुई बैठी हूँ ।

रुबायद हरज़मा अज़ जाये मौजम
बरू गह दर हज़ीज़े गहे दर औजम ।

मुझे दरिया की लहरें एक जगह से दूसरी जगह ले जाती हैं। कभी मैं दरिया की गहराई में चली जाती हूँ और कभी ऊपर आ जाती हूँ—

ज़िनागह ज़ोर मी आयद पिदीदार
शवम खुर्रम कज़ू आसाँ बुवद कार ।

कभी ज़ोर की लहर आती है और मुझे दरिया के सतह पर फेंक देती है तो मैं खुश हो जाती हूँ कि अब मेरी मुश्किल आसान हो जायेगी ।

चू नज़दीके मन आयद बे दिरंगे
बुवद बहरे हलाकत मन निरंगे ।

फिर वह लहर मेरे पास आती है और मुझे मार डालनेवाला घड़ियाल बन जाती है ।

इसी तरह पेचोताब खाकर उसने बहुत देर तक नाकामी के आँसू बहाये और खुदा के दरबार में दुआ की कि मेरी इज़्ज़त और आबरू का रखवाला तू है। खुदा के दरबार में उसकी दुआ मंजूर हुई और आवाज़ आयी—

के ऐ बेचारा रूये खाक बरदार
कज़ाँ मुशकिल तुरा आसाँ शवद कार ।

ऐ मजबूर, ज़मीन पर से सर उठा, तेरी मुश्किल आसान हो जायेगी ।

अज़ीजे मिस्र मक़सूदे दिलत नीस्त
वले मक़सूद बेऊहासिलत नीस्त ।

तेरे हृदय का लक्ष्य अज़ीज़े मिस्र नहीं है मगर उसके बिना वह पूरा भी न होगा ।

अज़ू ख्वाही जमाले दोस्त दीदन
वज़ू ख्वाही बमक़सूदत रसीदन ।

तू उसी के ज़रिये से दोस्त का रूप देखेगी और उसी के ज़रिये से अपने मतलब को पहुँचेगी ।

।। विविध प्रसंग ।।

मुबादा अज़ सोहबते ऊ हेच बीमत
कज़ूमानद सलामत क़ुफ़्ले सीमत ।

तू उसकी संगत से न डर क्योंकि तू उसके साथ रह कर भी कुँवारी रहेगी ।

इस आवाज़ ने दिल को ताक़त पहुँचाई। अब वह अज़ीज़े मिस्र की बेगम थी और अज़ीज़ वहाँ के सरदारों का रईस था। रुपया-पैसा, शान-शौकत और लौंडी-गुलामों की कमी न थी। रंगरेलियों की सभायें गर्म रहती थीं मगर ये सब चीज़ें ज़ुलेख़ा के दिल को दुख पहुँचाती थीं। अक्सर रातों को सब सो जाते तो वह ज़ालिम आसमान से शिकायत के दफ़्तर खोल देती।

चे दानिस्तम बवक़्ते चारासाज़ी
ज़े ख़ानूमाँ मरा आवारा साज़ी।

मुझे क्या ख़बर थी कि मेरे इलाज के वक़्त तू मुझे घर से बेघर करके आवारा कर देगा।

मरा बस बूद दाग़े बेनसीबी
फ़ुज़ूँ करदी बराँ दर्दे ग़रीबी।

मुझे बेनसीबी का दाग़ ही कुछ कम न था लेकिन तूने परदेस का दुख भी दिखाया।

उसके सिर पर जड़ाऊ ताज शोभा देता था, उसके रनिवास पर स्वर्ग निछावर था और उसका तख़्त जड़ाऊ था मगर जब दिल पर ग़म का बोझ हो तो ऊपर की टीम-टाम से क्या सुख। इस ढंग से ज़ुलेख़ा ने अज़ीज़े मिस्र के साथ एक मुद्दत तक उम्र काटी। शायद उसका भेद अज़ीज़े मिस्र पर भी खुल गया था मगर ज़ुलेख़ा उसको छिपाने की कोशिश करती रही।

लबश बा ख़ल्क़ दरगुफ़्तार मी बूद
वले जानो दिलश बा यार मी बूद।

वह लोगों से बातें करती थी लेकिन उसकी जान और दिल अपने माशूक़ में रहते थे।

बसूरत बूद बा मरदुम नशस्ता
बमाने अज़ हमाँ ख़ातिर गुसस्ता।

वह ज़ाहिर में लोगों के साथ बैठती थी लेकिन दिल दोस्त में रहता था।

इस तरह जब दिन कट जाता और रात की काली बला आ जाती तो वह

ख़याले दोस्त रा दर ख़िलवते राज़
निशाँदे ता सहर बर मसनदे नाज़।

एकांत में दोस्त के ख़याल को सबेरे तक सामने रखती और

बज़ानूए अदब ब नशस्तियश पेश
ब अर्ज़े ऊ रसानीदे ग़मे ख़ेश ।

उसके सामने अदब से बैठकर उससे अपना ग़म बयान करती ।

न जाने कितने वर्षों तक वह इस दिल की आग में जलती रही । आख़िर उसकी मुहब्बत में सच्चाई देखकर खुदा को उस पर तरस आया । रंग बदलने-वाला ज़माना उसके लिए अनुकूल हुआ । हज़रत यूसुफ़ को उनके दुश्मन भाइयों ने डाह के मारे कुएँ में डाल दिया । यह यूसुफ़ ही थे जिनके रूप का दर्शन ज़ुलेख़ा को सपने में हुआ था । संयोग की बात, कुछ सौदागरों ने यूसुफ़ को कुएँ से ज़िन्दा निकाल लिया और उन्हें गुलाम बनाकर बेचने के लिए मिस्र के बाज़ार में लाये । जब यहाँ पहुँचे तो उनके हुस्न का चर्चा कस्तूरी की खुशबू की तरह फैला । जो देखता हैरान रह जाता । धीरे-धीरे मिस्र के बादशाह के कानों तक यह खबर पहुँची । उसने अज़ीज़े मिस्र को हुक्म दिया कि जाकर गुलाम को देखो । अज़ीज़ ने उसे देखा तो अचम्भे से उंगलियाँ चबाने लगा और आकर बादशाह से गुलाम की बहुत तारीफ़ की ।

इन दिनों ज़ुलेख़ा को और दिनों से ज़्यादा बेचैनी थी । जब से हज़रत यूसुफ़ कुएँ में गिरे थे ज़ुलेख़ा को उनसे दिली लगाव होने की वजह से किसी सूरत चैन नहीं था । एक दिन वह दिल बहलाने के लिए शहर के पास एक जंगल में गयी और आराम की बहुत-सी चीजें ले गई मगर वहाँ भी उसका जी न लगा । महल की तरफ़ आ रही थी कि रास्ते में बादशाह के महल के सामने एक भीड़ देखी । यूसुफ़ की तारीफ़ हर आदमी कर रहा था । लोग उनकी मुहब्बत में पागल हो रहे थे । ज़ुलेख़ा ने भी अपना हाथी रोका और ज्योंही यूसुफ़ पर उसकी निगाह पड़ी उसकी आँखों से एक पर्दा-सा हट गया और बेअख्तियार दिल से एक ठण्डी आह निकल आयी और वह बेहोश हो गयी । लौंडियों ने यह हालत देखी तो हाथी जल्दी से एकांत में लायीं । ज़ुलेख़ा जब होश में आयी तो दाई ने उसके पागलपन का कारण पूछा । ज़ुलेख़ा बोली

बगुफ़्त ऐ मेह्रबाँ मादर चे गोयम
के गरदद आफ़ते मन हर चे गोयम ।

ऐ मेरी प्यारी माँ, मैं तुझसे क्या कहूँ क्योंकि इसमें हर तरह से मेरी ही परी-शानी है ।

दरां मजमां गुलामे रा के दीदी
ज़े अहले मिस्र वस्फ़े ऊ शनीदी ।

तूने उस भीड़ में जिस गुलाम को देखा और मिस्रवालों से जिसकी तारीफ़ सुनी

ज़े आलम क़िबलागाहे जानेमन ऊस्त
फ़िदायश जानेमन जानानेमन ऊस्त ।

मैं जिसे चाहती हूँ यह वही है और जिस पर जान निछावर करती हूँ यह वही है

बतन दरतप बदिल दरताब अज़वेम
ज़े दीदा ग़र्क़ ख़ूने नाब अज़वेम ।

मेरे बदन में बेक़रारी और दिल में तड़प उसी से है और मेरी आँखें उसी के ग़म में ख़ून रोती हैं

ज़े ख़ानूमा मरा आवारा ऊ साख़्त
दरीं बेचारगी आवारा ऊ साख़्त ।

मुझे घर से बेघर उसी ने किया और इस बेबसी में उसी ने डाला ।

दाई ने ज़ुलेख़ा की तसल्ली की । उधर मिस्रवालों ने यूसुफ़ की ख़रीदारी में अपनी कद्रदानियों का सबूत देना शुरू किया । जो आता मोल बढ़ाता था । ज़ुलेख़ा को एक एक पल की ख़बर मिलती थी और वह हर दफ़ा बोली का दुगना कर देती थी । यहाँ तक कि कोई गाहक उसके सामने न ठहर सका । मगर अज़ीज़े मिस्र के पास इतनी दौलत न थी । जो कुछ पूँजी और जवाहिरात उसके ख़ज़ाने में थे वो उसकी क़ीमत से आधे भी न थे । अज़ीज़े मिस्र ने यही बहाना पेश किया लेकिन

ज़ुलेख़ा दाश्त दुर्जे पुर ज़े गौहर
न दुर्जे बल्के बुर्जे पुर ज़े अख़्तर ।

ज़ुलेख़ा के पास एक मोतियों का डब्बा भरा हुआ था । वह मोतियों का डब्बा क्या था बल्कि सितारों की एक बुर्ज थी ।

बहाये हर गुहर ज़ां दुर्रे मकनूं
ख़िराजे मिस्र बूदे बल्कि अफ़ज़ूं ।

हर मोती की क़ीमत मिस्र के ख़िराज के बराबर थी बल्कि उससे भी ज़्यादा ।

अज़ीज़े मिस्र ने जब देखा कि यह बहाना नहीं चला तो कहने लगा कि मिस्र के बादशाह इस गुलाम को अपने गुलामों का सरदार बनाना चाहते हैं । अगर मैं इसे मोल लूँगा तो वह नाराज़ होंगे । ज़ुलेख़ा ने जवाब दिया

बगुफ्ता रौ सूए शाहे जहाँदार
हक़े ख़िदमतगुज़ारीरा बजा आर ।

जुलेखा ने कहा कि बादशाह की ख़िदमत में जाओ और यह अर्ज़ करो

बिगो बर दिल जुज़ीं बन्दे न दारम
कि पेशे दीदा फ़र्ज़न्दे न दारम ।

मैं इस गुलाम को इसलिए चाहता हूँ कि मेरे औलाद नहीं है, इसे औलाद समझ कर अपने पास रक्खूँगा ।

सरफ़राज़ी मरा ज़ीं एहतरामम
के आयद ज़ेरे फ़रमां ईं गुलामम ।

मेरी इज़्ज़त इसी में है कि इस लड़के को अपनी गुलामी में रक्खूँ

बबुर्जम अख़्तरे ताबिन्दा बाशद
मरा फ़र्ज़न्द शहरा बंदा बाशद ।

यह मेरे बुर्ज का चमकदार सितारा होगा । मेरा बेटा बादशाह का गुलाम होगा ।

आख़िर अज़ीज़ ने मजबूर होकर जुलेखा को ख़रीदारी की इजाज़त दे दी मगर यह समझ में नहीं आता कि जुलेखा यूसुफ़ को अपना बेटा बनाने की हिम्मत कैसे कर सकी । जुलेखा ने जो सूरत सपने में देखी थी वह बच्चे यूसुफ़ की नहीं बल्कि जवान यूसुफ़ की थी । हाँ, यह हो सकता है कि यूसुफ़ पर नबी होने की वजह से उम्र का असर न हुआ हो । जुलेखा अपना मतलब पाकर खुश हुई और कुछ दिनों उसकी आराम से बीती । कहती है—

चू बूदम माहीए दर मातमे आब
तपां बर रेगे तुफ़्ता अज़ ग़मे आब ।

जब मैं ग़म के पानी में मछली की तरह थी और जलती हुई मिट्टी पर जलती हुई मछली

दर आमद सैले अज़ अब्रे करामत
बदरिया बुर्द अज़ां रेगम सलामत ।

तेरी मेहरबानी की बाढ़ आयी और मुझे खुशी के दरिया में ले गई ।

के बूदम गुम रहे दर ज़ुल्मते शब
रसीदा जां ज़े गुमराहेम बरलब ।

क्योंकि मैं रात के अंधेरे में भटक रही थी और गुमराही तक मेरी जान पहुँच गई थी ।

बरामद अज़ उफ़क़ रख़्शिन्दा माहे
बकूए दौलतम बनुमूद राहे।

क्षितिज से एक चमकता हुआ चाँद निकला और उसने मुझे रास्ता दिखा दिया। ज़ुलेख़ा को अब यूसुफ़ की दिलजोई और ख़ातिरदारी के सिवा दूसरा कोई काम न था।

चू ताजे ज़र ब फ़र्क़श निहादे।
निहाँरा बोसाअश बरफ़र्क़ दादे ॥

कभी उसके सर पर जड़ाऊ मुकुट रखती और छुप कर उसका सर चूम लेती

चू पैराहन कशीदे बर तने ऊ
शुदे हमराज़ बा पैराहने ऊ।

कभी उसके कपड़े उतारती और उसे नंगा देखती

कमर चूं चुस्त करदे बरमियानश
गुज़श्ते ईं तमन्ना बरज़बानश।

कभी उसकी कमर बाँधती तो अपनी ज़बान से यह इच्छा प्रकट करती

के गर दस्तम कमर बूदे चे बूदे
ज़े वस्लश बहरावर बूदे चे बूदे।

अगर मेरा हाथ तेरी कमर में होता तो क्या होता और अगर मैं एकांत में तुझसे मिलती तो कितना अच्छा होता।

मुसलसल गेसुवश चू शाना कर्दे
मदावाए दिले दीवाना कर्दे।

बार-बार उसके बालों में कंघी कर करके अपने पागल दिल को तसल्ली देती।

ग़मश खुर्दे व ग़म ख़्वारीश कर्दे
बख़ातूनी परस्तारीश कर्दे।

उसका ग़म खाती, ख़याल रखती और उसकी सेवा स्त्री की तरह करती।

मगर चूंकि यूसुफ़ पैग़म्बर के लिए गड़रिया होना ज़रूरी था, इस आराम में उनका जी न लगा। ज़ुलेख़ा ने उनके दिल का झुकाव देखा तो उनकी दिलजोई के ख़याल से उनके लिए गड़रिये के काम का सामान कर दिया। रेशम की रस्सियाँ बनवाईं, जड़ाऊ लकड़ी तैयार कराई और हज़रत यूसुफ़ चरवाही करने लगे मगर इश्क़ का जादू निराला है।

उम्मीदे कामरानी नीस्त दर इश्क़
सफ़ाये ज़िन्दगानी नीस्त दर इश्क़।

॥ **ज़ुलेख़ा** ॥

इश्क़ में दिल की मुराद पाना और साफ़ ज़िन्दगी गुज़ारना मुश्किल है।

जुलेखा बूद यूसुफ़ रा न दीदा
ब ख्वाबे ऊ ख़याले आरमीदा।

जुलेखा यूसुफ़ को बिन देखे बेचैन रहती और नींद में भी उसी का ध्यान रहता।

बजुज़ दीदारश अज़ हर जुस्तजूए
न मीदानिस्त खुद रा आरज़ूए।

वह सिवाय यूसुफ़ को देखने के और कोई इच्छा नहीं रखती थी।

चू शुद अज़ दीदने ऊ बहरा मंदी
ज़े दीदन ख्वास्त तबए ऊ बलंदी।

जब उसे देखती तो अपनी आत्मा में एक तरह की खुशी और बलंदी पाती।

ज़े लाले ऊ बबोसा काम गीरद
ज़े सर्वश बा कनार आराम गीरद।

उसके होंठ चूमने और सर गोद में रखने से आराम महसूस करती।

वले नज़्ज़ारगा कामद सुए बाग़
ज़े शौक़े गुल चू लाला सीना बरदाग़।

अगर कभी बाग़ देखने आती तो लाला की तरह अपने दिल पर माशूक़ का दाग़ पाती।

न खुस्त अजरूये गुल दीदन शवद मस्त
ज़े गुल दीदन बगुल चीदन बरूदस्त।

फूलों को देखकर मस्त हो जाती और फूल चुनने लगती।

जब तक जुलेखा ने यूसुफ़ को न देखा था, सिर्फ़ देखने की इच्छा थी। अब मिलने का शौक़ पैदा हुआ। मगर

जुलेखा बह्रे यक दीदन हमी सोख़्त
वले यूसुफ़ ज़े दीदन दीदा बरदोख़्त।

जुलेखा यूसुफ़ को एक नज़र देखने के शौक़ में दिल ही दिल में जलती थी और यूसुफ़ ने जुलेखा को न देखने के ख़याल से आँखें सी ली थीं।

ज़े बीमे फ़ितना सूए ऊ न मी दीद
ब चश्मे फ़ितना रूये ऊ न मी दीद।

जुलेखा जब यूसुफ़ को देखती, बुरे ख़याल से देखती और उसकी उन पर जो नज़र पड़ती बुरी होती। लेकिन यूसुफ़ की लापरवाही ने जुलेखा को ग़म के भँवर में डाल दिया। फिर उसकी तबीयत में पागलपन पैदा हो गया। कंघी-

चोटो से घिन हो गई । मेहरबान दाई ने बड़े प्यार से इस हार्दिक दुख का कारण पूछा । ज़ुलेखा ने अपनी कहानी निराशा के साथ शुरू की और उसे यूसुफ़ के पास मिलने का संदेशा देकर भेजा । मगर यूसुफ़ का क़दम सच्चाई के रास्ते से न डिगा और उन्होंने जवाब दिया ।

ज़ुलेखा रा गुलामे ज़र खरीदम
बसा अज़ वै इनायतहा के दीदम ।

ज़ुलेखा ने मुझे रुपया देकर मोल लिया है और मुझ पर बड़ी-बड़ी मेहरबानियाँ की हैं ।

गिलो आबम इमारत कर्दये ऊस्त
दिलो जानम वफ़ा परवर्दये ऊस्त ।

मुझे उसने बड़ी मेहरबानी से पाला-पोसा और बनाया-सँवारा है ।

अगर उम्रे कुनम नेमत शुमारी
नियारम कर्दन ऊरा हक़ गुज़ारी ।

अगर मैं सारी उम्र उसकी मेहरबानियों का हिसाब करूँ तो भी उनका हक़ अदा नहीं कर सकता ।

बफ़रज़न्दे अज़ीज़म नाम बुर्दस्त
अमीने खानए ख़ेशम सपुर्दस्त ।

मुझे अज़ीज़े मिस्र के बेटे का नाम दिया और अपने घर की निगरानी मुझे सौंपी ।

नयम जुज़ मुर्गे आबोदानये ऊ
खयानत चू कुनम दर खानये ऊ ।

मैं उसका खिलाया-पिलाया और पाला-पोसा हूँ । उसके घर में डाका कैसे डाल सकता हूँ ।

जब दाई के जादू से काम न चला तो ज़ुलेखा खुद सवाल की सूरत बनकर यूसुफ़ के पास आई और यूसुफ़ से मेहरबानी की भीख माँगी मगर यूसुफ़ ने उसे भी बड़ी समझदारी से जवाब दिया ।

खुदावन्दे मजू अज़ बन्दये ख़ेश
बदीं लुत्फ़म मकुन शर्मिन्दए ख़ेश ।

ऐ मेरी मालिक, अपने गुलाम से ऐसे काम की उम्मीद न रख और अपनी मेहरबानियों से शर्मिन्दा न कर ।

कियम मन ता तुरा दम साज़ गरदम
दरीं खां बाअज़ीज़ अंबाज़ गरदम ।

मैं वो नहीं हूँ कि तेरे इस हुक्म को बजा लाऊँ और अज़ीज़ की थाली में शरीक हो जाऊँ।

ब बायद बादशह आं बंदा रा कुश्त
कज़ू बायक नमकदां बावै अंगुश्त।

बादशाह को चाहिए कि उस गुलाम को मार डाले जो उसके नमकदान में अपनी उंगली डाले।

यूसुफ़ का जवाब साफ़ और सच्चाई से भरा हुआ था। हयादार औरत को डूब मरने के लिए इशारा बहुत था मगर इश्क़ ने जुलेखा को अंधा कर दिया था। उसने यूसुफ़ को जब इंसानियत के पर्दे में छुपते देखा तो उस पर्दे को हटा देने की कोशिश शुरू की। उसके पास एक बाग़ था। उसे खूब सजाकर, बहुत सी खूबसूरत लौंडियाँ वहाँ भेजीं और यूसुफ़ को भी सैर करने के लिए भेजा। लौंडियों से ताकीद कर दी कि यूसुफ़ को रिझाने में कोई कसर उठा न रखना और यूसुफ़ को यह दोस्ती-भरी राय दी

अगर मन पेशे तू बर तू हरामम
वज़ीं मानी ब ग़ायत तल्ख़ कामम।

अगर मैं तेरे लिए हराम हूँ और तू इसीलिए मुझे बुरी समझता है

बसूए हर के ख्वाही गाम बरदार
ज़े वस्ले हर के ख्वाही काम बरदार।

इनमें से जिसे जी चाहे उससे, जी बहला और अपना मतलब पूरा कर।

इन चालों का मतलब यह था कि जब यूसुफ़ इन लौंडियों में से किसी से अपना मतलब पूरा करने का ख़याल ज़ाहिर करें तो जुलेखा

निशानद खेश रा पिनहा बजायश
खुरद वर अज निहाले दिलरुबायश।

छुपकर उस लौंडी की जगह बैठ जाये और इस तरह अपना मतलब पूरा करे।

इससे साफ़ ज़ाहिर होता है कि जुलेखा का प्रेम वासना का दूसरा नाम था। मगर उसकी कोई कोशिश कारगर न हुई। यूसुफ़ ने इन लौंडियों को खुदा की मुहब्बत का ऐसा पाठ पढ़ाया कि वो अपने गंदे ख़याल से हाथ धो बैठीं और जब जुलेखा पिया मिलन की इच्छा लिये हुए वहाँ पहुँची तो लौंडियों को खुदा के सामने सजदे में सर झुकाये पाया। निराश होकर वहाँ से वापस लौटी और रो-रोकर दाई से अपने दिल का दुख सुनाने लगी। दाई ने समझाया, खुदा की मेहरबानी से आप भी एक ही सुन्दरी हैं। आप अपने ढंग और अदाओं से

यूसुफ़ को पिघला सकती हैं। जुलेख़ा ने जवाब दिया यह तो सच है मगर व-ज़ालिम मेरी तरफ़ आँख उठा कर देखे तो। वह तो मेरी तरफ़ ताकता ही नहीं। आखें चार हों तब तो दिल मिले।

न तनहा आफ़तम ज़ेबाइये ऊस्त
बलाये मन ज़े नापरवाइये ऊस्त।

उसका रूप ही मेरे लिए आफ़त नहीं है, उसकी लापरवाही और भी बड़ी आफ़त है।

आख़िर जब परखने से साबित हो गया कि इन छोटी-छोटी चालों से काम न चलेगा तो दाई ने एक बड़ी चाल चली। रुपये की कमी न थी। एक बहुत बड़ा महल बनवाया गया जिसमें सात खंड थे। इस सतखंडे महल को उस्ताद ने ऐसा अच्छा बनाया कि हर खंड पहले खंड से बढ़-चढ़कर था और सातवाँ खंड तो जैसे सातवें आसमान का जवाब था। हीरे-जवाहिरात, कस्तूरी, अम्बर और फलदार पेड़ और दुनिया भर की सजावट वहाँ मौजूद थी। उसकी हवा दिलों में नशा पैदा करती थी। उसकी सजावट निराली थी।

दरां ख़ाना मुसव्विर साख़्त हर जा
मिसाले यूसुफ़ ओ नक़्शे जुलेख़ा।

इस महल में चित्रकार ने जगह-जगह यूसुफ़ और ज़ुलेख़ा की तस्वीरें बनाई थीं।

बहम बनशस्ता चूं माशूक़ ओ आशिक़
ज़े मेहरे जानो दिल बाहम मुवाफ़िक़।

आपस में प्रेमी और प्रेमिका ऐसे बैठे थे जैसे दिल और जान एक दूसरे से अलग नहीं हो सकते।

बयक जा ईं लबे आं बोसा दादा
बयक जा आं मियाने ईं कुशादा।

कहीं यह उसका मुँह चूम रहा है और कहीं वह इसका नाड़ा खोल रही है।

जब यह महल हर तरह सज गया तो ज़ुलेख़ा ने भी अपने को खूब दिल खोलकर सजाया और आकर पहले हिस्से में बैठी। यूसुफ़ भी बुलाये गये। उन्हें देखते ही जुलेख़ा बेचैन हो गयी, सब्र हाथ से जाता रहा। यूसुफ़ का हाथ एक ख़ास अंदाज़ से पकड़कर इधर-उधर की सैर कराने लगी। यहाँ सिवाय आशिक़ और माशूक़ के और कोई रंग में भंग डालनेवाला न था। ज़ुलेख़ा बार-बार इश्क़ का जोश जताती थी मगर यूसुफ़ धर्म और इन्सानियत की दलीलों से

उसे चुप कर देते थे।

सवाल और जवाब—

यूसुफ़—

मरा अज़ बंदे ग़म आज़ाद गर्दां
ब आज़ादी दिलम रा शाद गर्दां।

मुझे ग़म की क़ैद से आज़ाद कर दे और आज़ादी से मेरा दिल खुश कर दे।

मरा खुश नीस्त कीं जा बा तू बाशम
पसे ईं पर्दा तनहा बा तू बाशम।

मुझे यह अच्छा नहीं लगता कि इस जगह पर्दे के पीछे तेरे साथ रहूँ।

जुलेखा—

तिही कर्दम खज़ाइन दर बहायत
मताए अक़्लो दीं कर्दम फ़िदायत।

मैंने तेरी क़ीमत पर खज़ाना खाली कर दिया और तुझ पर अक़्ल और धर्म की पूंजी निछावर कर दी।

ब आँ नियत कि दरमानम तू बाशी
रहीने तौक़े फ़रमानम तू बाशी।

इस ख्याल से कि तू मेरे दुख का इलाज करेगा और मेरे हुक्म में रहेगा।

यूसुफ़—

बिगुफ़्ता दर गुनह फ़रमाँबरी नीस्त
ब इसियाँ ज़ीस्तन खिदमतगरी नीस्त।

वह हुक्म जिसमें पाप हो उसे बजा लाना आज्ञा-पालन नहीं है और पाप की जिन्दगी बिताना सेवा नहीं है।

जुलेखा एक घर से दूसरे घर में जाते वक़्त उसके दरवाज़े पर ताला लगा देती थी कि यूसुफ़ भाग न जाये। इश्क़ उसकी अक़्ल पर धुएँ की तरह छा गया था कि वह उस नतीजे को, जो दिल के लगाव ही से मुमकिन है, ज़बर्दस्ती हासिल करना चाहती थी। सातवें खंड में पहुँच कर जुलेखा ने बहुत ही नर्मी से अपनी दास्तान कही कि जैसे अपना कलेजा ही निकालकर रख दिया मगर यूसुफ़ का दिल न पसीजा। आखिर जब उसकी कामना हद से आगे बढ़ गई तो यूसुफ़ ने यह कहकर उसकी तसल्ली की कि जल्दी से काम बिगड़ता है। जुलेखा उसका यों जवाब देती है—

ज़े शौक़म जाँ रसीदा बर लब इमरोज़
नियारम सब्र करदन ता शब इमरोज़ ।

तेरे इश्क़ में मेरी जान होठों पर आ गई। अब आज रात तक मैं धीरज नहीं रख सकती।

कै आँ ताक़त मरा आयद पिदीदार
के बावक़्ते दिगर अंदाज़म ईं कार।

मुझमें इतनी ताक़त कहाँ है कि दूसरे वक़्त पर यह काम छोड़ूँ।

ज़ुलेखा पिया-मिलन के नशे में मतवाली हो रही है और यूसुफ़ कहते हैं, इसमें दो बातें रुकावट डालती हैं। एक तो खुदा का डर और दूसरे अज़ीज़े मिस्र का। तो वह उन दोनों को दूर करने की तरकीब बताती है कि अज़ीज़े मिस्र को

दिहम जामे कि बा जानश सतेज़द
ज़े मस्ती ता क़मायत बर न खेज़द।

मैं एक ऐसा प्याला पिला दूँगी कि उसके नशे से वह फिर उठ न सकेगा और खुदा से इस पाप की माफ़ी के लिए अपना सारा ख़ज़ाना ग़रीबों और फ़क़ीरों को दे दूँगी। इस पर यूसुफ़ कहते हैं, न तो मेरा खुदा रिश्वत खाता है और न मैं ऐसा एहसान भुला देनेवाला हूँ कि अपने ही मालिक को मारने की राय दूँ। आख़िर ज़ुलेखा की जब एक भी न चली तो उसने एक तेज़ तलवार हाथ में लेकर खुद मरने का इरादा ज़ाहिर किया।

चू यूसुफ़ आँ बिदीद अज़ जाय बरजस्त
चू ज़र्रीं मार बिगिरिफ़्तश सरे दस्त ॥

यूसुफ़ फ़ौरन अपनी जगह से उठे और एक सुनहरे साँप की तरह उसके हाथ को पकड़ लिया।

कज़ीं तुन्दी बियाराम ऐ ज़ुलेखा।
वज़ीं रू बाज़ कश काम ऐ ज़ुलेखा।

ऐ ज़ुलेखा, इतनी जल्दी न कर और इस ख़याल से मुँह मोड़।

ज़ुलेखा ने जब यूसुफ़ को ज़रा नर्म होते देखा तो उनकी गर्दन में हाथ डालकर लिपट गई और ऐसी हरकतें करने लगी जो एक कुँवारी लड़की को शोभा नहीं देतीं। शायद इस वक़्त हज़रत यूसुफ़ नबी के पद पर होते हुए भी सीधे रास्ते से डगमगा गये थे। मगर इस एकांत की हालत में उनकी नज़र एक सुनहरे पर्दे पर पड़ी जो सामने लटक रहा था। ज़ुलेखा से पूछा, यह पर्दा क्यों पड़ा है। ज़ुलेखा बोली, इसके अन्दर मेरा खुदा है। मैंने उसके ऊपर पर्दा

डाल दिया है कि उसकी निगाह मुझ पर न पड़ सके। ज़ुलेखा का इतना कहना ग़ज़ब हो गया। यूसुफ़ बोले, तू एक पत्थर की मूरत का इतना लिहाज़ करती है और मैं अपने सब कुछ देखने और सब जगह हाज़िर रहने-वाले ख़ुदा से ज़रा भी न डरूँ! यह कहकर फ़ौरन वहाँ से उठ खड़े हुए और बाहर की तरफ़ चले। ख़ुदा का करना भी कुछ ऐसा ही हुआ कि हर दरवाज़े पर पहुँचते ही लोहे के ताले खुलते गये। ज़ुलेखा ने जब यूसुफ़ को भागते देखा तो झल्लाकर

पये बाज़ आमदन दामन कशीदश
ज़े सूए पुश्त पैराहन बुरीदश।

उनके पीछे लपकी और पीछे से दामन पकड़ा जिससे उनका कुर्ता फट गया

बुरूँ रफ़्त अज़ कफ़े आं ग़मरसीदा
बसाने ग़ुन्चा पैराहन दरीदा।

लेकिन हज़रत उसके पंजे से ऐसे बाहर निकल गये जैसे कली पंखुड़ियों के पर्दे से बाहर निकल आती है।

यूसुफ़ इस महल से निकल ही रहे थे कि अज़ीज़े मिस्र आते दिखाई दिये। उन्होंने यूसुफ़ का हाथ मुहब्बत के जोश में पकड़ लिया और फिर महल में दाख़िल हुए। ज़ुलेखा ने जब यूसुफ़ को अज़ीज़ के साथ देखा तो समझी कि इसने मेरी शिकायत की है। फौरन त्रिया-चरित्र खेली, बोली कि आज मैं इस कमरे में सोती थी तो यह गुलाम, जिसे मैंने अपना बेटा कहा है, दबे पाँव मेरी सेज की तरफ़ आया और मेरी इज़्ज़त लेनी चाही। इतने में मैं जाग पड़ी और यह भाग निकला। अज़ीज़ ने यह दास्तान सुनी तो यूसुफ़ को खूब भला-बुरा कहा कि मैंने तुझे बेटे की तरह पाला-पोसा और तू ऐसा जानवर निकला। तब यूसुफ़ ने मजबूर होकर सारा कच्चा चिट्ठा कह सुनाया मगर ज़ुलेखा के रोने-धोने ने अज़ीज़ को पिघला दिया और हज़रत यूसुफ़ जेल में डाल दिये गये। यहाँ ख़ुदा के दरबार में उनकी पुकार यहाँ तक मंज़ूर हुई कि ज़ुलेखा की चालों और यूसुफ़ के बेकुसूर होने की गवाही एक दूध-पीते बच्चे ने दी। अज़ीज़े मिस्र को अब शक की कोई गुंजाइश बाक़ी न रही। उसने यूसुफ़ को छोड़ दिया और ज़ुलेखा को सज़ा दी। जब यह क़िस्सा चारों तरफ़ फैला और लोग ज़ुलेखा को ताने देने लगे तो उसने अपने शौहर से कहा कि मैं इस गुलाम के पीछे बदनाम हो रही हूँ, आप इसे मेरी नज़रों से दूर कर दीजिए। अज़ीज़ ने युसुफ़ को फिर क़ैद किया मगर

चे मुशकिल जाँ बतर बर आशिक़े जार
कि बेदिलदार बीनद जाये दिलदार।

उस आशिक़ की बुरी हालत का क्या ठिकाना है जो अपने माशूक़ की जगह ख़ाली देखे

चू ख़ाली दीद अज़ गुल गुलशने ख़ेश
चू गुंचा ख़ाक ज़द पैराहने ख़ेश।

जब उसने अपने बाग़ में अपना फूल न देखा तो कली की तरह अपनी पँखुरियाँ मिट्टी पर गिरा दीं। जब बिरह का दुख न सह सकती तो छिपकर अपनी दाई के साथ जेल में जाती और यूसुफ़ को देख आती। इधर यूसुफ़ जेलखाने में सपनों का मतलब बताने में मशहूर हो गये। सपना सुनते ही उसका मतलब बता देते। उन्हीं दिनों मिस्र के बादशाह ने सपना देखा कि मेरे मकान में पहले सात मोटी-मोटी गायें आयीं, उनके बाद सात दुबली-पतली गायें आयीं और इन मोटी गायों को सूखे गेहूँ की तरह खा गईं। इस सपने का कोई मतलब न बता सकता था। यूसुफ़ के सपने का हाल बताने का ज़िक्र बादशाह तक पहुँच गया था। बादशाह ने उन्हें दरबार में बुलाया और यूसुफ़ ने सपने का मतलब बताया कि पहले मिस्र में सात बरस तक खूब ग़ल्ला पैदा होगा, लोग आराम से रहेंगे, उसके बाद अकाल और मँहगाई के बरस आयेंगे और उस ज़माने में प्रजा को बड़े कष्ट का सामना होगा। बादशाह इस मतलब से बहुत खुश हुआ और उसी वक़्त से यूसुफ़ उसकी नज़र में चढ़ गये। इज़्ज़त और पद बढ़ने लगा मगर ज्यों ज्यों उनका पद बढ़ता गया अज़ीज़े मिस्र का पद घटता गया यहाँ तक कि इसी दुख में वह मर गया। अज़ीज़े मिस्र के मरते ही ज़ुलेख़ा के भी बुरे दिन आये। आख़िर यह हालत हो गई कि यूसुफ़ के रास्ते पर एक छोटी-सी मड़ैया बना कर

ब हसरत बर सरे राहे नशस्ते
ख़रोशाँ बर गुज़रगाहश नशस्ते।

उसके रास्ते में बैठ जाती और पागलों की तरह रोती-धोती और चीख़ती पुकारती रहती थी। लड़के आते, उसे छेड़ते। इश्क़ ने पागलपन की जगह ले ली थी। कैसी दुख-भरी तस्वीर है। यह वही महलोंवाली ज़ुलेख़ा है जो आज इस हालत को पहुँच गई है।

जब इस पागलपन को एक मुद्दत बीत गई तो एक रोज़ नाकामी और निराशा से झल्लाकर ज़ुलेख़ा ने अपने खुदा को चूर चूर कर डाला और इसी पागलपन की हालत में हज़रत यूसुफ़ के पास गई। यूसुफ़ ने हैरान होकर नाम-

पता पूछा, जुलेखा को पहचान न सके । जुलेखा बोली

बिगुफ़्त आनम कि चूँ रूये तू दीदम
तुरा अज़ जुमला आलम बरगुज़ीदम ।

मैं वह हूँ कि जब मैंने तेरी सूरत देखी तो तुझे सारी दुनिया से अच्छा समझकर चुन लिया ।

फ़िशांदम गंजो गौहर दर बहायत
दिलोजाँ वक़्फ़् कर्दम दर हवायत ।

तेरे मोल पर अपना ख़जाना और जवाहिरात लुटा दिये और अपना दिल और जान तुझ पर निछावर कर दी ।

जवानी दर ग़मत बरबाद दादम
बरीं रोज़े कि मो बीनी फ़ितादम ।

तेरे ग़म में अपनी जवानी बर्बाद कर दी जिसका नतीजा आज तू देख रहा है ।

यह सुनकर हज़रत यूसुफ़ को बहुत तकलीफ़ हुई और वह रोने लगे । क़िस्सा कोताह, उनकी दुआओं ने जुलेखा को दुबारा जवानी और रूप दिलवाया और तब खुदा की इजाज़त से उन्होंने जुलेखा से शादी कर ली ।

यह है जुलेखा का बहुत मशहूर क़िस्सा । जुलेखा किसी तरह ऊँचे चरित्र का नमूना नहीं कही जा सकती । उसके प्रेम का स्थान बहुत नीचा है । वह एक चंचल स्वभाव और विचारों की स्त्री है और गंदी इच्छाओं पर ईमान और सब कुछ लुटा सकती है । जिन हालतों में जो कुछ उसने किया वही हर एक मामूली औरत करेगी । इसलिए कहा जा सकता है कि जुलेखा एक हद तक सच्चाई के रंग में रँगी हुई है । इससे हज़रत जामी का शायद यह मतलब होगा कि उसकी कमज़ोरियाँ दिखाकर यूसुफ़ की बड़ाइयों की इज़्ज़त बढ़ायें और इस इरादे में वह ज़रूर कामयाब हुए हैं ।

—ज़माना, अगस्त सन् १९०९

अकबर की शायरी पर एक नज़र

वली और मीर से लेकर अमीर और दाग़ तक उर्दू ज़बान ने जो रंग बदले हैं वह एशियाई शायरी के समझनेवालों से छिपे नहीं हैं। निस्संदेह शायरी की कल्पनाओं में ग़ालिब को छोड़कर कोई नया ढंग नहीं अपनाया गया। तो भी मुहावरों, बंदिशों और बयान के ढंग में अलग-अलग कवियों में स्पष्ट अंतर पाया जाता है। वली ने जिन विचारों को लिया है वे हैं तो बहुत ऊँचे लेकिन उनकी शैली और इस ज़माने की शैली में बड़ा अंतर है। मीर और सौदा और इंशा का रंग भी अलग-अलग है लेकिन भाव एक ही है यानी अधिकतर भाव फ़ारसी से मिलते हुए हैं और ऐसे भाव भी हैं जो फ़ारसी से उद्धृत नहीं कहे जा सकते। सैकड़ों मुहाविरे और तरकीबें फ़ारसी से भिन्न हैं। उर्दू के तमाम मशहूर उस्तादों ने फ़ारसी और अरबी की किताबें पढ़ी हैं और अरबी में अगर ज्ञान के सागर नहीं हैं तो कम से कम फ़ारसी और सर्फ़ ओ नह्व (व्याकरण) पढ़ी है क्योंकि इस ज्ञान के बिना रुचि का संस्कार नहीं हो सकता और उर्दू के कुछ कवि तो सचमुच बड़े आलिम-फ़ाज़िल थे मगर ये सब कल्पनाओं के गठन और अर्थ-सौन्दर्य में फ़ारसी कवियों का अनुकरण करते थे और उर्दू के पिछले उस्तादों का सामाजिक रहन-सहन भी पुराना और इस ज़माने से बिल्कुल अलग था। और दाग़ और अमीर ने जिस ज़माने में नाम हासिल किया उस ज़माने की तहज़ीब मीर वग़ैरह के ज़माने से हट गई थी लेक़िन वह उससे प्रभावित नहीं हुए और उसका बड़ा कारण यह था कि वह न खुद अंग्रेज़ थे और न उनकी सरकारें अंग्रेज़ी रुचि रखती थीं। इस वजह से उनकी शायरी का रंग पुराना था। लेकिन जनाब अकबर प्राचीन ज्ञान-विज्ञान के अलावा अंग्रेज़ी भाषा के भी विद्वान हैं और अपने इसी लगाव के कारण जनाब अकबर ने अपनी शायरी में जगह जगह अंग्रेज़ी भाषा के शब्दों को भी खपाया है और कहीं-कहीं बड़े प्यारे ढंग से खपाया है। हँसी-दिल्लगी के शेरों में यह तरकीबें सोने में सुहागा हो गई हैं लेकिन ज़्यादातर ग़ज़लें पुरानी कल्पनाओं की पाबन्दी के साथ कही गई हैं। अक्सर शेर मीर और मिर्ज़ा और ग़ालिब के रंग के हैं। कुछ ग़ज़लें जनाब अकबर ने अपने ख़ास रंग में कही हैं जो पाठक आगे चलकर देखेंगे।

आज की उर्दू शायरी एक अजीब कशमकश में गिरफ्तार है। अंग्रेज़ी शिक्षा का विचारों पर ऐसा चुम्बक जैसा प्रभाव पड़ा है कि लोग पुरानी बातों से तंग आ गये हैं। उर्दू कविता में यही हालत दिखाई देती है और आज के कवियों की साफ़-साफ़ दो श्रेणियाँ हो गई हैं। दाग़ और हाली के असर में उर्दू शायरों के दो परस्पर विरोधी स्कूल क़ायम हुए जो कई लिहाज़ से 'दरबारी' और 'मुल्की' के नाम से पुकारे जा सकते हैं। इन दोनों संप्रदायों में दो ध्रुवों की दूरी है। एक ने पुरानेपन की क़सम खा ली है और दूसरे हैं कि नई-नई बातों और आज़ादी पर मिटे हुए हैं। कविता की दुनिया में इन दोनों विरोधी संप्रदायों के कारण एक तरह का तहलका मचा हुआ है। मुल्क में एक तरफ़ तो शायरी के दरबार से उनको निकालने की फ़िक्र हो रही है उन्हें काफ़िर क़रार दिया जा रहा है और दूसरी तरफ़ उनके शायराना अधिकारों पर झगड़ा छिड़ा हुआ है। सामान्य कविता-प्रेमी इन दोनों को ज़रूरत से ज़्यादा जोशीला पाते हैं और खुद बीच का रास्ता पसन्द करते हैं। यही सबको अच्छा भी लगता है। इसमें शक नहीं कि पुराने क़िस्सों और रूपकों और उपमाओं को सिर्फ़ दुहराने से आधुनिक युग के लोग मुग्ध तो क्या संतुष्ट भी नहीं हो सकते। दिल शायरी से शब्दों के उलटफेर के सिवा कुछ और की भी उम्मीद रखता है। इसके साथ ही अभी बिल्कुल आज़ादी भी ठीक नहीं जो कविता के अनिवार्य बन्धनों का भी ध्यान न रक्खा जाय। निरे रूखे-सूखे उपदेश दिल क़ुबूल नहीं करता। कविता से लोग फ़ायदे की बनिस्बत खुशी की ज़्यादा उम्मीद रखते हैं मगर इस पहलू को बिल्कुल भुला देना भी ठीक नहीं।

खुशी की बात है कि इन दोनों संप्रदायों के बीच कुछ ऐसे कवि भी हैं जिन्होंने भाषा और कविता पर पूर्ण अधिकार रखने के साथ-साथ युग की आवश्यकताओं को भी अच्छी तरह अनुभव कर लिया है और उनमें हम जनाब खान बहादुर सैयद अकबर हुसैन साहब जज इलाहाबाद का दर्जा बहुत ऊँचा पाते हैं। आपने युग के विचारों और आवश्यकताओं का सही अंदाज़ा कर लिया है। उनकी शायरी में दोनों रंग उचित मात्रा में मिलते हैं और इसी वजह से आपकी शायरी खास और आम सबको इतनी ज़्यादा पसंद है। आपको दिलचस्पी और दिलफ़रेबी के लिहाज़ से पुरानी शायरी का ढंग भी आता है और इसके साथ ही विचारों में उसकी संकीर्ण सीमाओं का बन्धन भी स्वीकार नहीं। इसी वजह से आपकी शायरी मौजूदा कसौटी पर खरी उतरती है। उसमें बात कहने के एशियाई ढंग में पश्चिमी विचारों के सुन्दरतम नमूने मिलते हैं। आधुनिक जीवन की विभिन्न समस्याओं पर भी आपने शिक्षा दी है और सहानुभूति

दिखलाई है। मानव भावनाओं की भी झलक आपकी शायरी में रहती है और क्या अजब है कि कुछ दिनों में देश के विभिन्न प्रभाव आपकी काव्य-शैली पर स्थायी रूप से छा जायँ और इस तरह काव्य-क्षेत्र के वर्तमान विरोधी संप्रदाय मिलकर एक हो जायें। मगर फ़िलहाल कशमकश जारी है और इसको जनाब अकबर ने बड़े मज़ेदार ढंग से बयान किया है—

क़दीम वज़्अ पे क़ायम रहूँ अगर अकबर
तो साफ़ कहते हैं सैयद यह रंग है मैला
जदीद तर्ज़ अगर इख़्तियार करता हूँ
ख़ुद अपनी क़ौम मचाती है शोर वावेला
जो एतदाल की कहिए तो वो इधर न उधर
ज़्यादा हद से दिये सबने पाँव हैं फैला
इधर ये ज़िद है कि लेमनड भी छू नहीं सकते
उधर ये ज़िद है कि साक़ी, सुराहिए मै ला
इधर है दफ़्तरे तदबीर व मसलहत नापाक
उधर है वहिए विलायत की डाक का थैला
ग़रज़ दोगूना अज़ाबस्त जाने मजनूं रा
बलाये सोहबते लैला व फ़ुरक़ते लैला

मगर इस मुशकिल को अकबर ने बड़ी खूबसूरती के साथ आसान कर दिखाया है और हर आदमी अपनी रुचि के अनुसार आपकी शायरी में से शेरों का चुनाव कर सकता है। इश्क़ और मुहब्बत की जिन भावनाओं को आपने कविता में व्यक्त किया है वह बड़ी खूबी से कविता में आये हैं। ग़ज़ल का रंग ऐसा प्यारा है कि आशिक़ मिज़ाज कविता-प्रेमी आपकी शायरी पढ़कर बेचैन हो सकता है। कविता में सहजता ही वह चीज़ है जो दिलों को अपनी तरफ़ खींचती है। जनाब अकबर के दीवान में अक्सर शेर तीर और नश्तर का काम देने वाले हैं। शेरों का आशय स्पष्ट है और अतिशयोक्ति भी कल्पनातीत नहीं है बल्कि बड़े अच्छे ढंग से आयी है। वह तमाम खूबियाँ जो एक सिद्धहस्त और अच्छे कवि की कविता में होनी चाहिए आपके कुल्लियात में मौजूद हैं।

आपका कुल्लियात (सम्पूर्ण रचनाओं का संग्रह) चालीस साल की मेहनत का नतीजा है। ग़ज़लें, रुबाइयाँ, क़ते और मसनवियाँ, हँसानेवाले और दूसरे फुटकर शेर, वह इन सब का एक दिलचस्प संग्रह है। यह ज़रूर है कि कुल्लियात में संकलन की दृष्टि से ऐसे कुछ दोष हैं कि दूसरे संस्करण में उनका संशोधन कर देना चाहिए। लेकिन इस बात को असल कविता से अधिक

प्रयोजन नहीं है। कविता-मर्मज्ञ और आलोचक तो काव्य की खूबियों को देखता है और इस लिहाज़ से यह कुल्लियात बहुत ही क़द्र के क़ाबिल है। इसके प्रकाशन से एशियाई शायरी में आधुनिक युग के अनुसार उचित अभिवृद्धि हुई है। कुछ चुने हुए शेर सुनिए—

मेरी हक़ीक़ते हस्ती ये मुश्ते खाक नहीं
बजा है मुझसे जो पूछे कोई पता मेरा

सचमुच यह शेर अपने अर्थ की दृष्टि से बहुत सारगर्भित है। सचमुच इंसान की हस्ती सिर्फ़ मुट्ठी भर राख ही नहीं। ज्ञानी मुट्ठी भर राख की असलियत को समझ सकता है और इसी वास्ते एक इस्लामी लीडर या पेशवा ने कहा है मन अरफ़ा नफ़्सहू, फ़क़द अरफ़ा रब्बहू। याना जिसने अपनी आत्मा को पहचाना उसने अपने परमात्मा को पहचाना। दूसरा मिसरा साफ़ है और हक़ीक़त के तलबगार तो चाहते हैं कि काश वह उस रहस्य को खोले। एक उर्दू शेर में यह नाजुक ख़याल पैदा करना मामूली बात नहीं।

इस्लाम के पैग़म्बर को स्तुति में यह शेर खूब कहे हैं—

दुरफ़िशानी ने तेरी क़तरों के दरिया कर दिया
दिल को रौशन कर दिया आँखों को बीना कर दिया
खुद न थे जो राह पर औरों के हादी बन गये
क्या नज़र थी जिसने मुर्दा को मसीहा कर दिया

दोस्त

दिल मेरा जिससे बहलता कोई ऐसा न मिला
बुत के बंदे मिले अल्लाह का बंदा न मिला

प्रेम की बेसुधी

वाह क्या राह दिखाई है हमे मुर्शिद ने
कर दिया काबे को गुम और कलीसा न मिला

इसी ज़मीन में दो हास्यरस के शेर हैं :

रंग चेहरे का तो कालिज ने भी रक्खा क़ायम
रंगे बातिन में मगर बाप से बेटा न मिला
सैयद उट्ठे जो गज़ट लेकर तो लाखों लाये
शेख़ कुरआन दिखाते फिरे पैसा न मिला

अगर यह शेर ग़ज़ल से अलग किसी नज़्म में शामिल किये जाते तो दिलचस्पी बढ़ जाती मगर जनाब अकबर की बेतकल्लफ़ तबीयत ने इसका ख़याल नहीं किया।

॥ विविध प्रसंग ॥

आशिक़ाना रंग में यह शेर तारीफ़ के क़ाबिल हैं और ख़ूबी यह है कि इनमें तसव्वुफ़ की झलक भी मौजूद है—

गुन्चये दिल को नसीमे इश्क़ ने वा कर दिया
मैं मरीज़े होश था मस्ती ने अच्छा कर दिया
दीन से इतनी अलग हद्दे फ़ना से यूँ क़रीब
इस क़दर दिलचस्प क्यूँ फिर रगे दुनिया कर दिया
सबके सब बाहर हुए वहमो ख़िरद होशोतमीज़
ख़ानये दिल में तुम आओ हमने परदा कर दिया

ईश्वर एक है

तसव्वुर उसका जब बँधा तो फिर नज़र में क्या रहा
न बहसे ईनो आँ रही न शोरे मासेवा रहा

आज़ादी

जो मिल गया वो खाना दाता का नाम जपना
इसके सिवा बताऊँ क्या तुमसे काम अपना

आशिक़ाना

अक़्ल को कुछ न मिला इल्म में हैरत के सिवा
दिल को भाया न कोई रंग मुहब्बत के सिवा
बढ़ने तो ज़रा दो असरे जज़बये दिल को
क़ायम नहीं रहने का ये इनकार तुम्हारा
बाइसे तसकीं न था बाग़े जहाँ का कोई रंग
जिस रविश पर मैं चला आख़िर परीशाँ हो गया

जनाब अकबर ने यह शेर ख़ूब कहा है और गोया ग़ालिब के मज़मून को दूसरे ढंग से नज़्म में बाँधा है—

बूये गुल नालये दिल दूदे चिराग़े महफ़िल
जो तेरी बज़्म से निकला सो परीशाँ निकला

बुढ़ापे की शिकायत

बस यही दौलत मुझे दी तूने ऐ उम्रे अज़ीज़
सीना इक गंजीनए दाग़े अज़ीज़ाँ हो गया
है ग़ज़ब जलवा तेरे दैरे फ़ानी का
पूछना क्या है उसके बानी का
होश भी बार है तबीयत पर
क्या कहूँ हाल नातवानी का

मआरिफ़त (ब्रह्मज्ञान)

नसीम मस्ताना चल रही है चमन में फिर रुत बदल रही है
सदा ये दिल से निकल रही है वही है ये गुल खिलानेवाला

वैराग्य

खुदी गुम कर चुका हूँ अब खुशी व ग़म से क्या मतलब
ताल्लुक़ होश से छोड़ा तो फिर आलम से क्या मतलब
जिसे मरना न हो वह हश्र तक की फ़िक्र में उलझे
बदलती है अगर दुनिया तो बदले हमसे क्या मतलब
मेरी फ़ितरत में मस्ती है हक़ीक़त में है दिल मेरा
मुझे साक़ी की क्या हाजत है जामे जम से क्या मतलब

दिल हो वफ़ा-पसंद नज़र हो हया-पसंद
जिस हुस्न में यह वस्फ़ हो वह है खुदा-पसंद
तोड़ों प तेरे झूमने लगती है शाखे गुल
बेहद है तेरा नाच मुझे ऐ सबा पसंद

उर्दू के सिलसिले में कुछ फ़ारसी ग़ज़लें भी दर्ज कर दी गई हैं और इंसाफ़ यह है कि जनाब अकबर फ़ारसी में भी एक फ़ारसीदाँ की हैसियत से कहते हैं। दो-एक शेर मुलाहिज़ा हों—

वक़्ते बहारे गुल दिलम अज़् होश दूर बूद
मौजे नसीम दुश्मने शमये शऊर बूद
यक जलवा गरदद सूरते परवाना सोख़्तम
आरी हमीं इलाज दिले नासुबूर बूद
खुश बूद आँ ज़माँ खुदी अज़ खुद ख़बर न दाश्त
होशम ब ख़्वाब बूद दिलम अज़ हुज़ूर बूद

उर्दू

मौक़ूफ़ कुछ नहीं है फ़क़त मैपरस्त पर
ज़ाहिद को भी है वज्द तेरी चश्मे मस्त पर
उस बावफ़ा को हश्र का दिन होगा रोज़े वस्ल
क़ायम रहा जो दह्र में अहदे अलस्त पर

नई तरकीब और दिल्लगी के रंग में यह शेर मुलाहिज़ा हो—

मैले नज़र है ज़ुल्फ़े मिसे कज कुलाह पर
सोना चढ़ा रहा हूँ मैं तारे निगाह पर

॥ विविध प्रसंग ॥

आशिक़ी और उम्मीद

तबा करती है तेरे इश्क़ की ताईद हनोज़
इन जफ़ाओं पे भी टूटी नहीं उम्मीद हनोज़

दूसरा शेर अक्सर हिन्दुस्तानियों के हाल के मुताबिक़ है—

न खुशी होती है दिल को न तबीयत को उभार
फिर भी सालाना किये जाते हैं हम ईद हनोज़

विरह की रात का दृश्य

विरह की रात का काल्पनिक चित्र कवियों ने अलग-अलग ढंग से उतारा है। ग़ालिब ने इस ख्याल को यूँ नज़्म किया है—

दाग़े फ़िराक़े सोहबते शब की जली हुई
एक शम्ग्र रह गई है सो वह भी खमोश है

जनाब अकबर ने भी इस खयाल को बड़े पुरअसर अंदाज़ से बिठाया है—

नहीं कोई शबे तारे फ़िराक़ में दिलसोज़
खमोश शम्अ है खुद जल रहे हैं शाम से हम
निगाहे पीरे मुग़ाँ कहती है मुरीदों से
रहे सलूक में वाक़िफ़ हैं हर मुक़ाम से हम

जनाब अकबर का यह शेर हाफ़िज़ शीराज़ी के इस शेर से मिलता-जुलता है—

ब मय सज्जादा रंगीं कुन गरत पीरे मुग़ाँ गोयद
के सालिक बेखबर न बुवद ज़े राहो रस्मे मंज़िलहा

ज़माने का इंक़लाब

फ़लक के दौर में हारे हैं बाज़ीए इक़बाल
अगरचे शाह थे बदतर हैं अब गुलाम से हम

नाज़ुक खयाली

मेरी बेताबियाँ भी जुज़्व हैं इक मेरी हस्ती की
ये ज़ाहिर है कि मौजें खारिज अज़ दरिया नहीं होतीं

दिल की उदासी

हुआ हूँ इस क़दर अफ़सुर्दा रंगे बाग़े हस्ती से
हवाएं फ़स्ले गुल को भी निशात-अफ़ज़ा नहीं होतीं
क़ज़ा के सामने बेकार होते हैं हवास अकबर
खुली होती हैं गो आँखें मगर बीना नहीं होतीं

आज़ादी के लाले

इतनी आज़ादी भी ग़नीमत है साँस लेता हूँ बात करता हूँ

सच्चाई के रास्ते में कठिनाइयाँ

मआरिफ़त ख़ालिक़ की आलम में बहुत दुश्वार है
शह्रेतन में जब कि ख़ुद अपना पता मिलता नहीं

दोस्तों की याद

ज़िंदगानी का मज़ा मिलता है जिनकी बज़्म में
उनकी क़ब्रों का भी अब मुझको पता मिलता नहीं

परदेश की बेकसी

बेकसी मेरी न पूछ ऐ जादए राहे तलब
कारवाँ कैसा कि कोई नक़्शे पा मिलता नहीं
यूँ कहो मिल आऊँ उनसे लेकिन अकबर सच ये है
दिल नहीं मिलता तो मिलने का मज़ा मिलता नहीं

आशिक़ाना ज़िन्दगी

दिल ज़ीस्त से बेज़ार है मालूम नहीं क्यूँ
सीने पै नफ़्स बार है मालूम नहीं क्यूँ
जिससे दिले रंजूर को पहुँची है अज़ीयत
फिर उसका तलबगार है मालूम नहीं क्यूँ
अंदाज़ तो उश्शाक़ के पाये नहीं जाते
अकबर जिगर अफ़गार है मालूम नहीं क्यूँ

नीचे लिखी हुई तरह में आपने एक लंबी ग़ज़ल लिखी है और ख़ूब-ख़ूब शेर निकाले हैं। ग़ालिबन यह ग़ज़ल मुशायरे में कही है। यह सारी ग़ज़ल बहुत सजी हुई है। दो-तीन शेर मुलाहिज़ा हों—

हिज्र की रात यूँ हूँ मैं हसरते क़ूयेयार में
जैसे लहद में हो कोई हश्र के इंतज़ार में
रंगे जहाँ कि शाद काश मेरी भी यूँ ही हो बसर
जैसे गुलो नसीम की निभ गई आह प्यार में
आँख की नातवानियाँ हुस्न की लनतरानियाँ
फिर भी हैं जाँफ़िशानियाँ कूचए इंतज़ार में

सदाचार की शिक्षा

आइना रख दे बहारे ग़फ़लत अफ़ज़ा हो चुकी
दिल सँवार अपना ज़माना भी ख़ुद-आरा हो चुकी

ख़ानए तन की ख़राबी पर भी लाज़िम है नज़र
ज़ीनते आराइशे क़स्रे मुअल्ला हो चुकी
बेख़ुदी की देख लज़्ज़त करके तर्के आरज़ू
हो चुकी हद्दे हवस मश्क़े तमन्ना हो चुकी
चल बसे याराने हमदम उठ गये प्यारे अज़ीज़
आख़िरत की अब कर अकबर फ़िक्रे दुनिया हो चुकी

एयादत को आये शिफ़ा हो गई
अलालत हमारी दवा हो गई
पढ़ी यादे रुख़ में जो मैंने नमाज़
अजब हुस्न के साथ अदा हो गई
बुतों ने भुलाया जो दिल से मुझे
मेरे साथ यादे ख़ुदा हो गई
मरीज़े मुहब्बत तेरा मर गया
ख़ुदा की तरफ़ से दवा हो गई
न था मंज़िले आफ़ियत का पता
क़नाअत मेरी रहनुमा हो गई
इशारा किया बैठने का मुझे
इनायत की आज इंतहा हो गई
दवा क्या कि वक़्ते दुआ भी नहीं
तेरी हालत अकबर ये क्या हो गई

दुनिया की हक़ीक़त

दो आलम की बिना क्या जाने क्या है
निशाने मासेवा क्या जाने क्या है

ईश्वर एक है

मेरी नज़रों में है अल्लाह ही अल्लाह
दलीले मासेवा क्या जाने क्या है

जुनूने इश्क़ में हम काश मुबतिला होते
ख़ुदा ने अक़्ल जो दी थी तो बाख़ुदा होते

ज़बान का लुत्फ़

ये ख़ाकसार भी कुछ अर्ज़े हाल कर लेता
हुज़ूर अगर मुतवज्जो इधर ज़रा होते

॥ अकबर की शायरी पर एक नज़र ॥

ये उनकी बेख़बरी ज़ुल्म से भी अफ़ज़ूँ है
अब आरज़ू है कि वो मायले जफ़ा होते

संसार की असारता

दो ही दिन में रुखे गुल ज़र्द हुआ जाता है
चमने दह्र से दिल सर्द हुआ जाता है

प्रेम से होड़

मेरे हवास इश्क़ में क्या कम हैं मुंतशर
मजनूँ का नाम हो गया क़िस्मत की बात है

हुस्न औ इश्क़ के ताल्लुक़

सौ रंगे तसव्वुर में हम ऐ जान दर आए
हर रंग में तुम आफ़ते ईमां नज़र आए

आशिक़ाना

दम लबों पर था दिलेज़ार के घबराने से
आ गई जान में जान आप के आ जाने से

ज़माने का इंक़लाब और एकता का लोप

कल तक मुहब्बतों के चमन थे खिले हुए
दो दिल भी आज मिल नहीं सकते मिले हु ए

तुम्हीं से हुई मुझको उल्फ़त कुछ ऐसी
न थी वरना मेरी तबीयत कुछ ऐसी
गिरे मेरी नज़रों से ख़ूबाने आलम
पसंद आ गई तेरी सूरत कुछ ऐसी

नीचे के ग़ज़ल में क़ाफ़िया और रदीफ़ किस क़दर चुस्त है। नाज़ुक ख़याली के साथ तग़ज़्ज़ुल की शान भी देखने क़ाबिल है—

ये दर्दे दिल भी न था सोज़िशे जिगर भी न थी
इन आफ़तों की तो उल्फ़त में कुछ ख़बर भी न थी
ज़मानासाज़ी है अब यह कि मुंतज़िर था मैं
हमारे आने की तुमको तो कुछ ख़बर भी न थी
लिपट गये वो गले से मेरे तो हैरत क्या
वह संगदिल भी न थे आह बेअसर भी न थी
शहीदे जल्वये मस्ताना हो गया शबे वस्ल
ख़ुशी नसीब में आशिक़ के रात भर भी न थी

यहाँ तक जो कुछ चुना गया वह ग़ज़ल के पुराने रंग को लिये हुए है।

॥ विविध प्रसंग ॥

अकबर ने हुस्नो-इश्क़, माशूक़ की शोखी और ज़िद सब चीज़ों पर खूब-खूब लिखा है मगर हम उस प्रसंग में लेख के लंबे हो जाने के डर से अब इतना उद्धरण देना काफ़ी समझते हैं और अब आपकी शायरी की उस विशेषता की ओर ध्यान देते हैं जिसने आपको आज के शायरों का सरदार बना दिया है और जिसने आपकी शायरी को एक निराली और बहुत प्यारी शान दे दी है। हमारा मतलब आपकी हँसी-दिल्लगी के रंग की शायरी से है जो आपकी तमाम रचनाओं में पाई जाती है और जिससे आपकी नसीहतें बहुत सुहानी और पुरअसर और आपको लताड़ दिल में बहुत घर करनेवाली और कामयाब होती है। संयोग कहिए या भगवान की इच्छा कहिए आपका जन्म देश के बौद्धिक उत्थान की दृष्टि से भारतीय इतिहास के एक नाजुक ज़माने में हुआ है जिसमें दो शानदार ताक़तवर तहज़ीबों की कशमकश हो रही है। एक तरफ़ पश्चिमी सभ्यता का सिक्का फिर रहा है दूसरी तरफ पूर्वी सभ्यता दिलों पर आधिपत्य जमाये हुए है। विचारों और सामाजिक रहन-सहन, ग़रज़ कि ज़िन्दगी के हर पहलू में उलट-पुलट का ज़माना है। अभी तक किसी हालत पर ठहराव की सूरत पैदा नहीं हो रही है और इसलिए तरह-तरह की बुराइयाँ दिखाई दे रही हैं और देशवासियों के विचारों और वार्तों, ज्ञान और आचार, धर्म और सामाजिकता, भावनाओं और संवेदनाओं में अजब विरोध और जल्दी-जल्दी होनेवाले परिवर्तन और तरह-तरह की एक-दूसरे की विरोधी चीज़ें दिखाई दे रही हैं। ऐसी हालत में एक प्यार से नसीहत करनेवाला आदमी दिल्लगी और मज़ाक़ से जो काम ले सकता है वह नीति और उपदेश के वाक्यों से संभव नहीं है और यही जनाब अकबर की हँसी-दिल्लगी का असल कारण है। इस रंग में उनकी शायरी ने जो कमाल हासिल किया है वह उर्दू में आज तक किसी को नसीब ही नहीं हुआ। एक लफ्ज़, एक फ़िक़रे में आप वह बात पैदा कर देते हैं* जो दूसरों से पन्ने के पन्ने रंग डालने पर भी मुमकिन नहीं। कुछ शेर तो बिल्कुल केसर की क्यारियाँ हैं। पोलीटिकल वाक़यात का भी आपने मज़ाक़ उड़ाया है—

कर्ज़न ओ किचनर की हालत पर जो कल
वह सनम तशरीह का तालिब हुआ

---

* मसलन् जब लार्ड कर्ज़न ने कलकत्ता यूनिवर्सिटी में आम एशियाई क़ौमों और खासकर हिन्दुस्तानियों पर झूठ बोलने का अभियोग लगाया तो आपने 'ज़माना' में क्या खूब लिखा था कि—

बेढब ये झूठ सच की छिड़ी हिन्द में बहस
झूठे हैं हम तो आप हैं झूठों के बादशाह

कह दिया मैंने कि है यह साफ़ बात
देख लो तुम ज़न पे नर ग़ालिब हुआ

वक्त की मुनासिबत

शेख़ साहब यह तो अपने अपने मौक़े की है बात
आप क़िब्ला बन गये मैं एस्क्वायर हो गया

इस ज़माने के नौजवानों के हाल पर ये शेर भी खूब कहा है—

परी के ज़ुल्फ़ में उलझा न रीशे वाइज़ में
दिले ग़रीब हुआ लुक़मा इम्तहानों का
वह हाफ़िज़ा जो मुनासिब था एशिया के लिए
ख़ज़ाना बन गया योरप की दास्तानों का

आसाइशे उम्र के लिए काफ़ी है
बीबी राज़ी हों और कलक्टर साहब

पर्दा और हिन्दुस्तानी

परदे में ज़रूर है तवालत बेहद
इंसाफ़-पसंद को नहीं चाहिए हट
तशबीह बुरी नहीं अगर मैं यह कहूँ
बेगम साहब पेचवां लेडी सिगरेट

हर रंग की बातों का मेरे दिल में है झुरमुट
अजमेर में कुलचा हूँ अलीगढ़ में हूँ बिस्कुट
पाबंद किसी मशरब ओ मिल्लत का नहीं हूँ
घोड़ा मेरी आज़ादी का अब जाता है बगटुट

बी शेख़ानी भी हैं बहुत ज़ीहोश
कहती हैं शेख़ से बजोशो ख़रोश
ख्वाह लुंगी हो ख्वाह हो तहमत
दर अमलकोश हरचे ख्वाही पोश

शमा से तशबीह पा सकते हैं यह ऐयाश अमीर
रात भर पिघला करें दिन भर रहें बालाए ताक़
मेरे मन्सूबे तरक़्क़ी के हुए सब पायेमाल
बीज मग़रिब ने जो बोया वह उगा और फल गया
बूट डासन ने बनाया मैंने एक मज़मूं लिखा
मुल्क में मज़मूं न फैला और जूता चल गया

कोठी में जम है न डिपाज़िट है बैंक्स में
क़ुल्लाश कर दिया मुझे दो चार थैंक्स में
पाइनियर के सफ़े अव्वल में जिसका नाम हो
मैं वली समझूँ जो उसको आक़बत की फ़िक्र हो

जाले दुनिया से बेख़बर हैं आप
गो तक़द्दुस मआब बेशक हैं
शेख़ जी पर यह क़ौल सादिक़ है
चाहे ज़मज़म के आ। मेंढक हैं

माशा अल्लाह वह डिनर खाते हैं
बंगाली भाई उनका सर खाते हैं
बस हम हैं ख़ुदा के नेक बंदे अकबर
उनकी गाते हैं अपने घर खाते हैं

मुवक्किल छुटे उनके पंजे से सब
तो बस क़ौमे मरहूम के सर हुए
पपीहे पुकारा किये पी कहाँ
मगर वह पिलीडर से लीडर हुए

शू मेकरो शुरू जो की एक अज़ीज़ ने
जो सिलसिला मिलाते थे बहराम गोर से
पूछा कि भाई तुम तो थे तलवार के धनी
मूरिस तुम्हारे आये थे ग़ज़नी व ग़ोर से
कहने लगे है इसमें भी एक बात नोक की
रोटी अब हम कमाते हैं जूती के ज़ोर से

अपने भाई के मुक़ाबिल किब्र से तन जाइए
ग़ैर का जब सामना हो बस कुली बन जाइए
चंदे की मजलिस में पढ़िए रो के क़ुरआने मजीद
मज़हबी महफ़िल में लेकिन मिस्ले दुश्मन जाइए

आपकी अंजुमन की है क्या बात
आह छुपती है वाह छपती है
अपनी गरह से कुछ न मुझे आप दीजिए
अख़बार में तो नाम मेरा छाप दीजिए

मुहताज और वकील ओ मुख़्तार हैं आप
सारे अमलों के नाज़बरदार हैं आप
आवारा ओ मुंतशर हैं मानिन्दे ग़ुबार
मालूम हुआ मुझे ज़मीन्दार हैं आप

पाठक देखें कि अकबर ने हँसी-मज़ाक़ में भी कैसी ख़ूबियाँ पैदा की हैं और सचमुच आधुनिक सभ्यता और समाज-व्यवस्था का ख़ाका खींच दिया है। इस रंग में सैकड़ों शेर लिखे हैं। हँसी-दिल्लगी के इस नये रंग में आपको बड़ी मेहनत करनी पड़ी होगी इसलिए कि यह हँसी-दिल्लगी का रंग बिल्कुल नया है।

ऊपर के उद्धरणों से पाठकों को मालूम हो गया होगा कि हज़रत अकबर राजनीति की बारीकियों में भी कैसी ख़ूबी के साथ मज़ाक़ के ढंग में अपनी बात कहते हैं। आपके विचार बिलकुल स्वतंत्र हैं। राष्ट्रीय मामलों में अनुचित जोश को बुरा समझते हैं। इसके साथ ही साथ ख़ुशामद और चापलूसी की पॉलिसी भी पसंद नहीं करते। कहते हैं—

मेरे नज़दीक यह पंजाब का बलवा भी बुरा
साथ ही इसके अलीगढ़ का ये हलवा भी बुरा
आप इज़हारे वफ़ा कीजिए तमकीन के साथ
लेट जाना भी बुरा नाज़ का जलवा भी बुरा

न निरे ऊँट हो न हो बुलडाग
न तो मिट्टी ही हो न हो तुम आग
चाल है एतदाल की अच्छी
साज़े हिकमत का जोड़ है यह राग

मगर नरम रास्ते पर चलने का मतलब यह नहीं कि आज की ज़माने की असलियत को सही तौर पर महसूस न किया जाय या उससे आँख बन्द कर ली जाय। आपने क्या ख़ूब कहा है—

यह बात ग़लत दारुस्सलाम है हिन्द
यह झूठ कि मुल्के लछमन ओ राम है हिन्द
हम सब हैं मुतीअ व ख़ैरख़्वाहे इंगलिश
योरप के लिए बस एक गोदाम है हिन्द

दिल उस बुते फ़िरंग से मिलने की शकल क्या
मेरी ज़बान और है उसकी ज़बान और

बंगाली हाथ में क़लम ले तो क्या
मुस्लिम जो मिसाले बज़्मे जम ले तो क्या

॥ **विविध प्रसंग** ॥

हिन्दी की नजात है निहायत मुश्किल
सौ मर्तबा मरके वो जनम ले तो क्या
या स्टेशन के बदले दूध चा और खाँड ले
या एजीटेशन के बदले तू चला जा माँडले

बहसे मुल्की में तो पड़ना है तेरी दीवानगी
पॉलिसी उनकी रहे क़ायम हमारी दिल्लगी

दिलचस्प हवायें सूए गुलशन पहुँचीं
जुल्फ़ें शिमले से ता-ब-दामन पहुँचीं
दुर्गाबाई से राजा जी जब रूठे
सदक़े होने को बी नसीबन पहुँचीं

आप हिन्दू-मुसलिम एकता की सख्त ज़रूरत को महसूस करते हैं और उस पर बड़े मज़ेदार और असर करनेवाले ढंग से जगह-जगह ज़ोर देते और अफ़सोस करते हैं कि—

वह लुत्फ़ अब हिन्दू व मुसलमाँ में कहाँ
अग़ियार उन पर गुज़रते हैं खंदाज़ना
झगड़ा कभी गाय का ज़बाँ की कभी बहस
है सख्त मुज़िर यह नुसखये गाओज़बाँ

फिर कहते हैं कि—

हिन्दू व मुस्लिम एक हैं दोनों
यानी ये दोनों एशियाई हैं
हम-वतन हम-ज़बाँ व हम-क़िस्मत
क्यों न कह दूँ कि भाई भाई हैं

समय की आवश्यकता को समझनेवाले एक विचारक की हैसियत से आप आपसी झगड़ों और दोनों की कमज़ोरियों को समझते हैं। आप जानते हैं कि आये दिन की आपस की होड़ और कनबतियाँ दिलों को एक-दूसरे से फेर रही हैं। दोनों—

चुग़लियाँ एक दूसरे की वक़्त पर जड़ते भी हैं
नागहाँ ग़ुस्सा जो आ जाता है लड़ पड़ते भी हैं
हिन्दू व मुस्लिम हैं फिर भी एक और कहते हैं सच
हैं नज़र आपस की हम मिलते भी हैं लड़ते भी हैं

कहता हूँ मैं हिन्दू व मुसलमाँ से यही
अपनी अपनी रविश पे तुम नेक रहो

लाठी है हवाए दहर पानी बन जाओ
मौजों की तरह लड़ो मगर एक रहो

आप एक जगह मज़ाक़ के ढंग में यहाँ तक कहते हैं कि एक को अपनी हज़ल छोड़ कर दूसरे के ज़टल तक में शरीक हो जाना चाहिए। इसमें यह ज़रूर होगा कि "न लाट साहब ख़िताब देंगे न राजा जी से मिलेगा हाथी" लेकिन "यह तो कोई न कह सकेगा तुम्हारे दुश्मन कहाँ, बग़ल में।"

आप समझते हैं और किस ख़ूबी से इस बात को कहते हैं कि क़ौम अपनी ही बाज़ुओं की ताक़त से उभर सकती है क्योंकि—

दुनिया में ज़रूरत ज़ोर की है और आप में मुतलक़ ज़ोर नहीं
यह सूरते हाल रही क़ायम तो अम्न की जा जुज़ गोर नहीं
ऐ भाइयो बाबू साहब से खिंचने का नहीं है कोई महल
गो नस्ले अलाउद्दीन में हो मसकन तो तुम्हारा ग़ोर नहीं

एक दूसरे राजनीतिक मसले को कैसे कविता के रूपक में बांधा है—

ऊँट ने गावों की ज़िद पर शेर को साझी किया
फिर तो मेंढक से भी बदतर सबने पाया ऊँट को
जिसपे रक्खा चाहते हो बाक़ी अपनी दस्तरस
मुँह में हाथी के कभी ऐ भाई वह गन्ना न दो

देश की उन्नति के सब अच्छे आंदोलनों के साथ आपको पूरी सहानुभूति है। आपकी शायरी में ऐसे शेर अक्सर मिलते हैं जो देश का काम करनेवालों के लिए मशाल बन सकते हैं। मज़ाक़ उड़ाने के क़ाबिल बातों का खाका उड़ाने के साथ-साथ अच्छे आंदोलनों के समर्थन में आप दिल भी किस तरह बढ़ाते हैं। स्वदेशी के आंदोलन पर क्या ख़ूब कहा है—

दाखिल मेरी दानिस्त में ये काम है पुन में
पहुँचायेगा कूते शजरे मुल्क के बुन में
तहरीके स्वदेशी पे मुझे वज्द है अकबर
क्या ख़ूब ये नगमा है छिड़ा देस के धुन में

आधुनिक सभ्यता के मजाक के क़ाबिल पहलुओं पर हम हज़रत अकबर के ख़याल ज़ाहिर कर चुके हैं। इस वक़्त चंदों की भरमार और अमली और असली काम की कमी इस नई सभ्यता की एक निराली शान है जिस पर हँसी आती है। रुपये का ज़ोर, रुपये का वक़्त-बेवक़्त ज़िक्र, इसके वसूल करने की भाँति-भाँति की युक्तियाँ—ग़रज़ इन सब बातों पर आपने ख़ूब ले-दे की है। आप

अलीगढ़ कालेज के संस्थापक के मित्रों में हैं मगर किसी के पिछलग्गू नहीं बल्कि बिल्कुल स्वतंत्र विचार के आदमी हैं और जिसमें जो कमज़ोरी देखते हैं इस तरह कह देते हैं कि किसी को बुरा भी न लगे और सब के कान भी खुल जायँ।

अलीगढ़ कालेज के नामी संस्थापक की आपने अक्सर मौक़ों पर बड़े ज़ोर से तारीफ़ की है मगर पकड़ की बातों पर मज़ाक़ भी खूब उड़ाया है। यहाँ पर हम सिर्फ़ कुछ बातों पर आपके हँसा देनेवाले रिमार्क और फब्तियाँ पाठकों के मनोरंजन के लिए पेश करते हैं—

कीजिए साबित खुश अखलाक़ी से अपनी खूबियाँ
यह नमूदे जुब्बा ओ दस्तार रहने दीजिए
ज़ालिमाना मशविरों में मैं नहीं हूँगा शरीक
ग़ ः ही को महरमे असरार रहने दीजिए
खुल गया मुझ पर बहुत हैं आप मेरे खैरख्वाह
खैर चन्दा लीजिए तूमार रहने दीजिए

असीरे दामे ज़ुल्फ़े पालिसी मुद्दत से बंदा है
फ़साहत नज्रे लेक्चर है रियासत नज्रे चंदा है

जज़िये को सिधारे हुए मुद्दत हुई अकबर
अलबत्ता अलीगढ़ की लगी एक यह पख है

अब कहाँ तक बुतकदे में सर्फ़े ईमाँ कीजिए
ता कुजा इश्क़े बुताने सुस्त पैमाँ कीजिए
है यही बेहतर अलीगढ़ जाके सैयद से कहूँ
मुझसे चंदा लीजिए मुझको मुसलमाँ कीजिए

जेब खाली फिरा किया बंदा
ले गये अहबाब इस क़दर चंदा

ईमान बेचने पे हैं अब सब तुले हुए
लेकिन खरीद हो जो अलीगढ़ के भाव से

शेख़ साहब चल बसे कालिज के लोग उभरे हैं अब
ऊँट रुखसत हो गये पोलो के घोड़े रह गये

ग़रज़ कहाँ तक चुनिए, उस युग-कवि ने ज़िन्दगी के हर पहलू पर बड़ी गहरी नज़र डाली है और मज़ाक़-मज़ाक़ में सब कुछ दिल में बैठा दिया है।

॥ अकबर की शायरी पर एक नज़र ॥

निजी बातों की भी कहीं-कहीं झलक मिल जाती है। हज़रत अकबर ने अपने कुल्लियात से जीवनचरित का काम नहीं लिया है तो भी कहीं-कहीं पर दिल के भावों के साथ एक-आध निजी विचार भी शामिल हो गये हैं। कई साल से आपको आँखों की सख्त शिकायत है—

कौंसिल से हर तरह का क़ानून आ रहा है
मतबे से हर तरह का मज़मून आ रहा है
लेकिन पढ़ूँ मैं क्योंकर आँखों की है यह हालत
अश्क आ रहे थे पहले अब खून आ रहा है

बिसारत ने कमी की इनहिताते उम्र में अकबर
बसीरत है तो आँखें मुझसे अब आँखें चुराती हैं

एक लम्बे अर्से तक आपके साहबजादे लंदन में और आप यहाँ, निश्चित अवधि के बाद उनकी जल्द वापसी के लिए बेचैन थे। अक्सर जगहों पर यह बेचैनी ज़ाहिर हो गई है—

हिन्द में मैं हूँ मेरा नूरे-नज़र लंदन में है
सीना पुरग़म है यहाँ लख़्ते जिगर लंदन में है
दफ़्तरे तदबीर तो खोला गया है हिन्द में
फ़ैसला क़िस्मत है ऐ अकबर मगर लंदन में है

अब हम इस लेख को समाप्त करते हैं। आपकी शायरी बहुत सी खूबियों का खज़ाना है और शायरी की उस कसौटी पर, जो आपने खुद अपने यहाँ क़ायम की है, पूरी उतरती है।

—ज़माना, सन् १९०९

गालियाँ

हर एक जाति का बोल-चाल का ढंग उसकी नैतिक स्थिति का पता देता है। अगर इस दृष्टि से देखा जाये तो हिन्दुस्तान सारी दुनिया की तमाम जातियों में सबसे नीचे नज़र आयेगा। बोलचाल की गम्भीरता और सुथरापन जाति की महानता और उसकी नैतिक पवित्रता को व्यक्त करती है और बदज़बानी नैतिक अन्धकार और जाति के पतन का पक्का प्रमाण है। जितने गन्दे शब्द हमारी ज़बान से निकलते हैं शायद ही किसी सभ्य जाति की ज़बान से निकलते हों। हमारी ज़बान से गालियाँ ऐसे धड़ल्ले से निकलती हैं कि जैसे उनका ज़बान पर आना एक ज़रूरी बात है। हम बात-बात पर गालियाँ बकते हैं और हमारी गालियाँ सारी दुनिया की गालियों से निराली, घृणित और गंदी होती हैं। हमीं हैं कि एक दूसरे के मुँह से माँओं, बहनों, बेटियों के बारे में गंदी से गंदी गालियाँ सुनते हैं और पैतरे बदलकर रह जाते हैं बल्कि बहुत बार हमें इसका एहसास भी नहीं होता कि हमारा कुछ अपमान हुआ है। जिन गालियों का जवाब किसी दूसरी क़ौम का आदमी तलवार और पिस्तौल से देगा उससे कई गुना घृणित और गंदी गालियाँ हम इस कान से सुन कर उस कान उड़ा देते हैं। हमारी गालियों से माँ, बहन, बीबी, भाई, कोई नहीं बचता। हम अपनी नापाक ज़बानों से इन पाक रिश्तों को नापाक करते रहते हैं।

यों तो गालियाँ बकना हमारा सिंगार है मगर खास तौर पर ज़बर्दस्त गुस्से की हालत में हमारी ज़बान के पर लग जाते हैं। गुस्से की घटा सर पर मँडलाई और मुँह से गालियाँ मूसलाधार मेह की तरह बरसने लगीं। अपने दुश्मन या विरोधी को दूर से खड़े खरी-खोटी सुना रहे हैं, आस्तीनें चढ़ाते हैं, पैतरे बदलते हैं, आँखें लाल-पीली करते हैं और सारा जोश चन्द नापाक गालियों पर खत्म हो जाता है। विरोधी की सत्तर पुश्तों को ज़बान की गंदगी से लथपथ कर देते हैं। उसी तरह विरोधी भी दूर ही से खड़ा हमारी गालियों का तुर्की बतुर्की जवाब दे रहा है। इसी तरह घंटों तक गाली-गलौज के बाद हम धीमे पड़ जाते हैं और हमारा गुस्सा पानी हो जाता है। इससे बढ़कर हमारे जातीय कमीनेपन और नामर्दी का सुबूत नहीं मिल सकता कि जिन गालियों को सुन कर हमारे खून में जोश आ जाना चाहिये उन गालियों को हम दूध की तरह पी जाते हैं। और

फिर अकड़कर चलते हैं कि जैसे हमारे ऊपर फूलों की वर्षा हुई है। यह भी जातीय पतन की एक देन है। जातीय पतन दिलों की इज़्ज़त और स्वाभिमान की चेतना मिटाकर लोगों को बेग़ैरत और बेशर्म बना देती है। जब अनुभूति की शक्ति मिट गई तो खून में जोश कहाँ से आये। जो कुछ थोड़ा-बहुत बासी कढ़ी का सा उबाल आता है उसका ज़ोर ज़बान से कुछ थोड़े से गंदे शब्द निकाल देने पर ही खत्म हो जाता है।

गुस्से की हालत में ज़बान की यह रवानी औरतों में ज़्यादा रंग दिखाती है। दो हिन्दुस्तानी औरतों की तू-तू मैं-मैं देखिए और फिर सोचिए कि जो लोग हमको अर्ध-बर्बर कहते हैं वे किस हद तक ठीक कहते हैं। कुंजड़े, खटिक, भठियारे यह सब जातियाँ ज़बानी गंदगी के लिए (क्या नैतिक गंदगी नहीं ?) ख़ास तौर पर मशहूर हैं। क्या-क्या गंदगियाँ उनकी ज़बान से निकलती हैं कि तौबा। जिन शब्दों की याद एक लज्जाशील स्त्री के गालों को लाज से लाल कर देगी वे शब्द इन औरतों की ज़बान से बेधड़क और मोटरकार की रवानी के साथ निकलते हैं। अब्बासी और दुलरिया ज़रा पुरज़ोर लहजे में विचारों का लेन-देन कर रही हैं। अब्बासी दुलरिया के बेटे को चबा जाती है। दुलरिया उसके शौहर को कच्चा खा जाती है। तब अब्बासी उसके दामाद को निगल लेती है। इसके जवाब में दुलरिया उसके दामाद को देवी की भेंट चढ़ा देती है। अब्बासी झुंझला कर दुलरिया के बूढ़े दादा की लम्बी दाढ़ी को जलाकर ख़ाक कर देती है क्योंकि इस ग़रीब के बदन में अब हड्डियों को छोड़कर गोश्त का नाम भी नहीं रहा वर्ना शायद उसे भी निगल जाती। दुलरिया जामे से बाहर होकर अब्बासी के सातों पुश्त के मुँह पर तारकोल लपेट देती है। बदक़िस्मती से यह रवानी अधिकांश श्रेणियों की औरतों में कमोबेश पाई जाती है, और यह गालियाँ उन गंदी नापाक गालियों के मुक़ाबले में कुछ भी नहीं हैं जो हम आये दिन बाज़ारों और गलियों में सुना करते हैं।

गालियों से हमें कुछ प्रेम-सा हो गया है। गालियाँ बकने और सुनने से हमारा जी ही नहीं भरता। साफ़-सुथरा मज़ाक़ हमारे यहाँ क़रीब-क़रीब ग़ायब है। मज़ाक़ जो कुछ है वह गाली-गलौज पर खत्म हो जाता है। हमने गालियाँ देने और सुनने के लिए रिश्ते मुक़र्रर कर लिये हैं। बीवी का भाई अपने बहनोई और बहनोई के दोस्त और उन दोस्तों के परिचितों और टोले-मुहल्ले के हर आदमी के लिए यकसाँ तौर पर फ़ोहश मज़ाक़ का निशाना है। जो होता है उसे अपनी हैसियत के हिसाब से गालियाँ देता है। उसकी बहनें और उसके घर की बड़ी-बूढ़ियाँ एक भी इस भेड़ियाधसान हमले से बेदाग़ नहीं रहने पातीं। इस ग़रीब

को गंदी-गंदी बातें सुनाना हर आदमी अपना हक़ समझता है। उसे गंदे शब्दों से पुकारना, उसे ललचाई नज़रों से देखना हर बड़े-बूढ़े का ज़रूरी काम है। उसी तरह जब कोई आदमी अपने ससुराल जाता है तो सारा मुहल्ला उसे गालियाँ सुनाता है। जवान लोग ख़ामख़ाह उसकी बहन से ब्याह करने पर आमादा होते हैं और बूढ़े उसकी माँ से औरत-मर्द का रिश्ता मिलाते हैं और यह बेहूदा बातचीत ज़िन्दादिली में दाख़िल समझी जाती है। शादियों में दूल्हे के साथ ससुराल में क़दम-क़दम पर ज़बानी और अमली मज़ाक किये जाते हैं। सालियाँ, सलहजें, सास सभी उसे गालियाँ देने और उसके मुँह से गालियाँ सुनने की तमन्ना रखती हैं। देवर-भौजाई की नोक-झोंक कौन नहीं जानता। भावज के साथ हर तरह की दिल्लगी जायज़ है। और वह दिल्लगी क्या है? गालियाँ। हमारे यहाँ गालियों का कुछ कम घृणित नाम दिल्लगी है।

हमारे देश में गालियाँ केवल गद्य में ही नहीं पद्य में भी दी जाती हैं। हम गालियाँ गाते हैं और वह भी ख़ुशी के मौक़े पर। अगर शोक के अवसर पर गालियाँ गाई जायें तो शायद उसकी यह व्याख्या की जा सके कि हम ज़ालिम आसमान और बेवफ़ा तक़दीर को कोस रहे हैं। लेकिन ख़ुशी के जलसों में गालियाँ गाना अनोखी बात है। हाँ, इन गालियों में वह शैतानियत, वह ख़ूँख़ारी और वह दिल को दुख पहुँचाने की बात नहीं होती जो गुस्से की हालत में गालियों में पाई जाती है। तब भी इन गीतों का एक-एक शब्द दिलों में गंदे ख़याल और गंदी भावनायें उभारता है। इसकी व्याख्या इसके सिवा और क्या की जा सकती है कि हमारा कामुक स्वभाव वासना उभारनेवाली गालियाँ सुनकर ख़ुश होता है। बारात दरवाज़े पर आई और गालियों से उसका स्वागत किया गया और फिर लोग उसके आतिथ्य-सत्कार में लग गये लेकिन ज्यों ही खाने का वक़्त आया, लोग हाथ-पाँव धो-धो कर पत्तलों पर कढ़ी-भात खाने बैठे कि चारों तरफ़ से गालियों की बौछार होने लगी और गालियाँ भी ऐसी-वैसी नहीं, पँचमेल, कि शैतान सुने तो जहन्नुम से निकल भागे। लोग सपड़-सपड़ भात खा रहे हैं, ढोल-मजीरे बज रहे हैं, वाह-वाह मची है और गालियाँ गाई जा रही हैं गोया पेट भरने के लिए भात के अलावा गालियाँ खाना भी ज़रूरी है। और है भी ऐसा ही। लोग ऐसे शौक़ से गालियाँ सुनते हैं कि शायद रामायण, महाभारत और सत्यनारायण की कथा भी न सुनी होगी। मुस्कराते हैं, मुग्ध हो कर गर्दन हिलाते हैं और एक दूसरे का नाम गंदगी में लिथेड़े जाने के लिए पेश करते हैं। जिन महाशयों के नाम इस तरह पेश होते हैं वे इसे अपना सौभाग्य समझते हैं। और दावत ख़त्म होने के बाद कितने ही ऐसे लोग बच रहते हैं जिनके दिल में गालियाँ खाने की

हवस बाक़ी रहती है। खुशनसीब है वह आदमी जो इस वक़्त गालियाँ खाता है। सारी बिरादरी की आँखें उसकी तरफ़ उठती हैं। बावजूद इस आदर-सम्मान के वह ग़रीब बड़े विनयपूर्वक गर्दन झुकाये हुए है। कहीं-कहीं घर की औरतें यह फ़र्ज़ अदा करती हैं लेकिन ज़्यादातर जगहों में डोमनियाँ यह पाक रस्म अदा करने के लिए बुलाई जाती हैं। नहीं मालूम ये गीत किसने बनाये हैं। किन्हीं-किन्हीं गीतों में शायरी का रंग पाया जाता है। क्या अजब है, किसी रौशन तबीयत के आदमी ने इसी रंग में अपने फ़न का कमाल दिखाया हो। इस गाने के लिए गानेवालियों को इनाम देना पड़ता है। दुनिया में हिन्दुओं के सिवा और कौन ऐसी जाति है जो गालियाँ खाये और गाँठ से रुपया खर्च करके। इस मैदान में कायस्थ लोग सभी फ़िरक़ों से बाज़ी ले गये हैं। उनके यहाँ बहुत ज़माना नहीं गुज़रा कि महफ़िलों में गालियाँ बक-बककर इल्मी लियाक़त दिखाई जाती थी। दूसरी जातियाँ शास्त्रार्थ और इल्मी बहसें करती हैं और कायस्थ हज़रात गंदी गालियाँ बकने में अपना पांडित्य दिखाते हैं। क्या उल्टी अक़्ल है! शुक्र है कि यह रिवाज अब कम होता जाता है वर्ना गाँव में किसी लड़के या लड़की की शादी ठहरी और गाँव भर के नौजवान और होनहार लड़के गालियों की ग़ज़लें याद करने लगते थे। हफ़्तों और महीनों तक गालियों को रटने के अलावा उन्हें कोई और काम न था। घर के बड़े-बूढ़े शाम को दफ्तर और कचहरी से लौटते तो लड़कों से यह गंदी ग़ज़लें सबक़ की तरह सुनते और लबोलहजा दुरुस्त करते। जब बच्चों को गालियाँ माँ के दूध के साथ पिलाई जायें तो जाति में नैतिक शक्ति क्योंकर आ सकती है।

गुस्से में हम गाली बकें, दिल्लगी में हम गाली बकें, गालियाँ बककर लियाक़त का ज़ोर हम दिखायें, गीत में गाली हम गायें—ज़िन्दगी का कोई काम इससे खाली नहीं, यहाँ तक कि धार्मिक मामलों में भी हमारे यहाँ गाली बकने की ज़रूरत है। दूसरे सूबों का हमें तजुर्बा नहीं मगर संयुक्त प्रांत के कुछ हिस्सों में दीवाली के दो दिन बाद दूज के रोज़ गाली बकनेवाली पूजा होती है। सारे गाँव या मुहल्ले की औरतें नहा-धोकर जमा होती हैं, ज़मीन पर गोबर का एक पुतला बनाया जाता है, इस पुतले के इर्द-गिर्द औरतें बैठती हैं और कुछ पान-फूल चढ़ाने के बाद गाली बकना शुरू कर देती हैं। यह त्योहार इसीलिए बनाया गया है। आज के दिन हर औरत का फ़र्ज़ है कि वह अपने प्यारों को गालियाँ दे। जो आज के दिन गालियों से बच जायेगा उसे साल भर के अंदर ज़रूर यमराज घसीट ले जायेंगे। गोया यमराज से बचने के लिए गालियों की यह मोटी दीवार उठाई गई है! हमने काल से लड़ने के लिए कैसा हथियार निकाला!

॥ विविध प्रसंग ॥

कहीं कहीं यह रिवाज है कि दूज के दिन बजाय अपने प्यारों के दुश्मनों को गालियाँ दी जाती हैं और गोबर का पुतला फ़र्ज़ी दुश्मन समझा जाता है। दुश्मन को खूब जी भर कोसने के बाद औरतें इस पुतले की छाती पर ईंट का एक टुकड़ा रख देती हैं और फिर उसे मूसल से कूटना शुरू करती हैं। इस तरह दुश्मन का निशान गोया हस्ती के सफ़े से मिटा दिया जाता है। गालियों से केवल धर्म ख़ाली था, वह कसर भी पूरी हो गयी।

हमारी रुचि इतनी विकृत हो गई है कि हममें से कितने ही शौक़ीन, रंगीन तबियत के लोग ऐसे निकलेंगे जो सुन्दरियों के मुँह से गालियाँ सुनना सबसे बड़ा सौभाग्य समझते हैं। बदज़बानी भी गोया हसीनों के नख़रे में दाखिल है। प्रेमी-जनों का यह सम्प्रदाय उस सुन्दरी को हरगिज़ प्रेमिका न कहेगा जिसकी ज़बान में शोख़ी और तेज़ी नहीं। ज़बान का शोख़ होना माशूक़ियत का सबसे ज़रूरी जुज़ समझा जाता है। मगर अफ़सोस कि ज़बान की शोख़ी का मतलब कुछ और ही ख़याल किया जाता है। अगर माशूक़ दिल्लगीबाज़ हाज़िरजवाब हो तब तो गोया चार चाँद लग गये। मगर हमारे यहाँ ज़बान की शोख़ी गाली बकने का दूसरा नाम है। मियाँ मजनूँ लैला से हुस्न का ज़कात तलब करते हैं। लैला तेवर बदलकर गाली दे बैठती है। मियाँ मजनूँ ज़रा और सरगर्म होते हैं तो लैला उनकी मैयत देखने की तमन्ना ज़ाहिर करने लगती है। इस गाली-गलौज का शुमार माशूक़ाना शोख़ी में दाख़िल है। जिस हालत में कि ज़बान से सच्चाई और आत्मीयता में डूबे हुए शब्द निकलने चाहिए उस हालत में हमारे यहाँ गाली-गलौज होने लगता है, और अक्सर निहायत गन्दा, फ़ोहश। मगर हमारे स्वर्ग-जैसे देश में ऐसे लोग भी हैं जिन्हें इन गालियों में मुहब्बत की दुगनी तेज़ शराब का मज़ा आता है और जिनकी महफ़िलें इस ज़बानी तेज़ी के बग़ैर सूनी और बेरौनक़ रहती हैं। हमारी तहज़ीब का ढंग ही निराला है। इसी नैतिक पतन ने हिन्दुस्तान को आज ऐसी बेग़ैरत और बेशर्म क़ौम बना रक्खा है।

विलायत में बिलिंग्सगेट नाम का एक बाज़ार है। वहाँ की बदज़बानी सारे इंगलिस्तान में मशहूर है और किताबों में उसकी मिसाल दी जाती है, मगर हमारे हिन्दुस्तान की मामूली बोलचाल के आगे बिलिंग्सगेट के मल्लाह भी शर्म से पानी-पानी हो जायेंगे।

गाली हमारा जातीय स्वभाव हो गई है। किसी इक्के पर बैठ जाइये और सुनिए कि इक्केवान अपने घोड़े को कैसी गालियाँ देता है ऐसी गंदी कि जी मतलाने लगे। वह ग़रीब घोड़ा और उसकी नेक माँ और बुजुर्ग बाप और नालायक़ दादा, सब इस नेकबख़्त औलाद की बदौलत गालियाँ पाते हैं। हिन्दुस्तान

ही तो है, यहाँ के जानवरों को भी गालियों से लगाव है। बैलगाड़ीवाला भी अपने बैलों को ऐसी ही फ़र्माइशी गालियाँ देता है। और तो था ही, सरकार बहादुर ने आजकल गालियाँ बकने के लिए एक महकमा क़ायम कर रक्खा है। इस महकमें में शरीफ़ज़ादे और रईसज़ादे लिये जाते हैं, उन्हें अच्छी अच्छी तनख्वाहें दी जाती हैं और रिआया के अमन-चैन की ज़िम्मेदारी उन पर रक्खी जाती है। इस महकमे के लोग गालियों से बात करते हैं। उनके मुँह से जो बात निकलती है, गंदी, घिनौनी। ये लोग गालियाँ बकना हुकूमत की निशानी और अपने ओहदे की शान समझते हैं। यह भी हमारी टेढ़ी अक़्ल की एक मिसाल है कि हम गाली बकने को अमीरी की शान समझते हैं। और देशों में ज़बान का सुथरापन और मिठास, चेहरे की गम्भीरता, शराफ़त और अमीरो के अंग समझे जाते हैं और हिन्दुस्तान में ज़बान की गंदगी और चेहरे का झल्लापन हुकूमत का जुज़ ख़याल किया जाता है। देखिए मोटे ज़मींदार साहब अपने असामी को कैसी गालियाँ देते हैं। जनाब तहसीलदार साहब अपने बावर्ची को कैसी खरी-खोटी सुना रहे हैं और सेठ जी अपने कहार पर किन गंदे शब्दों में गरम होते हैं, गुस्से से नहीं सिर्फ़ अपनी हुकूमत की शान जताने के लिए। गाली बकना हमारे यहाँ रईसी और शराफ़त में दाखिल है। वाह रे हम !

इन फुटकर गालियों से तबियत भरती न देख कर हमारे बुज़ुर्गों ने होली नाम का एक त्योहार निकाला कि एक हफ्ते तक हर खास व आम खूब दिल खोल कर गालियाँ देते हैं। यह त्योहार हमारी ज़िन्दादिली का त्योहार है। होली के दिनों में हमारी तबियतें खूब उभार पर होती हैं और हफ़्ते भर तक ज़बानी गंदगी का एक ग़ुबार-सा हमारे दिल व दिमाग़ पर छाया रहता है। जिसने होली के दिन दो-चार कबीर न गाये और दो-चार दर्जन गंदी बातें ज़बान से न निकालीं वह भी कहेगा कि हम आदमी हैं ! ज़िन्दगी तो ज़िन्दादिली का नाम है। लखनऊ में एक ज़िन्दादिल अख़बार है। वह भी होली में मस्त हो जाता है और मोटे-मोटे अक्षरों में पुकारता है—

आई होली आई होली, हमने अपनी धोती खोली

यह इस ज़िन्दादिल अखबार की ज़िन्दादिली है ! वह सभ्य और सुसंस्कृत रुचि का समर्थक समझा जाता है। लेकिन जिस देश में गालियों का ऐसा रिवाज हो वहाँ इसी का सुथरे मज़ाक़ में शुमार है। कुछ हिन्दी अख़बारों की ज़िन्दा-दिली उन दिनों अथाह हो जाती है। निरन्तर कबीरें छपती हैं और अधिकांश कबीरें शब्दों के अलंकार के पर्दे में गालियों से भरी हुई होती हैं। अगर किसी दूसरी क़ौम का आदमी इन दो हफ़्तों के हिन्दी अखबार उठाकर देखे तो शायद

दुबारा उनकी सूरत देखने का नाम न लेगा ! हमारे क़ौमी अख़बारों की यह हालत हो जाती है ।

तकिया कलाम के तौर पर भी गालियाँ बकने का रिवाज है और इस मर्ज़ में ज़्यादातर नीम-पढ़े लोग गिरफ्तार पाये जाते हैं। ये लोग कोई एक गाली चुन लेते हैं और बातचीत के दौरान में उसे इस्तेमाल करना शुरू करते हैं, यहाँ तक कि वह उनका तकिया कलाम हो जाती है और बहुत बार उनके मुँह से अनायास निकल पड़ती है। यह निहायत शर्मनाक आदत है। इससे. नैतिक दुर्बलता का पता चलता है और बातचीत की गंभीरता बिल्कुल धूल में मिल जाती है। जिन लोगों को ऐसी आदत पड़ गई हो उन्हें तबियत पर ज़ोर डालकर ज़बान में सफ़ाई पैदा करने की कोशिश करनी चाहिए।

क़िस्सा कोताह, हम चाहे किसी और बात में शेर न हों, बदज़बानी में हम बेजोड़ हैं। कोई क़ौम इस मैदान में हमको नीचा नहीं दिखा सकती। यह हम मानते हैं कि हममें से कितने ही ऐसे लोग हैं जिनकी ज़बान की पाकीज़गी पर कोई एतराज नहीं किया जा सकता मगर क़ौमी हैसियत से हम इस ज़बर्दस्त कमज़ोरी का शिकार हो रहे हैं। क़ौम की उन्नति या अवनति थोड़े से चुने हुए लोगों के निजी गुणों पर निर्भर नहीं हो सकती।

सच तो यह है कि अभी तक हमारे मार्गदर्शकों ने इस महामारी को जड़ से खोदने की सरगर्म कोशिश नहीं की, शिक्षा की मंदगति पर इसके सुधार को छोड़ दिया और जन साधारण की शिक्षा जैसी कुछ उन्नति कर रही है वह सूरज की तरह रौशन है। इस बात को दुहराने की ज़रूरत नहीं कि गालियों का असर हमारे आचरण पर बहुत ख़राब पड़ता है। गालियाँ हमारी बुरी भावनाओं को उभारती हैं और स्वाभिमान व लाज-संकोच की चेतना को दिलों से कम करती हैं जो हमको दूसरी क़ौमों की निगाहों में ऊँचा उठाने के लिए ज़रूरी है।

—ज़माना, दिसम्बर १९०९

भारतीय चित्रकला

भारत की राष्ट्रीय जागृति का सबसे महत्वपूर्ण और शुभ परिणाम वे बैंक और डाकखाने नहीं हैं जो पिछले कुछ सालों में स्थापित हुए और होते जाते हैं, न वे विद्यालय हैं जो देश के हर भाग में खुलते जाते हैं बल्कि वह गौरव जो हमें अपने प्राचीन उद्योग-धन्धों और ज्ञान-विज्ञान व साहित्य पर होने लगा है और वह आदर का भाव जिससे हम अपने देश की कारीगरी के प्राचीन स्मारकों को देखने लगे हैं। हम अब होमर और मिल्टन को कविता का सम्राट् नहीं मानते बल्कि सादी और कालिदास को। यही स्वाभिमान हर एक क्षेत्र में दिखायी देता है। हमारी प्राचीन मूर्तिकला और स्थापत्य कभी क़द्रदानी का मुहताज नहीं रहा। वह अब भी दुनिया में आश्चर्य की दृष्टि से देखा जाता है और उसके जो कुछ चिन्ह वक़्त की तबाही से बच रहे हैं वह इस कला में हमको हमेशा बेजोड़ साबित करते रहेंगे। मगर हमारी प्राचीन चित्रकला बहुत ज़माने से गुमनामी के गड्ढे में पड़ी रही और न सिर्फ़ योरप के छान-बीन करनेवालों ने यह नतीजा निकाल लिया था कि भारत में इस कला का कभी उन्नयन नहीं हुआ बल्कि हिन्दुस्तानी भी इस विचार में उनका साथ देने लगे थे। मगर इस राष्ट्रीय जागृति ने हमारा ध्यान इस कला की ओर उन्मुख कर दिया है और जहाँ कुछ साल पहले एक व्यक्ति भी ऐसा न था जो विश्वास के साथ कह सके कि हिन्दुस्तान ने इस कला में भी कमाल हासिल किया था वहाँ आज हज़ारों हिन्दुस्तानी ऐसे हैं जो अपनी प्राचीन चित्रकला का महत्व समझने लगे हैं, और वह आसानी से इस बात को हरगिज़ न मानेंगे कि इस ललित कला को कमाल पर पहुँचाने का सेहरा इटली के सर है। जिस दिमाग़ ने कविता और स्थापत्य में अपने चमत्कार दिखाये वह चित्रकला में कैसे न दिखाता। यह तीनों कलायें परस्पर इतनी सम्बद्ध हैं कि एक का उन्नति करना और दूसरे का जन्म ही न लेना असम्भव है यद्यपि यह सम्भव है कि कविता की तुलना में मूर्तिकला और चित्रकला की उन्नति अधिक दिनों में हो। बड़े संतोष की बात है कि इतने दिनों की बेख़बरी के बाद हमारे दिलों में इस कला का सम्मान करने का भाव उत्पन्न हुआ और इसके लिए हमको कलकत्ते के महान् चित्रकार बाबू अवनीन्द्र नाथ ठाकुर का कृतज्ञ होना चाहिए। उन्होंने प्राचीन पद्धति पर नये रंग का रोग़न देकर

भारत की नयी चित्रकला की नींव डाल दी है और योरोपियन चित्रकारों की नक़्क़ाली के कलंक से इस कला को बचा लिया है। उनके कई शिष्य जिनमें से कुछ के चित्र योरप और हिन्दुस्तान में बड़े सम्मान की दृष्टि से देखे गये हैं, उन्हीं पद चिन्हों पर चल रहे हैं। इस स्कूल का नैतिक मानदण्ड बहुत ऊँचा है, और वह अपने चित्रों पर राष्ट्र के सर्वोत्तम विचारों और भावों का प्रतिबिम्ब उत्पन्न कर देता है जो हर देश की चित्रकला की जान है। बाबू अवनीन्द्र नाथ के चित्र अधिकतर ऐतिहासिक और धार्मिक होते हैं। कालिदास के ऋतुसंहार के भी कई दृश्य आपने अपने ज़ोरदार क़लम से खींचे हैं। मगर यह चित्र चाहे साहित्यिक हों, चाहे ऐतिहासिक उनका सबसे बड़ा गुण यह है कि वे जातीयता की भावना से भरपूर होते हैं। सीलोन के प्रसिद्ध कला-मर्मज्ञ डा० आनन्द कुमारस्वामी ने भी हमारी चित्रकला को अंधेरे और गुमनामी के कोने से निकालने में ज़बर्दस्त कोशिश की है।

पिछले तीन-चार साल से आपने इसी विषय पर हिन्दुस्तान और योरप की नामी पत्रिकाओं में कई ज़ोरदार लेख लिखे हैं और प्राचीन चित्रकला के कितने ही ऐसे नमूने पेश कर दिये हैं जिनसे यह ख्याल जम जाता है कि इस कला में कभी हमको भी कमाल था। यह उन्हीं की ज़ोरदार आलोचनाओं का प्रभाव है कि योरप में हमारी चित्रकला की कुछ-कुछ चर्चा होने लगी है और शायद इस विषय पर आगे चलकर जो किताब लिखी जायगी उसका लेखक भारतीय चित्र-कला को इतनी उपेक्षा की दृष्टि से न देख सकेगा कि उसकी चर्चा ही न करे। इन्हीं महानुभावों की प्रेरणा और प्रभाव से लंदन के कुछ नामी चित्रकारों और आलोचकों ने एक संस्था स्थापित की है जिसका उद्देश्य यह है कि वह भारतीय चित्रकला की छान-बीन करे और योरप की कलारुचि में भारतीय चित्रों और भारतीय भावनाओं को समझने की योग्यता पैदा करे और हमारे प्राचीन चित्रों को जमा करने और प्रकाशित करने का प्रबन्ध करे। अभी हाल ही में मेजर बर्डवुड साहब ने भारतीय चित्रकला को बुरा-भला कहा था और इस धरती को उच्चकोटि की कला के पनपने के लिए हानिकर ठहराया था। यह महाशय बहुत दिनों तक हिन्दुस्तानी उद्योग-धन्धों के प्रशंसक रहे हैं और कई प्रामाणिक पुस्तकें इस विषय पर लिखी हैं। मगर जब आपकी वाणी से यह विचार निकले तो लोगों की आँखें खुलीं लेकिन उनका व्यावहारिक खंडन इसी संस्था के सदस्यों ने किया। उन्होंने अंग्रेज़ी पत्रों में एक लेख प्रकाशित किया जिसमें बर्डवुड की रुचि-हीनता की क़लई खोली गई थी। खेद है कि यह लेख जितने लोगों के नाम से प्रकाशित हुआ उनमें सिर्फ़ दो हिन्दुस्तानी नाम नज़र आते थे, बाक़ी सब अंग्रेज़ थे। ऐसी संस्था का

लंदन में स्थापित होना इस बात का प्रबल प्रमाण है कि भारतीय चित्रकला की खूबियों के पारखी जितने अंग्रेज़ हैं उतने हिन्दुस्तानी नहीं। हमारे शिक्षित देशवासी अपनी निजी व्यस्तताओं में इस हद तक फँसे हुए हैं कि उन्हें इन प्रश्नों की ओर ध्यान देने की ज़रा भी फुर्सत नहीं। इसका सबसे बड़ा कारण यह है कि हमारा शिक्षा-क्रम कलारुचि के संस्कार की ओर से बिलकुल उदासीन है और हमारी चेतनाओं में वह अनुभूति नहीं जो अपने पुरखों के बड़े कामों पर उत्साह और उमंग के साथ गर्व करे। क्या यह दुख की बात नहीं है कि योरप और अमरीका के पर्यटक जो कुछ हफ्तों के लिए हिन्दुस्तान आये वे अजन्ता और साँची का दर्शन करना अपना कर्तव्य समझें और हिन्दुस्तानियों को अपने पुरखों की कारीगरी के इन चमत्कारों को देखने की फ़ुर्सत न हो!

भारतीय चित्रकला ऐतिहासिक दृष्टि से तीन युगों में विभाजित होती है— प्राचीन, मध्य और आधुनिक। पहला युग ईसा के दो शताब्दी पूर्व से ईसा की सातवीं शताब्दी तक चलता है। यह युग बौद्धों के उदय और विकास का था। बौद्धों ने मूर्तिकला और स्थापत्य को जिस उत्कर्ष तक पहुँचाया उस पर आज सारी दुनिया के लोग अचरज करते हैं मगर जो अधिकार उन्हें चित्रकला पर प्राप्त था उसके बारे में आमतौर पर लोग नहीं जानते और न उस युग के चित्र इतनी संख्या में मिलते हैं जिनसे उनकी महान उपलब्धि का अनुमान सामान्यतः किया जा सके। इस युग के सबसे प्रसिद्ध और प्रशंसनीय स्मारक अजन्ता की गुफाओं के चित्र हैं। यह गुफायें जो संख्या में उन्नीस हैं शायद दूसरी और सातवीं शताब्दी के बीच बनायी गयीं और इन्हें बौद्धों की मूर्तिकला, स्थापत्य और चित्र-कला की प्रौढ़ता के आरम्भ और उत्कर्ष का इतिहास समझना चाहिए। आमतौर पर लोग यह जानते हैं कि यह गुफा निज़ाम की सल्तनत के दक्षिणी भाग में स्थित है। उस युग के चित्रकारों और मूर्तिकारों ने इस गुफा की छतों और दीवारों को अपनी उत्कृष्ट कला के नमूनों से सजाया था। मूर्तियाँ और बेल-बूटे अब तक अच्छी हालत में हैं किन्तु अधिकांश चित्र ज़माने की उदासीनता के कारण मिट गये फिर भी उनमें से कुछ अब तक क़ायम हैं। ये चित्र उस युग के सामाजिक रहन-सहन, आचार-विचार, और रीति-रिवाज के विशद इतिहास हैं। इन चित्रों में शरीर के अंगों का अनुपात, शिल्प की सहजता और भावनाओं की वास्तविकता अपने चरम शिखर पर पहुँची हुई है। योरप के कला-पारखियों ने दिल खोलकर इन चित्रों की प्रशंसा की है और उन्हें इटली के चौदहवीं सदी के चित्रों का समकक्ष ठहराया है। इन चित्रों का विषय अधिकतर बौद्ध धर्म से संबंध रखता है मगर कहीं-कहीं महत्वपूर्ण ऐतिहासिक और सांस्कृतिक स्थितियाँ भी बड़ी

खूबी से दिखायी गई हैं। उस युग की एक आश्चर्यजनक विशेषता यह है कि जहाँ कहीं उस युग के चित्र मिलते हैं उन सब में एक विशेष प्रकार का साम्य और सादृश्य मिलता है कि जैसे सब एक ही स्कूल के कारीगरों का काम हो। और यह साम्य केवल भारतवर्ष तक सीमित नहीं। सिगरिया नामक स्थान में जो सीलोन में स्थित है, छठीं और सातवीं शताब्दी के चित्र पाये गये हैं, वे अजन्ता के चित्रों से बहुत मिलते-जुलते हैं। जावा द्वीप में उस युग के चित्रों का पता चला है और उनमें भी वही सादृश्य और विशेषता पाई गई है। अधिकांश कलामर्मज्ञों का विचार है कि यह साम्य उससे जरा भी कम नहीं है जो आधुनिक योरपीय चित्रकला में पाई जाती है। योरप के रुचि-साम्य का रहस्य समझ में आ जाता है क्योंकि उसके अनगिनत साधन उपस्थित हैं, मगर उस पुराने युग में इस प्रकार का रुचि-साम्य जिन बातों पर आधारित था उनका अंदाज़ा लगाना कठिन है। चूँकि बौद्ध स्थापत्य और चित्रकला का जन्म-स्थान बिहार था इसलिए आवश्यक है कि बिहार के कारीगर हिन्दुस्तान के हर एक हिस्से में गये होंगे और सारे देश में एक ही रंग का रिवाज पैदा हुआ होगा जो सदियों तक क्रमिक विकास के साथ जारी रहा। मगर यह केवल साधारण अनुमान है जिसकी पुष्टि का कोई साधन उपस्थित नहीं है। सातवीं शताब्दी के बाद भारतीय चित्रकला के सुन्दर मुखड़े पर एक अंधेरा पर्दा-सा पड़ जाता है और मुग़ल बादशाहों के ज़माने तक उसका कुछ हाल नहीं मालूम होता, न इस बीच के दौर की तस्वीरें मिलती हैं जो अपनी ख़ामोश ज़बान से अपना कुछ क़िस्सा सुनायें। इस बीच में देश की बिलकुल कायापलट हो गई। बौद्ध धर्म जड़ से उखड़ गया है और उसके साथ उसका स्थापत्य, उसकी मूर्तिकला और चित्रकला ने भी भारतवर्ष को अंतिम नमस्कार कर लिया है। देश के उत्तरी भाग में इस्लामी आक्रमणकारियों ने पैर जमा लिये हैं और आख़िरकार मुल्क का बड़ा हिस्सा उनके अधिकार में आ गया है। इन बड़े-बड़े उलटफेरों के साथ-साथ तुर्रा यह कि हिन्दुस्तान के इन नये बादशाहों को चित्रकला से घृणा थी जिसे मौलवी लोग कुफ़् (पाप) ख़याल करते थे। ऐसी हालत में चित्रकला का विकास करना तो दूर की बात है ज़िन्दा रहना मुहाल था। कुछ तो उनके अत्याचारों और कुछ उस अशान्ति और हलचल से जो ऐसे सार्वदेशिक उलटफेरों का ज़रूरी नतीजा हुआ करती है, भारतीय चित्रकला अगर एक सिरे से मिट नहीं गई तो मिटने के क़रीब ज़रूर हो गई।

शहंशाह अकबर के ज़माने तक हमको इस कला के फलने-फूलने की तनिक भी सूचना नहीं मिलती। मगर अकबर का ज़माना हर तरफ़ तरक़्क़ियों का ज़माना था। चित्रकला ने भी इसमें अपना हिस्सा पाया। अकबर खुद पढ़ा-

लिखा न था मगर उसको प्रकृति ने वे योग्यताएँ प्रदान की थीं जिनमें पुस्तकीय ज्ञान कोई वृद्धि नहीं कर सकता। उसको संगीत और मूर्तिकला, इतिहास और साहित्य, चित्रकला और स्थापत्य से समान अनुराग था। फतेहपुर सीकरी में उसने जो इमारतें बनवाईं उनमें हिन्दू और मुसलमान स्थापत्य को इस खूबी से मिलाया है कि उसकी निगाह पर हैरत होती है। हिन्दू चित्रकारों की उसने बड़ी क़द्र की। एक मौक़े पर उसने उनके बारे में कहा था—"उनके चित्र हमारी कल्पना से परे होते हैं।" इससे पता चलता है कि जब तक हिन्दू चित्रकारों की कला में कुछ विशेष गुण न होते अकबर जैसा सूक्ष्मदर्शी व्यक्ति, जो फ़ारस की चित्रकला की महान उपलब्धियों से परिचित था, हरगिज़ ऐसा न कहता। चित्रकारों की उसकी सच्ची क़द्रदानी का सुबूत इन शब्दों से मिलता है—

"ऐसे बहुत से लोग हैं जो चित्रकला से घृणा करते हैं। मेरी दृष्टि में ऐसे लोगों का कुछ मूल्य नहीं। मुझे ऐसा लगता है कि चित्रकार को परमात्मा के ज्ञान के विशेष अवसर प्राप्त हैं क्योंकि जब चित्रकार जीवित प्राणियों की तस्वीरें उतारता और उनकी अंग-रचना को रेखाओं में बाँधता है तो उसके दिल में यह ख़याल जरूर आता है कि मैं काया में प्राण नहीं डाल सकता और इस तरह खुदा का बड़प्पन और उसकी जबर्दस्त ताक़त तस्वीर बनानेवाले के दिल में घर कर लेती है और वह योगी के पद पर पहुँच जाता है।"

फ़तेहपुर सीकरी के कुछ महलों की दीवारों पर, खासतौर पर अकबर के शयनकक्ष में, उस युग के चित्रों के कुछ मिटे हुए चिन्ह बाक़ी हैं मगर उनकी संख्या बहुत कम है। उस ज़माने की सबसे अनमोल यादगार किताबी तस्वीरें हैं। पढ़ने वालों को ऊपर मालूम होगा कि बौद्धों के युग में चित्र दीवारों पर बनाये जाते थे। काग़ज़ पर तस्वीर खींचकर, चौखटों से सजाकर उन्हें दीवारों पर लटकाने का रिवाज उस वक़्त क्या अकबर के ज़माने तक नहीं था। यह रिवाज योरप से आया है। मुग़लों के ज़माने तक दीवारों पर तस्वीर बनाने का रिवाज कमोबेश बाक़ी था मगर उसका पतन उसी ज़माने में शुरू हो गया। लिहाज़ा उस ज़माने की सब तस्वीरें किताबों की शक्ल में हैं। मगर उस पुराने रिवाज का हिन्दुस्तान में अब तक कुछ कुछ निशान बाक़ी है और अब भी पुराने ढंग के कुछ मकानों की दीवारों पर हाथी, घोड़े, ऊँट, मछली, सिपाही, प्यादे वग़ैरह की रंगीन तस्वीरें नज़र आ जाती हैं। हाँ, अब यह कला बहुत भोंड़े हाथों में आ गई है और इसके क़द्रदाँ अब बहुत थोड़े से लोग रह गये हैं। मुग़ल ज़माने की तस्वीरों का ज़िक्र करते हुए योरप का एक जाना-माना आलोचक लिखता है—

"उनके प्रकृति-चित्रण में वह उमंग और चाव है जो इस नये ज़माने के

प्राकृतिक दृश्यों के चित्रों में दिखाई देता है, और धूप-छाँव का सुहाना असर दिखाने में वे विशेष रूप से दक्ष थे। जहाँ चित्रकार ने इंसानों की तस्वीरें उतारीं वहाँ मानव-अंगों के सूक्ष्म निरीक्षण का प्रमाण मिलता है। उसकी पैनी दृष्टि, उसके निरीक्षण की स्वच्छता, रेखाओं पर उसका अधिकार और उसके चेहरे से मन की भावनाओं को प्रकट करने की योग्यता ने मिल-जुल कर ऐसी तस्वीरें बनायीं हैं जो पश्चिम के छोटे पैमाने की बेहतरीन तस्वीरों से आँख मिला सकती हैं।'

मगर अकबर का युग चित्रकला के चरम विकास का युग नहीं था। यह गौरव शाहजहाँ के युग को प्राप्त है। शाहजहाँ इस कला का बड़ा उत्साही पारखी था। मुग़ल खानदान के पतन और विनाश के साथ-साथ चित्रकला का भी पतन और विनाश हो गया। वह लूट-पाट जो इस खानदान के पतन के बाद देश में आयी, चित्रकला के लिए जानलेवा साबित हुई। अठारहवीं सदी के अंत तक इस कला की दशा रद्दी होती गई। आखिर उन्नीसवीं सदी में पश्चिमी सभ्यता और कला की अंधी गुलामी ने हमारी इस कला का क़िस्सा तमाम कर दिया।

मुग़ल ज़माने की ज़्यादातर तस्वीरें आम तौर पर ग़ैर-मज़हबी हैं। उनमें संसार के इतिहास के एक महान् युग की समाज-व्यवस्था और आचार का प्रतिबिम्ब मिलता है। कहीं चित्रकार इश्क़ और मुहब्बत की कहानी और लड़ाई के मैदानों और नाच-गाने की महफ़िलों की दास्तान सुनाता हुआ नज़र आता है, कहीं दरबार के अमीरों और उनके माशूक़ों की तस्वीरें और उनकी मज़ेदार सोहबतों का जलवा दिखाता है। कभी-कभी उसकी दृष्टि एकांत के उन अवसरों पर जा पहुँचती है जहाँ साधारण आँखों की पहुँच नहीं। कहीं पहलवानों के ताल ठोंकने की आवाज़ कानों में आती है और कहीं शिकार के मैदान का दृश्य आँखों के सामने आ जाता है। ब्रह्मज्ञान की सुरा पीनेवाले और उनके सुराही-प्यालों के दृश्य भी बीच-बीच में दिखाई दे जाते हैं। ग़रज़ यह कि उस युग की चित्र-कला शुरू से आखीर तक शाही दरबार के रंग में रँगी हुई है जिसका उद्देश्य शौक़ीन अमीरों की नर्म-नाज़ुक तबीयतों को खुश करना है। इन तस्वीरों में अक्सर यथार्थ-चित्रण अपनी सीमा पर पहुँच गया है। चित्रकार वास्तविकता पर ऐसा असलियत का रंग चढ़ाता है और ऐसे खास कोमल ढंग से कि कहीं गाने की महफ़िल की सुहानी पुकार कानों में आने लगती है, कहीं उन स्वर्ग से स्पर्धा करनेवाले बाग़ीचों की ठण्डी-ठण्डी हवा और फूलों की सुगन्ध दिलोदिमाग़ को ताज़ा कर देती है, जहाँ परिस्तान की परियाँ बारीक रेशमी कपड़े पहने गाने और सितार का लुत्फ़ उठा रही हैं।

इन चित्रों में एक और विशेषता उनके हाशिये की नफ़ीस सजावट है।

अक्सर बहुत अच्छे रंगों के ख़ूबसूरत फूल बनाये जाते थे जो उस ज़माने की संगमरमर की गुलकारियों से बहुत ही मिलते-जुलते हैं।

रंगों की मिलावट में उस युग के चित्रकारों को कमाल था। वह आम तौर पर पानी के रंग इस्तेमाल करते थे। उस ज़माने में कलाकार अपने रंग खुद बना लिया करते थे। बहुत बार वह रंग मिलाने के लिए बुरुश वग़ैरह यहाँ तक कि अपने मतलब का काग़ज़ भी खुद ही बना लेते थे। ज़मीन आमतौर पर सफेद चीनी मिट्टी से तैयार की जाती थी। कुछ नमूनों में सिर्फ स्केच या ख़ाका बनाकर संतोष कर लिया गया है।

इस मौक़े पर मुग़ल ज़माने की सिर्फ तीन तस्वीरें दी जाती हैं।*

पहली तस्वीर एक ऐतिहासिक घटना की है। जहांगीर का ज़माना है। फ़ारस से राजदूत आये हैं। उस ज़माने के रिवाज के मुताबिक़ राजदूत बादशाह के लिए बेशक़ीमत घोड़े और अनमोल तोहफ़े साथ लाये हैं। बादशाह सलामत अभी नहीं आये। दोनों राजदूत उनके इंतज़ार में सर झुकाये बैठे हैं। उनके चेहरे से सम्मान और सम्भ्रम प्रकट हो रहा है। नौबतख़ाने में शाही स्वागत का राग अलापा जा रहा है। दरबार के सहन में दरबारी बड़े अदब के साथ खड़े हैं। इस नक़ल से असल तस्वीर के कमाल का अंदाजा नहीं किया जा सकता मगर तस्वीर के देखने से दिल पर बादशाह के तेज और प्रताप का रोब पड़ता है। नौबतख़ाने का दृश्य चित्रकार के सूक्ष्म निरीक्षण का सुन्दर प्रमाण है।

दूसरी तस्वीर जहांगीर या शाहजहाँ के ज़माने के किसी मुंशी की है। इस तस्वीर में चित्रकार ने आकृति-चित्रण की कला को कमाल पर पहुँचा दिया है धूप और छांव ऐसे उस्तादी ढंग से मिलाये गये हैं कि तस्वीर में पत्थर की मूर्ति की शान आ गई है। चेहरे की गंभीरता बहुत उपयुक्त है और कंधों का झुकाव कहे देता है कि काग़ज़ों के बोझ ने मेरी यह गत बना रक्खी है। जिन लोगों को योरप के मशहूर पोर्ट्रेट बनानेवालों मसलन् रेम्ब्रान्ट की तस्वीरों की नक़लें देखने का मौक़ा मिला है वह खुद यह फैसला कर सकते हैं कि इस तस्वीर का उनके मुक़ाबले में क्या स्थान है।

तीसरी तस्वीर हिन्दू धार्मिक रंग में है। यह अकबर के ज़माने के हिन्दू चित्रकारों की श्रेष्ठ कला का नमूना है। रात का वक़्त है। तस्वीर में बड़ी आकर्षक गंभीरता और सुखदायी शांति मिलती है।

उमा अपनी दो सखियों के साथ शिव की पूजा के लिए आयी हैं। दाहिनी

---

* इस लेख के साथ 'ज़माना' के उस अंक में ये तीन रंगीन चित्र भी प्रकाशित हुए थे।—सं०

ओर शिवजी की मूर्ति सुशोभित है। ऊपर से पानी की एक पतली धार मूर्ति के ऊपर गिरती हुई दिखाई देती है। यह गंगा हैं जो पहले शिवजी के सिर से होकर ज़मीन पर आती हैं। उमा के चेहरे से वर्णनातीत भक्ति का भाव प्रकट हो रहा है और चित्र समग्र रूप से दर्शक के हृदय पर एक पवित्र शांतिदायक प्रभाव उत्पन्न करता है।

खेद है कि मुग़ल ज़माने और मध्य युग की भारतीय चित्रकला की अब तक योरपवालों और उनके साथ ही साथ हिन्दुस्तानियों ने वह क़द्र नहीं की जिसकी वह अधिकारी है। उनको जमा करने और उनके कमाल को ज़ाहिर करने की अब तक कोई बाक़ायदा कोशिश नहीं की गई। मगर इसका कारण यह हरगिज़ नहीं कि उस ज़माने के चित्र लुप्त हैं बल्कि यह कि जिनके बाप-दादों के विचार कल्पना और सामाजिक जीवन के भाण्डार वे चित्र हैं वे लोग ख़ुद उनकी ख़ूबियों और उनके महत्व से अपरिचित हैं। भारतीय चित्रकला पर अब तक जितनी पुस्तकें लिखी गई हैं वे सब योरपवालों ने लिखी हैं और यह स्वाभाविक बात है कि वे योरपीय चित्रकला की तुलना में भारतीयों की कला को नीचा समझें। यह बड़ी लज्जाजनक लेकिन सच बात है कि भारतीय कला के पारखी हिन्दुस्तान में इतने नहीं हैं जितने कि योरप में और शायद हिन्दवाले उस पर ग़ौर करना उस वक़्त तक न सीखेंगे जब तक कि योरपवाले उसकी सिफ़ारिश न करेंगे।

—ज़माना अक्तूबर १९१०

हिन्दू सभ्यता और लोक-हित

इसमें कोई सन्देह नहीं है कि ईसाई धर्म और पश्चिमी सभ्यता से ज़िन्दगी की खुशियों और सांसारिक सुख-सुविधाओं में बहुत कुछ वृद्धि हुई है और इन सुख-सुविधाओं का शुक्रिया दुनिया काफ़ी तौर पर ज़बान से नहीं अदा कर सकती। शिक्षा, शारीरिक रोगों का उपचार, अनाथों की सहायता इत्यादि कामों को पश्चिमी सभ्यता ने ज़ोर पहुँचाया है, इससे कोई सच्चाईपसन्द आदमी इनकार नहीं कर सकता। मगर जब यह कहा जाता है कि ईसाई धर्म के अवतरित होने से पहले यह सारी बातें हरेक दूसरे मज़हब में ग़ायब थीं या नाममात्र के लिए थीं तो यह ज़रूरी मालूम होता है कि इस ग़लत ख़याल को उचित और प्रामाणिक वृत्तान्तों और युक्तियों से काटा जाय। भौतिक सुख-सुविधाओं और ऐश्वर्य की दृष्टि से हिन्दुओं की प्राचीन सभ्यता का पल्ला सम्भव है हलका दिखाई पड़े। मगर आध्यात्मिक और नैतिक सम्पदाओं और आत्मोत्सर्ग तथा सहानुभूति की प्रेरणाओं की दृष्टि से हिन्दू क़ौम जिस शिखर पर पहुँच गयी थी वहाँ तक कोई पश्चिमी क़ौम नहीं पहुँच सकी और न उसके वर्तमान रंग-ढंग से यह आशा की जा सकती है कि वह भविष्य में भी इस शानदार सफलता के नज़दीक पहुँच सकेगी। वह ईसाई क़ौम जो बेज़बान और बेकस जानवरों के मारने को ज़िन्दगी की ज़रूरतों में दाखिल समझती है, जिसमें कम-से-कम पंचानबे आदमियों की ख़ूराक गोश्त है, जिस पश्चिमी क़ौम ने पशुओं की कितनी ही जातियों को दुनिया के पर्दे से मिटा दिया और जो अफ्रीका, अस्ट्रेलिया और अमरीका में हब्शियों के साथ ऐसी कायरों-जैसी क्रूरता से पेश आ रही है वह अपनी बाज़ू की क़ूवत, अपनी ताक़त और अन्य भौतिक उपलब्धियों पर चाहे जितना घमण्ड करे, मगर जब वह इतने पर संतोष न करके बुलन्द आवाज़ से पुकारती है कि अस्पताल, मदरसे, जानवरों के अस्पताल वग़ैरह ईसाई सभ्यता के आने के बाद अस्तित्व में आये तो वह तथ्यों के घेरे से बाहर हो जाती है। भौतिकता पश्चिमी सभ्यता की आत्मा है। अपनी ज़रूरतों को बढ़ाना और सुख-सुविधाओं के लिए आविष्कार इत्यादि करना, अपने नफ़े के लिए दूसरों के जान-माल की परवाह न करना—यह पश्चिमी सभ्यता की विशेषताएँ हैं। जीवन के हर क्षेत्र में व्यापार के नियम को लागू करना और नफ़े या नुकसान के ख़याल को एक क्षण के लिए भी आँख

से ओझल न होने देना यह पश्चिमी सभ्यता के लक्षण हैं। यह सभ्यता स्वार्थ और लाभ को एक क्षण के लिए भी भूल नहीं सकती। अगर वह कभी उदारता करती है तो उसकी उदारता अलिफ़ लैला के उस देव जैसी उदारता होती है जो आदमियों को पकड़ कर क़ैद करता और बादाम खिलाता था ताकि उनके शरीर पर गोश्त चढ़े और वह गोश्त ज़्यादा मज़ेदार और मात्रा में अधिक हो। मगर हिन्दुओं ने अपने धार्मिक और आध्यात्मिक आदर्शों को सांसारिकता से दूर रखकर केवल नैतिकता और आध्यात्मिकता के आधार पर जन साधारण की समृद्धि, लोकहित और मानव कष्टों और आपदाओं को दूर करने में जितनी सफलताएँ प्राप्त की थीं उन्हें आज की पश्चिमी सभ्यता ईर्ष्या की दृष्टि से देख सकती है। इन कोशिशों में हम ज़रूरत से ज़्यादा लग गये। नैतिक बन्धनों की पाबन्दियों में अपने व्यक्ति और स्वार्थ की परवाह न की और इन्हीं कारणों ने हमको दुर्बल और दरिद्र बना दिया। वहाँ हम जहाँ कहीं चूके है, सच्चाई की दिशा में चूके हैं। हम आज उस दरिद्र व्यक्ति के समान हैं जिसने अपनी सारी सम्पदा अच्छे कामों में खर्च कर दी हो। ऐसे व्यक्ति की बुद्धि पर हम आपत्ति कर सकते हैं मगर उसके ऊँचे आदर्श, उसकी दानशीलता, उसके आत्मोत्सर्ग और उसके चारित्रिक साहस से इनकार नहीं कर सकते। लेकिन पश्चिम के विद्वानों और इतिहासकारों की दृष्टि की संकीर्णता और अनुचित राष्ट्र-गौरव उन्हें यह नहीं स्वीकार करने देता कि प्राचीन काल में हिन्दुओं ने मनुष्य और पशु दोनों ही के शारीरिक कष्टों को दूर करने और उनके साथ सहानुभूति का बर्ताव करने में दुनिया के सामने एक उदाहरण प्रस्तुत किया है। हाल की एक अँग्रेज़ी पुस्तक में जो योरप में बहुत पसन्द की गयी है विद्वान् लेखक लिखता है, 'यह खयाल रखना चाहिए कि हिन्दोस्तान के शानदार धार्मिक सम्प्रदाय, चाहे वह हिन्दू हों या बौद्ध या मुसलमान, उन्हें इन परोपकारी, उदार और सहानुभूतिशील कार्यों का बिलकुल पता न था जो ईसाइयत की अपनी विशेषता हैं। उनके चिकित्सालय, अनाथालय और औषधालय कहाँ हैं? कोढ़ के मरीज़ों, अँधों, गूंगों और बहरों के लिए घर कहाँ हैं? इन धर्मों की समाज-व्यवस्था में इन चीज़ों को दखल नहीं है।' इसी तरह एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका में जो एक जानी मानी प्रामाणिक पुस्तक है और जो इस बात का दावा करती है कि वह योरोपियनों की जानकारी का भाण्डार है, उसमें भी इन्हीं विचारों को व्यक्त किया गया है—'सम्भव है कि प्राचीनकाल में यात्रियों और पर्यटकों की सुविधा के लिए सराएँ बनायी जाती हों लेकिन इस बात में सन्देह है कि उस ज़माने में रोगियों के कष्ट दूर करने के लिए ऐसे खैराती अस्पताल भी थे जो ईसाई मज़हब के साथ-साथ दिखायी दिये।'

इन दो उद्धरणों से यह बात बिलकुल स्पष्ट हो गयी कि इस बारे में योरोपियन विद्वानों के क्या विचार हैं। यह एक स्वाभाविक बात है कि धन-सम्पदा के अंतिम शिखर तक पहुँची हुई योरोपियन क़ौमें किसी दूसरी क़ौम की, जिसे अब वह नीची दृष्टि से देख रही हैं, प्राचीन महत्ता को स्वीकार न करें और इस ख़याल में डूबे रहें कि दुनिया में जो कुछ शिक्षा और संस्कृति, रोशनी और तरक़्क़ी है वह सब उन्हीं के प्रयत्नों का फल है। इसलिए उनसे इस बारे में निष्पक्ष होकर न्याय कर सकने की आशा करना व्यर्थ है। मगर ऐसा होता है कि हम भी योरोपियन दावों को अपने अज्ञान के कारण आँख बन्द करके स्वीकार कर लेते हैं और इस तरह अपनी क़ौम के पुराने कारनामों और मौजूदा खूबियों पर ठीक से कोई राय क़ायम नहीं करते बल्कि खुद अपने आप को धिक्कारने लगते हैं। नीचे की पंक्तियों में पाठकों के सामने वह प्रमाण प्रस्तुत किये जायँगे जिनसे इस योरोपियन दावे का खण्डन होता है और जिनसे यह बात प्रमाणित हो जाती है कि वह तमाम साधन और योजनाएँ जो कि ईसाइयों की उदारता के कारण योरप में दिखायी दे रही हैं वह ईसाई धर्म के जन्म से हज़ारों वर्ष पहले हिन्दोस्तान में भी किसी न किसी सूरत में मौजूद थीं और हिन्दू संस्कृति का एक आवश्यक अंग समझी जाती थीं। यह प्रमाण हम ज़्यादातर सीलोन के इतिहास से लेंगे जिसने न सिर्फ़ हिन्दू सभ्यता को ग्रहण कर लिया था बल्कि उसको खूब उजागर भी किया था। यह बात आँख के सामने रखनी चाहिए कि योरप में लोकहित की यह योजनाएँ, बावजूद इसके कि बाइबिल में ग़रीबों को मदद और अनाथों की सहायता पर विशेषरूप से ज़ोर दिया गया है, दसवीं सदी के पहले बिलकुल ग़ायब थीं। सोलहवीं सदी तक यह काम धार्मिक संस्थाओं के हाथ में रहा और इस वक़्त तक उसमें कुछ ज़्यादा तरक़्क़ी न हुई। अठारहवीं और उन्नीसवीं सदी में योरप ने इन साधनों को इकट्ठा करने में जो आश्चर्यजनक और प्रशंसनीय प्रयत्न किये हैं वह धार्मिकता के प्रभाव से नहीं बल्कि साधारण सभ्यता के प्रभाव से और यही वजह है कि पादरियों और वैरागियों के हाथ में इस काम को उन्नति नहीं प्राप्त हुई।

सीलोन का इतिहास प्रमाण देता है कि अकाल और सूखे से पैदा होने वाली तकलीफ़ों को दूर करने के लिए वहाँ पुराने ज़माने में बहुत बड़े पैमाने पर इन्तज़ाम किये गये थे। इसके बारे में अभी स्पष्ट और सबल ऐतिहासिक प्रमाण मौजूद हैं और इस बात को स्वीकार करने में कुछ कहने-सुनने के लिए स्थान नहीं है कि इस अच्छे काम में हिन्दुओं ने जो व्यवस्थाएँ की थीं वह पश्चिमी उदारता की कल्पना से भी बाहर हैं। हज़ारों झीलें, हज़ारों तालाब बीस से पचास मील तक

के घेरे में बनाये गये थे जिनमें इतना पानी भरा रहता था कि अगर लगातार कई साल तक बारिश न हो तब भी मुसीबत का सामना न करना पड़े। यह कोशिश की जाती थी कि आसमान से जितना पानी ज़मीन पर आये उसकी एक बूंद भी बेकार समुद्र में न जाने पाये। सब पानी ज़मीन पर कृत्रिम साधनों से रोक लिया जाता था, और यह सारी कोशिशें धर्म के लोकहितकारी पक्ष का परिणाम थीं। आजकल की पश्चिमी क़ौमों की तरह वह लोग इन नेक कामों को इज़ाफ़ा लगान या किसी और व्यावसायिक विचार के साथ लपेटते न थे। सीलोन का प्रसिद्ध इतिहासकार मिस्टर टेंट सीलोन के अपने इतिहास में लिखता है कि 'सीलोन के अगले बादशाहों ने सिंचाई के लिए ऐसे बड़े और इतने ज्यादा तालाब बनवाये थे कि आज उन पर विश्वास करना कठिन है।' आनरेबुल जार्ज टर्नर ने जो सीलोन सिविल सर्विस में एक ऊँचे ओहदे पर थे, सीलोन का एक बहुमूल्य इतिहास लिखा है। वह कहते हैं, 'सीलोन के बादशाहों ने पानी के ऐसे बड़े-बड़े ख़ज़ाने और सिंचाई के ऐसे विस्तृत साधन एकत्रित किये थे कि यद्यपि अब वह बहुत बुरी हालत में पड़े हुए हैं, मगर उनकी लम्बाई-चौड़ाई और घेरा देखकर योरोपियन पर्यटक आश्चर्य से दाँतों तले उँगली दबाते हैं। और इतना ही नहीं, परती ज़मीन को खेती के क़ाबिल बनाने और कृषि को उन्नत करने में भी उन्होंने आश्चर्यजनक प्रयत्न किये थे और यह समस्त पवित्र कार्य धर्म की प्रेरणा पर आधारित था। हिन्दू धर्म ने लोकमंगल और आचार की संस्कृति, स्वार्थ और परमार्थ दोनों का ऐसा समन्वय कर दिया है कि एक क़दम आगे बढ़ाना और दूसरे पहलू को नज़र से ओझल कर देना नामुमकिन है। मिस्टर टेंट कहते हैं, 'कालावापी तालाब के खँडहर साबित करते हैं कि उसका घेरा चालीस मील से किसी तरह कम न होगा। बारह मील लम्बा तो सिर्फ़ बाँध था। यह झील राजा धातुसेन ने चौथी सदी में बनवाई थी।' सिंहली इतिहास 'राज-रत्नाकर' में इतिहासकार लिखता है कि राजा महासेन ने 'मनहरी' नाम की झील बनवायी। उसके पानी से बीस हज़ार धान के खेतों की सिंचाई होती थी। सीलोन में चावल की पैदावार बढ़ाने के लिए इस राजा ने गुलगामी, सालूरा, कांला, महामन्या, सोकूरम, रतमल, कादू और इनके अलावा पच्चीस और बड़े-बड़े तालाब बनवाये।' ग़रज़ यह कि सिंचाई के साधन जुटाने में हिन्दुओं की उदारता ने जो प्रयत्न किये और जो नतीजे हासिल किये उनकी मिसाल दुनिया के किसी दूसरे हिस्से में मिलनी कठिन है। मिस्टर टेंट कहते हैं, 'राजा पराक्रमबाहु ने खेती को बहुत लाभ पहुँचाया। उसने एक हज़ार चार सौ सत्तर तालाब सीलोन के विभिन्न भागों में बनवाये जिनमें से तीन इतने बड़े थे कि उन्हें पराक्रम-सागर के नाम से याद करते थे। उसने तीन

सौ तालाब सिर्फ़ साधू-सन्तों के लिए बनवाये। इनके अलावा नदियों को बाँधकर उसने छोटी-बड़ी पाँच सौ चौंतीस नहरें निकालीं और तीन हज़ार चार सौ इक्कीस पुराने तालाबों की मरम्मत करवायी।' ऐसे निर्माणों की यह संख्या वास्तव में आश्चर्यजनक है। इससे उन सुन्दर प्रयत्नों का अन्दाज़ा किया जा सकता है जो सीलोन के हिन्दू राजाओं ने बारहवीं सदी में खेती को उन्नत करने के लिए किये थे। कितनी आबादी को इन साधनों से लाभ पहुँचता था और कितनी ज़मीन की सिंचाई इससे होती थी, इसका अन्दाज़ा करना मुश्किल है। हज़ारों झीलें अब भी इस्तेमाल में आ रही हैं हालाँकि वह टूट-फूट गयी हैं और बेमरम्मत हैं। टूटी-फूटी झीलों की संख्या कहीं ज़्यादा है। जहाँ किसी ज़माने में सुनहरी खेती लहराती थी वहाँ अब घना जंगल है और पाँच हज़ार से ज़्यादा तालाब सूखे पड़े हैं।

आनरेबुल एलफ्रेड डीकन जो आस्ट्रेलियन कामनवेल्थ के प्रधानमंत्री थे, और हिन्दोस्तान में सिंचाई के साधनों की जाँच-पड़ताल के लिए तशरीफ़ लाये थे, अपनी किताब 'हिन्दोस्तान की आबपाशी' में जो सन् १८९३ में प्रकाशित हुई थी कहते हैं कि 'सीलोन में सिंचाई का रिवाज हज़ारों वर्ष से है और ऐसे लम्बे-चौड़े पैमाने पर कि इस द्वीप की लम्बाई-चौड़ाई और पानी इकट्ठा करने की दिक़्क़त के लिहाज़ से सचमुच उस पर अचंभा होता है। इन झीलों को बनाने में जिस मौलिक सूझ-बूझ का परिचय दिया गया है और इन झीलों की कल्पनातीत लम्बाई-चौड़ाई आज के इंजीनियरों के लिए एक न सुलझनेवाली गुत्थी है। जब यह कोशिशें सीलोन में इस दर्जे पर पहुँची हुई थीं तो कोई अजब नहीं कि बक़ौल मिस्टर डीकन, 'मद्रास के सूबे में कुओं के अलावा साठ हज़ार से ज़्यादा तालाब और पानी के ख़ज़ाने हैं, जहाँ बारिश का पानी गर्मी के मौसम की ज़रूरतों के लिए जमा किया जाता था। उनकी लम्बाई-चौड़ाई अलग-अलग है और अन्दाज़ा किया गया है कि अगर सूबे भर के तालाबों के बाँध एक क़तार में खड़े कर दिये जायँ तो वह धरती के घेरे के चारों तरफ छः फुट ऊँची दीवार बनाने के बाद आधे बाक़ी रह जायँगे।' इन आश्चर्यों के स्रोत हिन्दुओं के धार्मिक विश्वास थे। इन विश्वसनीय प्रमाणों से पाठकों के समक्ष यह बात अच्छी तरह स्पष्ट हो गयी होगी कि सिंचाई के लिए नहरें बनाने और तालाब बनवाने में हिन्दुओं ने कैसी शानदार व्यवस्था से काम लिया था। मगर हमारा अभिप्राय इन निर्माणों की विशालता और संख्या पर ज़ोर देना या हिन्दुओं की इंजीनियरी या निर्माण कला की प्रशंसा करना नहीं है। हमारा अभिप्राय केवल यह दिखलाना है कि हिन्दू धर्म ने सिंचाई और कृषि को भी, पश्चिमी सभ्यता के विपरीत, अपने लोक-हितकारी कार्यक्रम का एक ज़रूरी

अंग समझ लिया था। और है भी ऐसा ही क्योंकि फ़ाक़ाकशी और भूख के मर्ज़ से ज्यादा तकलीफ़देह और कोई मर्ज़ नहीं होता।

हिन्दुओं की उदारता केवल सिंचाई तक सीमित न थी। शारीरिक रोगों के उपचार के लिए भी, चाहे वह मनुष्य हो या पशु, हिन्दुओं ने उसी व्यापक सहानुभूति और असीम प्रेम से काम लिया था। राजा चन्द्रगुप्त के ज़माने में जब कि बौद्ध धर्म अपने शैशव मे था और हिन्दोस्तान व सीलोन दोनों ही में ब्राह्मण धर्म का ज़ोर था, चिकित्सालयों के स्थापित होने का प्रमाण मिलता है। राजा चन्द्रगुप्त का मंत्री चाणक्य एक बड़ा विलक्षण पण्डित था। उसने एक मोटी पोथी 'अर्थशास्त्र' के नाम से लिखी है, जिसमें उसने राजा चन्द्रगुप्त के राज्यकाल की व्यवस्थाओं और प्रबन्ध, कायदे और क़ानून, संस्कृति और जीवन-प्रणाली और देश की सामान्य अवस्था का विस्तार के साथ विवेचन किया है। इस पुस्तक से उस युग के घटाटोप अँधेरे पर बहुत कुछ प्रकाश पड़ता है। वह शहरों की आबादी के बारे में निर्देश करते हुए लिखता है—

'उत्तर की तरफ़ लुहार, बढ़ई, संगतराश और ब्राह्मणों को आबाद करना चाहिए। पश्चिम की तरफ़ जुलाहे, सूत कातनेवाले, बाँस की चटाइयाँ बनानेवाले, चमड़ा बेचनेवाले, हथियार बनानेवाले और शूद्र आवाद किये जायँ। दक्षिण की तरफ़ शहर के प्रबन्धकर्ता, कारबार और व्यापार करनेवाले, शराब और गोश्त का रोज़गार करनेवाले, नाच-गानेवाले और वैश्यों के मकान बनाये जायँ। पूरब की तरफ़ इत्रफ़रोश, ग़ल्ला बेंचनेवाले और क्षत्रिय वर्ण के लोग आबाद हों। दक्षिण-पूर्व की तरफ़ खज़ाना, हिसाब-किताब के दफ्तर और कारखाने बनाये जायँ। उत्तर-पश्चिम की तरफ़ दूकानें और अस्पताल क़ायम किये जायँ। उत्तर-पूरब की तरफ़ गौशाले और अस्तबल वग़ैरह बनाये जायँ।'

इस उद्धरण से सिद्ध हो जाता है कि इस प्राचीनकाल में हिन्दू क़ौम सामाजिक जीवन के किस ऊँचे शिखर पर पहुँची हुई थी और स्वास्थ्यरक्षा के सिद्धान्तों का किस बुद्धिमत्ता से पालन किया जाता था। और चिकित्सालयों के स्थापित होने का एक ऐसा शक्तिशाली प्रमाण मिल जाता है जिसका खंडन नहीं किया जा सकता। मानों चिकित्सालय हर एक आबादी के आवश्यक अंग समझे जाते थे। ऐसे प्रमाणों के होते हुए भी योरप में यह खयाल फैला हुआ है कि चिकित्सालय पश्चिमी सभ्यता के परिणाम हैं और लॉर्ड कर्ज़न जैसे जानकार व्यक्ति ने अपने एक भाषण में जो उन्होंने ग्लासगो युनिवर्सिटी के रेक्टर की हैसियत से हाल में दिया है, कहा कि, 'ग़ैर-ईसाई धर्म जनता की भलाई की ऊँची भावनाओं से

अपरिचित थे।' इसे देखनेवाले की दृष्टि की संकीर्णता और राष्ट्रीय द्वेष के अलावा और क्या कहा जा सकता है।

जैसा हम पहले कह चुके हैं सीलोन अपनी सभ्यता के स्तर के लिए हमेशा हिन्दोस्तान पर आश्रित रहा। चन्द्रगुप्त ईसा से लगभग पाँच सौ बरस पहले हुआ और विद्वान चाणक्य ने साफ़ बतला दिया है कि उस समय हिन्दोस्तान में चिकित्सालयों का आम रिवाज था। इस ज़माने में सीलोन में भी अस्पतालों के क़ायम होने का सबूत मिलता है। महावंश के दसवें अध्याय में, जो सीलोन के प्राचीन युगों का एक प्रामाणिक इतिहास है, सिंहली इतिहासकार राजा पण्डूक भाई के राज्यकाल का ज़िक्र करते हुए लिखता है, 'राजा ने पाँच सौ चाण्डाल (यानी मेहतर) शहर की सफ़ाई के लिए नियुक्त किये। डेढ़ सौ चाण्डाल लावारिसों की लाश उठाने के लिए और इतने ही आदमी चिताओं की निगरानी और सफ़ाई के लिए नियुक्त किये। विभिन्न धर्मों के माननेवालों की सुविधा के लिए पाँच सौ मकान बनवाये और इसी तरह और भी कई जगहों में राजा ने अनेक धर्मशाले और चिकित्सालय बनवाये।'

यह तो ईसा से पाँच सौ बरस पहले की बात हुई और इस वक़्त हिन्दू क़ौम पतन की ओर बढ़ रही थी। बौद्ध धर्म ने गिरती हुई दीवार को सम्हाला। महाराज अशोक के ज़माने में बौद्ध धर्म ने बड़ी तेज़ी से क़दम बढ़ाया और धर्म के साथ-साथ जनता की भलाई के साधन भी बढ़ते गये। अशोक के अभिलेख नं० २ और १३ से इस बात का स्पष्ट प्रमाण मिलता है कि, 'महाराज अशोक की निगरानी में और उनकी आज्ञा से हिन्दोस्तान, सीलोन, हिन्दोस्तान के उत्तरी और पश्चिमी सीमाप्रान्त, पूर्वी योरप, पश्चिमी एशिया और उत्तरी अफ्रीका के देशों में जहाँ के सम्राटों से महाराज अशोक के मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध थे, आदमियों और जानवरों दोनों ही की तकलीफ़ें दूर करने के लिए औषधालय और चिकित्सालय बनवाये गये। आदमियों और जानवरों दोनों ही को लाभ पहुँचानेवाली बूटियाँ दूसरी-दूसरी जगहों से मँगाकर लगाई गयीं और सड़कों पर मुसाफ़िरों और जानवरों की सुविधा के लिए कुएँ और बावलियाँ बनवायी गयीं और पेड़ लगा दिये गये।'

महाराज अशोक के ज़माने में सीलोन के राजा ने भी बौद्ध धर्म स्वीकार कर लिया और तब से तेरहवीं शताब्दी तक चिकित्सालयों का निर्माण, सड़कों की सफ़ाई और मरम्मत, अपाहिजों की देख-भाल और दूसरे ऐसे ही लोकहितकारी कार्यों की तरफ़ उत्साह और संकल्प की कमी नहीं रही और मुफ्त और सबको मिलनेवाली शिक्षा की ऐसी चर्चा रही कि कोई बौद्ध मन्दिर ऐसा न था

जहाँ पाठशाला न हो। आज भी बर्मा और सीलोन में शिक्षित व्यक्तियों की संख्या हिन्दोस्तान के मुक़ाबिले में बहुत ज्यादा है। इन बातों के बहुत से लिखित और प्रामाणिक साक्ष्य मिलते हैं। हम उनमें से कुछ पाठकों के सामने पेश करते हैं।

१—राजा बुद्धदास ने (सन् ३४१ से लेकर ३६३ ई०) सिंहल द्वीप के रहनेवालों पर कृपा-दृष्टि करके अनेक चिकित्सालय स्थापित किये और हरेक गाँव के लिए वैद्य नियुक्त किये।

२—राजा दुतगामिनी ने (१६१ से लेकर १३७ ई० पू०) अठारह स्थानों पर चिकित्सालय बनवाये जहाँ मरीज़ों के भोजन का प्रबन्ध भी किया जाता था।

३—राजा अपातीसू ने (३६८ से ४१० ई०) गर्भवती स्त्रियों, अंधों और अपाहिजों के लिए अस्पताल बनवाये।

४—राजा धातुसेन ने (४५६ ई०) अपाहिजों के लिए अस्पताल बनवाये।

५—राजा दिकपोला द्वितीय ने (७६५ ई०) अस्पताल बनवाये और आयुर्वेद के विद्यार्थियों के लिए एक विद्यालय स्थापित किया।

६—राजा दिकपोला तृतीय ने (८४३ ई०) लंगड़े और अंधे आदमियों के लिए विभिन्न स्थानों पर चिकित्सालय बनवाये।

७—राजा कस्सप चतुर्थ ने शहर में महामारियों के लिए दवाख़ाने खुलवाये।

८—राजा महिन्दा चतुर्थ ने (६६१ ई०) ख़ैरातख़ाने और ग़रीबों के लिए घर बनवाये। उसने कुल अस्पतालों में दवाओं और पलंग का प्रबन्ध किया।

६—राजा पराक्रमबाहु ने (११६४ से ११६७ ई०) एक स्वास्थ्य-गृह बनवाया जिसमें कई सौ रोगी रह सकते थे। हर एक रोगी की परिचर्या के लिए एक दाई और एक नौकर तैनात किया जो उसे ज़रूरी खाना दें और दवायें पिलायें। वहाँ उसने एक भंडारघर भी बनवाया जहाँ ग़ल्ला और तरह-तरह की दवायें और रोगों की चिकित्सा से सम्बन्ध रखनेवाली अन्य चीज़ें इकट्ठा की जाती थीं। उसने उन पण्डितों और विद्वानों के लिए जीविका का प्रबन्ध किया जो रोगों के कारण और रहस्यों की छानबीन करते थे।

इन ऐतिहासिक प्रमाणों के सामने कौन न्यायप्रेमी व्यक्ति कह सकता है कि ईसाई धर्म के अस्तित्व में आने से पहले हिन्दू और बौद्ध धर्मों में मनुष्यों और मूक पशुओं के कष्टों को दूर करने का एक ऊँचा मानदण्ड नहीं स्थापित हुआ था। इसके विपरीत, कदाचित् यह प्रमाणित हो चुका है कि जिस उत्साह और पवित्र भावना से इस ज़माने में यह नेक और अच्छा काम किया जाता था, वह आजकल के ऐसे ही कामों में नहीं पाया जाता और इसमें आश्चर्य की कोई बात

नहीं। हिन्दुओं की उदारता का स्रोत उनका धार्मिक विश्वास था। ईश्वर ने हम सब को पैदा किया, हम सब भाई हैं, हमारा कर्तव्य है कि अपनी शक्तिभर अपने भाई की सहायता करें—यह भावना और यह विश्वास था जो हिन्दू क़ौम के दिलों में एक स्पष्ट जीता-जागता रूप लेकर उन्हें उदारता के अच्छे से अच्छे और ऊँचे से ऊँचे मानदण्ड की ओर ले जाता था। पश्चिमी क़ौमों के उदार प्रयत्नों में यह धार्मिक उत्साह शायद ही कहीं देखने को मिलता है। वह इन कामों में भी क़ौमी, पोलिटिकल और व्यावसायिक स्वार्थ छिपाये रहते हैं। वह पश्चिमी सभ्यता जो गर्भवती स्त्रियों और छोटी उम्र के लड़कों को जीविका-निर्वाह के लिए विवश करती है, जहाँ विधवाओं और अनाथों के लिए अनाथालयों के सिवाय और कोई ठिकाना नहीं, वह पश्चिमी सभ्यता जहाँ मालिक मज़दूर के हक़ हड़प कर जाने की ताक में बैठा रहता है और मज़दूर इस ताक में रहता है कि मालिक की जेब से रुपया निकाल लूँ, वह सभ्यता जो धर्म के प्रचार को राज-नीतिक उद्देश्यों का साधन बनाती है और जहाँ मिशनरी हमेशा विजेता का झण्डाबरदार साबित होता है, वह हिन्दू या बौद्ध धर्म को कभी रास्ता नहीं दिखा सकती। देशों को जीत लेना और चीज़ है, ऊँची सभ्यता और चीज़ है। इटली ने निम्न स्तर की सभ्यता रखते हुए यूनान को जीत लिया जो उस ज़माने में सभ्यता के उच्चतम शिखर पर पहुँचा हुआ था। सभ्यता और हिंस्र भावनाओं का बैर है। बर्बर क़ौमें सभ्य क़ौमों के मुक़ाबिले में ज़्यादा लड़ाकू और जान पर खेलनेवाली होती हैं। पश्चिमी सभ्यता में सबसे बड़ी खूबी यह है कि उसने बर्बर क़ौमों की विशेषताओं को सभ्यता के गंभीर प्रभावों से बचाये रक्खा! खुलासा यह कि हिन्दोस्तानी सभ्यता की इमारत धर्म और नेकी की बुनियाद पर थी और पश्चिमी सभ्यता की बुनियाद लाभ, ईर्ष्या और ऐश्वर्य पर है। यह पवित्र दृश्य हिन्दोस्तान के सिवा और कहाँ दिखायी पड़ता है कि अगर एक घर में दस विधवाएँ हैं तो दसों इज़्ज़त के साथ ज़िन्दगी बसर करती हैं। सम्भव है हिन्दुओं ने सभ्यता का यह मानदण्ड स्थापित करने में बहुत-सी भूलें की हों और ज़रूर कीं मगर इससे इनकार नहीं किया जा सकता कि उनके पीछे उदारता की ऊँची भावना थी और ईसाइयों का उपरोक्त कथन बिलकुल झूठ है।

—ज़माना, मार्च, १९१२

रामायण और महाभारत

यों तो संस्कृत साहित्य में पद्य-बद्ध आख्यायिकाओं की कमी नहीं है मगर जैसा कि हर व्यक्ति जानता है रामायण और महाभारत हिन्दुओं के दो विशेष महाकाव्य हैं। हिन्दू जाति को उन पर जितना गर्व हो उचित है। अगर संस्कृत साहित्य में सिर्फ यही दो किताबें होतीं तो भी किसी भाषा का लिटरेचर संस्कृत से आँखें न मिला सकता। विचारों की उच्चता, विषयों की पवित्रता, वर्णन का सौन्दर्य और कैरेक्टरों की महानता ने उसी ज़माने से, जब कि ये पुस्तकें कवि के हृदय से निकलीं, संसार को आश्चर्य में डाल रक्खा है। रामचन्द्र निश्चय ही उच्चतम मानवता के उदाहरण थे और सीता स्त्रियों के पवित्र धर्म की एक पावन मूर्ति। युधिष्ठिर निश्चय ही न्याय की मूर्ति थे और भीष्मपितामह की वीरता और आत्मोत्सर्ग संसार के इतिहास में अद्वितीय है। कृष्ण सिद्ध योगी और मनुष्य के दीप्तमान गुणों का संग्रह थे। मगर यह वाल्मीकि और व्यास के कवित्व का सौन्दय है जिसने हमारी आँखों में उनको मनुष्यों की श्रेणी से उठाकर देवताओं की पंक्ति में बिठा दिया है। यह उन्हीं कवियों की लेखनी का प्रसाद है कि आज हर एक हिन्दू उनके नाम को पूजनीय समझता है; उस भक्ति और आदर की कोई सीमा नहीं है जो इन बड़े लोगों के संबंध में हर एक हिन्दू बच्चे के हृदय में स्थायी रूप से है। यहाँ तक कि राम और कृष्ण का नाम असंख्य हिन्दुओं के लिए मुक्ति का साधन बन गया है। कवि को अपने काव्य के लिए बड़ा से बड़ा जो प्रतिदान मिल सकता है वह उन कवियों ने प्राप्त कर लिया है यानी उनके कैरक्टरों को हमने अपना देवता या ईश्वर मान लिया। और उन कवियों के काव्य-गुणों पर दृष्टि डालते हुए यह नहीं कहा जा सकता कि हमने अनुचित उदारता से काम लिया है। उन्होंने वह काम कर दिखाया है जो संसार के किसी कवि से न हो सका। उन्होंने हमारी आँखों के सामने, इसलिए कि हम उन्हें अपने जीवन का आदर्श बनायें, पूर्ण मनुष्य उपस्थित कर दिये हैं जो केवल निर्जीव-निस्पन्द चित्र नहीं बल्कि जीते-बोलते पूर्ण मनुष्य हैं। ऐसे पूर्ण मनुष्य शेक्सपियर और दाँते, होमर और वर्जिल, निज़ामी और फ़िरदौसी की कल्पना की परिधि से बहुत ऊँचे हैं। प्रोफ़ेसर मोनियर विलियम्स कहते हैं, "यद्यपि यूनानवालों की तरह हिन्दुओं के यहाँ भी ख़ास दो ही मसनवियाँ या महाकाव्य हैं मगर 'रामायण'

और 'महाभारत' की 'इलियड' और 'ओडोसो' से तुलना करना वैसा ही है जैसा इण्डस और गंगा का, जो हिमालय के बर्फ़िस्तानी इलाक़े से निकलती हैं और अपनी सहायक नदियों से गले मिलती हुई, कहीं बेहद फैली हुई और कहीं अथाह गहरी, शान-शौकत के साथ बहती हैं, अटीका और थेसिली के नालों और पहाड़ी सोतों से तुलना करना।" इन काव्य-गुणों के अतिरिक्त इन पुस्तकों का आकार यूरोपवालों को और भी अचरज में डाल देता है। यहाँ उनकी तुलना दुनिया के दूसरे प्रसिद्ध महाकाव्यों से करना दिलचस्पी से ख़ाली न होगा।

महाभारत—२२०००० श्लोक।

रामायण—४८००० श्लोक।

होमर का इलियड—१५६९३ शेर।

वर्जिल का ईनिड—९८६८ शेर।

जर्मनी का प्रसिद्ध दार्शनिक श्लेगल लिखता है, 'रामायण संसार का सबसे महान् महाकाव्य है।'

सर विलियम जोन्स कहते हैं, 'रामायण में राम की कहानी लिखी गई है जो कल्पना की उर्वरता और वर्णन के सौन्दर्य की दृष्टि से मिल्टन के काव्य से कहीं बढ़कर है।'

प्रोफ़ेसर हेरन रामायण की कहानी संक्षेप में बताने के बाद कहते हैं, 'यह है थोड़े से शब्दों में रामायण की कहानी जो इतने सरल छंदों में ऐसी ख़ूबसूरती और अनूठेपन से बाँधी गई है कि संसार की अच्छी से अच्छी काव्य-कृति की तुलना में भी उसका पल्ला भारी रहेगा।'

प्रोफ़ेसर मोनियर विलियम्स कहते हैं, 'संस्कृत साहित्य में रामायण से अधिक सुन्दर कोई काव्य नहीं। इसकी वर्णन-शैली की सरलता और स्वच्छता और प्रौढ़ता, सच्चे कवित्व की सुकुमार चुटकियाँ, वीरतापूर्ण घटनाओं के सजीव चित्रण, प्रकृति के सुन्दर दृश्य, मानव-हृदय के उतार-चढ़ाव और कोमलतम भावनाओं की गहरी जानकारी—ये सब ख़ूबियाँ इस कृति को संसार की किसी भी देश या काल की श्रेष्ठतम कृतियों में ऊँचा स्थान पाने का अधिकारी ठहराती हैं। ये एक बड़े से सुन्दर उपवन के समान हैं जिसमें फूल और फल की बहुतायत है, प्रकृति के चिरंतन जलस्रोत जिसको सींचते हैं और यद्यपि कहीं-कहीं उपज ज़रूरत से ज़्यादा हो गई है मगर वहाँ भी स्वच्छ और सुव्यवस्थित क्यारियाँ मौजूद हैं।'

प्रिंसिपल ग्रिफ़िथ, जिन्होंने रामायण को अंग्रेज़ी कविता का बहुत सुन्दर आवरण पहनाया है, कहते हैं 'रामायण हर देश, जाति और युग के लिटरेचर को ऐसा काव्य प्रस्तुत करने का उच्च स्वर में निमंत्रण देती है जिसमें राम और

सीता के समान पूर्ण मनष्य हों। कवित्व और नैतिकता में ऐसी आकर्षक एकता और कहीं दिखाई नहीं देती जैसी कि इस पवित्र पुस्तक में।'

अमरीका के प्रसिद्ध डाक्टर हेलियर इन शब्दों में महाभारत की चर्चा करते हैं, 'मुझे अपनी ज़िन्दगी में किसी किताब से इतनी दिलचस्पी नहीं हुई जितनी पुराने हिन्दुस्तान की इस महान् और पवित्र कृति से। पिछले कुछ सालों में मैंने जितनी बार इस पुस्तक का अध्ययन किया है उतनी बार किसी दूसरी पुस्तक का नहीं किया। महाभारत ने मेरे मानस-चक्षुओं के आगे एक नई दुनिया खोल दी है और मुझे उसके विद्वत्तापूर्ण विचारों, उसकी सच्चाई, उसके सत्य चित्रण और पांडित्य पर असीम आश्चर्य है।'

सिलवें लेवी जो पेरिस के प्रसिद्ध विद्वान हैं कहते हैं, 'महाभारत संसार की सबसे बड़ी ही नहीं बल्कि सबसे सुन्दर कृति है। इसमें शुरू से आखिर तक सुन्दर परिधान में सदाचार के गम्भीर प्रश्नों की शिक्षा दी गई है।'

अमरीका का प्रसिद्ध साहित्यकार जेरेमिया क्रीटन लिखता है, 'मैं सच्चे हृदय से कहता हूँ कि मुझे किसी दूसरी पुस्तक के अध्ययन से कभी इतना आत्मिक उल्लास नहीं प्राप्त हुआ।'

सेण्ट बार्थालोम्यू जो यूरोप के एक दुनिया देखे हुए फ़िलासफ़र हैं लिखते हैं, 'एक सदी गुज़री जब कि विलकिन्सन ने महाभारत के एक हिस्से का अनुवाद प्रकाशित किया तो संसार उसके कवित्व की महानता को देख कर दंग रह गया; व्यास, जो महाभारत का रचयिता है, होमर से भी बड़ा मालूम होने लगा और लोगों को यह स्वीकार करने में ज़्यादा अड़चन न हुई कि हिन्दुस्तान यूनान से बढ़कर है।'

प्रोफेसर मोनियर विलियम्स कहते हैं, 'रामायण में ऐसे अनेक वर्णन हैं जो काव्य-सौन्दर्य की दृष्टि से होमर से भी आगे बढ़े हुए हैं। उनकी वर्णन-शैली अधिक रोचक, अधिक कोमल और अधिक प्रौढ़ है और भाषा होमर की तुलना में अधिक उन्नत है। पारिवारिक जीवन का चित्र दिखाने में हिन्दू कवि यूनान और रोम के कवियों से कहीं बढ़कर हैं।'

—ज़माना मई-जून, १९१२

भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र

हिन्दी भाषा के कवियों में बाबू हरिश्चन्द्र का स्थान बहुत ऊँचा समझा जाता है। यह ठीक है कि उन्हें तुलसी, सूर, बिहारी या केशव की सी लोकप्रियता नहीं प्राप्त हुई मगर इसका कारण यह नहीं कि वे योग्यता में इन कवियों से घटकर थे। तुलसीदास पद्य-बद्ध आख्यायिका के सम्राट् थे। सूर ने अध्यात्म और बिहारी ने सौन्दर्य और प्रेम को कमाल पर पहुँचाया। कबीर ने संसार की निस्सारता का राग गाया मगर हरिश्चन्द्र ने हर रंग की कविता की। वह काव्य-प्रतिभा जो किसी एक रंग को बहुत ऊँचाई तक पहुँचा सकती थी, बिखर गई। इसलिए ये कवि ऊँचाई और गंभीरता में यद्यपि हरिश्चन्द्र से बढ़े हुए हैं मगर काव्य-विस्तार की दृष्टि से हरिश्चन्द्र का स्थान बहुत ऊँचा है। उनकी प्रतिभा बहुमुखी थी और उनको गद्य और पद्य दोनों पर समान अधिकार था। गद्य में तो उन्हें मार्गदर्शक का स्थान प्राप्त है। उनके पहले राजा लक्ष्मण सिंह और राजा शिव प्रसाद ने हिन्दी गद्य में ख्याति पायी थी मगर राजा लक्ष्मण सिंह की योग्यता अधिकतर अनुवादों में खर्च हुई और राजा शिव प्रसाद की हिन्दी में उर्दू शब्द बड़ी संख्या में रहते थे। शुद्ध हिन्दी की नींव भारतेन्दु ही के क़लम ने डाली और उस ज़माने से अब तक हिन्दी गद्य ने बहुत कुछ तरक़्क़ी हासिल कर ली है मगर आज भी हरिश्चन्द्र के हिन्दी गद्य की प्रौढ़ता, चुलबुलापन और शुद्धता प्रशंसनीय है। उनकी सबसे अधिक स्मरणीय और स्थायी साहित्यिक पूँजी उनके नाटक हैं। इस मैदान में कोई उनका प्रतियोगी नहीं। हिन्दी नाट्य-कला के वे प्रवर्तक हैं। उनके पहले हिन्दी भाषा में नाटकों का अस्तित्व न था। राजा लक्ष्मण सिंह ने कालिदास की 'शकुन्तला' का अनुवाद अवश्य किया था पर वह केवल अनुवाद था। मौलिक नाटक अप्राप्य थे। बाबू हरिश्चन्द्र ने हिन्दी साहित्य की इस कमी को पूरा करने की कोशिश की। उन्होंने छोटे-बड़े अठारह नाटक लिखे जिनमें कुछ मौलिक और कुछ अनुवाद हैं। मौलिक नाटकों में 'सत्य हरिश्चन्द्र' और 'चन्द्रावली' ऐसी किताबें हैं जो संसार की किसी भाषा का गौरव हो सकती है, और 'मुद्राराक्षस' यद्यपि एक संस्कृत नाटक का अनुवाद है तथापि उच्चकोटि की रचना के सारे गुणों से भरपूर। इस सारे साहित्यिक कृतित्व पर दृष्टि डालकर कह सकते हैं कि हरिश्चन्द्र जैसी सर्वतोमुखी

प्रतिभा का कवि हिन्दी भाषा में शायद ही दूसरा पैदा हुआ होगा।

बाबू हरिश्चन्द्र एक नामवर बाप के बेटे थे। उनके पिता बाबू गोपाल चंद्र बनारस के एक जाने-माने रईस थे। वह 'गिरधर' उपनाम से कविता करते थे। नीति-परक विषयों पर लिखने में वह बेजोड़ थे। हरिश्चन्द्र ने धन-सम्पत्ति के साथ काव्य-रचना की योग्यता भी उत्तराधिकार में पाई थी और यद्यपि सम्पत्ति उनके खुले हाथों में बहुत दिन न रही मगर काव्य-रचना के उत्तराधिकार में उन्होंने सपूत बेटे की तरह बहुत कुछ वृद्धि की। वह सम्वत् १९०७ में पैदा हुए और कुछ दिनों घर पर हिन्दी और फ़ारसी पढ़ने के बाद वह क्वीन्स कालेज में दाखिल हुए मगर यहाँ पढ़ाई का सिलसिला ज़्यादा दिनों तक न चल सका। वह पाँच ही साल के थे कि उनकी माँ का देहान्त हो गया और सम्वत् १९१७ में जब उनकी उम्र दस साल से ज़्यादा न थी, बाबू गोपाल चंद्र का देहान्त हो गया। इन कारणों से उनकी पढ़ाई ढंग से न हुई और छुटपन में ही गृहस्थी का बोझ भी सिर पर आ पड़ा। पढ़ने-लिखने में यूँ ही उनकी तबियत न लगती थी, गृहस्थी एक बहाना हो गई, पढ़ना छोड़ बैठे। मगर इसी उम्र में वह काव्य-रचना की प्रतिभा का प्रमाण दे चुके थे। यह गुण उनमें दैवी था। पाँच ही साल की उम्र में एक दोहा लिखकर अपने कवि पिता को आश्चर्य में डाल दिया था और जिस समय उन्होंने पढ़ना छोड़ा वह अपने काव्यमर्मज्ञ मित्रों के बीच काफ़ी ख्याति पा चुके थे। जीवन के आरंभिक वर्षों में उन्होंने विद्योपार्जन के प्रति बहुत उत्साह नहीं दिखलाया लेकिन अपनी दैवी बुद्धि से इस कमी को बहुत जल्द पूरा किया और हिन्दुस्तान की कुल भाषाओं पर अधिकार प्राप्त कर लिया। उनका अंग्रेज़ी ज्ञान बहुत अच्छा था। यह बात उनके 'दुर्लभ बन्धु' से प्रकट होती है जो शेक्सपियर के 'मर्चेन्ट आफ़ वेनिस' का अनुवाद है। मराठी, गुजराती, बंगला, पंजाबी, उर्दू, मैथिली इन सब भाषाओं में वह केवल अपने विचार ही प्रकट नहीं कर सकते थे बल्कि कविता भी कर सकते थे। इससे उनकी प्रखर बुद्धि का अंदाज़ा किया जा सकता है।

बाबू हरिश्चन्द्र का ख़ानदान बनारस के जाने-माने और पैसेवाले घरानों में था। उन्हें कई लाख की जायदाद उत्तराधिकार में मिली थी मगर उन्होंने धन-सम्पदा की परवाह करना न सीखा था। दोस्तों के आतिथ्य-सत्कार, विलासपूर्ण जीवन, ग़रीबों की मदद और कवियों की क़द्रदानी में वह रुपया पानी की तरह बहाते थे। दीवाली के रोज़ तेल की जगह इत्र से दिये जलाते थे और सिर और शरीर में तो वह तेल के बदले आमतौर पर खूब मँहगे इत्र मला करते थे। कवियों की क़द्रदानी का यह हाल था कि एक एक दोहे पर खुश होकर सैकड़ों

रुपये इनाम दे देते । याचक को जवाब देना उन्होंने सीखा ही न था । जैसा कि दुनिया का क़ायदा है, ऐसे खर्चीले आदमियों की कमज़ोरी से फ़ायदा उठानेवाले भी ढेरों पैदा हो जाते हैं । बाबू हरिश्चन्द्र की दौलत उनकी नाज़बरदारियों में खूब खर्च होती थी । उनके इस ख़र्चीलेपन को देखकर एक बार महाराज बनारस ने उनसे कहा, 'बाबूजी, घर देख कर काम करो ।' इसका जवाब आपने दिया, 'महाराज, यह दौलत मेरे कितने ही पुरखों को निगल गई है, अब मैं इसे खा जाऊँगा ।' इससे उनके स्वभाव की मस्ती का सबूत मिल सकता है ।

भारतेन्दु बड़े रँगीले, बाँके, सुन्दर, सजीले आदमी थे । सौन्दर्य-प्रेम उनमें कूट-कूटकर भरा हुआ था । सुन्दरता खुद ब खुद उनकी आँखों में खुब जाती थी और कवि में यह एक विशेष गुण है । चित्रों से उन्हें बड़ा प्रेम था । बड़ी तलाश और ख़र्च से उन्होंने एक अनूठा संग्रह एकत्र किया था मगर एक दोस्त को उनके प्रति बहुत अनुरक्त देखकर उन्हें दे डाला । सौन्दर्य की प्रशंसा और वर्णन से उनकी कविता भरी हुई है और साहित्य-रसिकों का विचार है कि इस रंग में उनकी तबियत असाधारण ज़ोर दिखा गई है । नाटकों को छोड़कर, उनका काव्य सौन्दर्य और प्रेम की भावनाओं से भरा हुआ है । प्रत्येक कवि चाहे उसने कैसी ही बहुमुखी प्रतिभा क्यों न पाई हो सिर्फ़ एक ही क्षेत्र में चोटी पर पहुँचता है । हरिश्चन्द्र ने करुणा, प्रेम, प्राकृतिक दृश्य, वीरता, वैराग्य, हास्य, नीति आदि सभी रंगों में अपनी काव्य-प्रतिभा का प्रदर्शन किया है । मगर वह घुलावट जो उनके सौन्दर्य-चित्रण में पैदा हो गई है, दूसरे रंगों में अपेक्षाकृत कम है ।

ज़िन्दादिली बाबू हरिश्चन्द्र का विशेष गुण थी और वह जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में प्रकट होती थी । साहित्य-रचना, देशप्रेम, सामाजिकता—इन सब कार्यों में उन्होंने आगे बढ़कर योग दिया । उन्होंने गद्य और पद्य की कई पत्रिकाएँ जारी कीं और नुक़सान उठाकर चलाईं । साहित्य के विकास के लिए एक संस्था स्थापित की । कुछ दिनों तक एक रीडिंग क्लब चलाया और चौखम्बे में एक अंग्रेज़ी स्कूल क़ायम किया । इसके खर्चे वह बारह साल तक खुद अदा करते रहे । उनका लगाया हुआ यह शिक्षा का पौधा अब एक ऊँचा-पूरा पेड़ हो गया है । इसमें अब स्कूल लीविंग तक की पढ़ाई होती है । मकान नया बन गया है और विद्यार्थियों की संख्या चौगुनी हो गई है । इन बातों से प्रकट होता है कि बाबू हरिश्चन्द्र ज़माने की रफ़्तार से और उसकी आवश्यकताओं से अपरिचित न थे । उनकी ज़िन्दादिली बहुधा चुहल और दिल्लगीबाज़ी में ख़र्च होती थी । होली के दिनों में उनके यहाँ अबीर और गुलाल का दरिया बहता था । वह खुद

कमर में एक मोटा-सा कुण्डा बाँधे, मसखरों का एक तूफ़ाने-बेतमीज़ी साथ लिये बड़ी आज़ादी से कबीरें गाते निकलते थे। इन दिनों में वह फक्कड़, स्वांग, नक़ल, फ़ोहश, किसी से बाज़ न आते थे। अप्रैल की पहली तारीख़ अंग्रेज़ों के यहाँ दिल्लगी का दिन है। आज के दिन हर क़िस्म का मज़ाक़ जायज़ है। बाबू हरिश्चन्द्र इस तारीख़ को शहरवालों के दिलबहलाव के लिए ज़रूर कोई न कोई गुल खिलाते थे। एक बार एलान कर दिया कि एक मशहूर उस्ताद हरिश्चन्द्र स्कूल में मुफ़्त गाना सुनायेंगे। जब हज़ारों आदमी जमा हो गये तो पर्दा खुला और एक आदमी मसख़रों का भेस बनाये, उल्टा तम्बूरा हाथ में लिये बरामद हुआ और बड़ी भोंडी आवाज में रेंकने लगा। लोग समझ गये कि भारतेन्दु ने यह शगूफ़ा खिलाया है। शर्मिन्दा हो कर वापिस गये।

मगर इस आज़ादी और बेफ़िक्री के बावजूद उनके स्वभाव में संतोष भी बहुत था। वह अपनी कमज़ोरियों पर कभी कभी लज्जित भी होते थे मगर नानी* ने हरिश्चन्द्र के स्वभाव को देख कर उनके छोटे भाई के नाम सारी जायदाद का हिब्बेनामा कर दिया। हिब्बेनामे पर बाबू हरिश्चन्द्र के दस्तख़त बहुत ज़रूरी थे मगर जब यह काग़ज़ उनके सामने आया तो उन्होंने बेधड़क उस पर दस्तख़त कर दिये और दो-ढाई लाख की जायदाद की ज़रा भी परवाह न की। यह उनकी उदारता और निस्पृहता का बहुत अनूठा उदाहरण है।

बाबू हरिश्चन्द्र का साहित्यिक जीवन बाक़ायदा तौर पर अठारहवें साल से शुरू हुआ और यद्यपि उन्होंने उम्र बहुत कम पाई, देहान्त हुआ तो उनकी उम्र सिर्फ़ छत्तीस साल थी, तो भी इन्हीं अठारह वर्षों में उन्होंने अपने क़लम से हिन्दी ज़बान को मालामाल कर दिया। उनकी रचनाएँ तीन हिस्सों में बांटी जा सकती हैं—नाटक, कविताएँ और गद्य के विविध लेख। इनमें से हर एक की संक्षिप्त चर्चा करना ज़रूरी मालूम होता है।

बाबू हरिश्चन्द्र के नाम से सोलह सम्पूर्ण नाटक मिलते हैं मगर अधिकांश बहुत छोटे हैं जो कुछ ही पन्नों में ही ख़त्म हो गये हैं। इनमें अधिकांश संस्कृत नाटकों के अनुवाद या रूपान्तर हैं। मौलिक नाटकों की संख्या पाँच से अधिक नहीं। इनमें भी चंद्रावली, नीलदेवी और सत्य हरिश्चन्द्र के अलावा और किसी नाटक को ठीक अर्थों में नाटक नहीं कहा जा सकता। वैदिक हिंसा, अंधेर नगरी नाटक नहीं बल्कि राष्ट्रीय और सामाजिक प्रश्नों पर हास्य-व्यंगपूर्ण चुटकुले हैं जो बहुत लोकप्रिय हुए और बार-बार खेले गये। 'भारत दुर्दशा' में राष्ट्र की नैतिक और

* बाबू हरिश्चन्द्र की ननिहाल बहुत धनाढ्य थी। बाबू हरिश्चन्द्र और उनके भाई इस जायदाद के उत्तराधिकारी थे।

सांस्कृतिक दुर्बलताएँ बड़े प्रभावशाली, हास्यपूर्ण और कहीं-कहीं दर्दनाक ढंग से दिखाई गई हैं। 'चंद्रावली' प्रेम और प्रेम के रहस्यों की एक पिटारी है जिससे कवि की सूझ-बूझ और मर्मभेदी दृष्टि का बखूबी अंदाज़ा किया जा सकता है। 'नीलदेवी' एक ऐतिहासिक नाटक है जिसमें अमीर अब्दुलशरीफ़ खाँ और महाराज सूरजदेव के मार्के बयान किये गये हैं और सौन्दर्य व प्रेम के मनचले कवि ने लड़ाई के मैदान में ऐसी काटें की हैं कि उसे पढ़कर दिलों में वीरता की एक लहर पैदा हो जाती है। 'मुद्राराक्षस' यद्यपि संस्कृत के प्रसिद्ध नाटक का अनुवाद है तो भी इसमें मूल के सब गुण वर्तमान हैं और इसीलिए अनुवाद में जहाँ-तहाँ अनुचित रूपान्तर का धोखा होता है। हरिश्चन्द्र की शायद सबसे प्रसिद्ध कृति 'सत्य हरिश्चन्द्र' है। इसमें महाराज हरिश्चन्द्र की सच्चाई की परीक्षा का ज़िक्र है। 'महाभारत' में इसका संक्षिप्त उल्लेख आया है। जैसे कालिदास ने महाभारत से 'विक्रमोर्वशी' और 'शकुन्तला' का प्लाट लेकर उनकी बुनियाद पर अपने अमर नाटकों की इमारत खड़ी की है उसी तरह बाबू हरिश्चन्द्र ने भी इस नाटक में महाभारत से घटना ले ली है। महाराज हरिश्चन्द्र सूर्यवंश के एक चक्रवर्ती राजा थे जो सच्चाई, वचन-पालन और वफ़ादारी में इस तरह एक कहावत बन गये हैं जिस तरह हनुमान वीरता में, संकल्प में रावण, न्याय में युधिष्ठिर और हिम्मत में भीष्म पितामह। इस नाटक में विश्वामित्र ऋषि का राजा हरिश्चन्द्र की परीक्षा के लिए आना, राजा का विपत्ति में पड़कर बनारस जाना, वहाँ एक डोम के हाथ बिकना, फिर श्मशान की चौकीदारी पर नियुक्त होना, रानी शैव्या का रोहिताश्व की लाश गोद में लेकर आना, राजा का उससे क़फ़न माँगना—ये घटनाएँ बहुत ही करुण, प्रभावशाली और निपुण ढंग से दिखलायी गयी हैं। उनको दुहराने की यहाँ ज़रूरत नहीं है क्योंकि ऐसे बहुत शिक्षित लोग न होंगे जिन्होंने इस नाटक को न पढ़ा हो या खेले जाते न देखा हो। यह घटनाएँ स्वयं मनुष्य की नैतिक ऊँचाइयों का सुन्दरतम उदाहरण हैं। उन पर बाबू हरिश्चन्द्र की जादू-भरी क़लम ने सोने में सुहागे का काम किया है। हमने कई बार इस नाटक का खेल देखा है। जिस वक़्त शैव्या रोहिताश्व की लाश गोद में लेकर आती है उस वक़्त दर्शकों की आँखों से आँसुओं की झड़ी लग जाती है। विलाप का दृश्य इससे अधिक प्रभावशाली अगर किसी हिन्दी कवि ने खींचा है तो वह महाराजा रामचन्द्र का वनवास है। ऐसा कोई कालेज, कोई होस्टल, कोई लिटरेरी सोसाइटी और कोई ड्रामैटिक कंपनी न होगी जिसने यह खेल न किया हो। मगर तुलसी के वनवास की तरह हरिश्चन्द्र का यह वर्णन दिलों पर असर किये बग़ैर नहीं रहता। इसमें कोई शक नहीं कि जब तक हिन्दी भाषा ज़िन्दा रहेगी यह नाटक सर्वप्रिय रहेगा।

॥ **विविध प्रसंग** ॥

लेकिन अगर इस नाटक को, जिसके कथानक की रचना में कवि को बहुत ज़्यादा प्रयत्न नहीं करना पड़ा, अलग कर दिया जाये तो बाबू हरिश्चन्द्र के मौलिक नाटकों में एक खास कमज़ोरी नज़र आती है और वह है कथानक की दुर्बलता। यह दोष 'चंद्रावली' और 'नीलदेवी' में स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। इनमें वर्णन-शक्ति, भाव, दृश्य-चित्रण सब कुछ है मगर प्लाट कमज़ोर है और इसी प्लाट की कमज़ोरी ने अच्छे कैरेक्टरों को पैदा न होने दिया। 'हरिश्चन्द्र' के अलावा उनके बाक़ी मौलिक नाटकों में कोई कैरेक्टर ऐसा नहीं—या हैं तो बहुत कम—जो मनुष्य के उच्च जीवन का आदर्श बन सके और नैतिकता के ऊँचे शिखरों तक पहुँचे। घटनाओं के प्रकार पर कैरेक्टरों की हीनता और उच्चता निर्भर हैं। दुर्बल घटनाओं की स्थिति में ऊँचे कैरेक्टर क्योंकर पैदा हो सकते हैं।

बाबू हरिश्चन्द्र की कविताओं में अगर्चे नाटकों की सी मौलिकता नहीं, क्योंकि इस मैदान में नया कुछ बहुत कम बचा है. लेकिन उसका स्थान बहुत ऊँचा है। काव्य-मर्मज्ञों ने उसको बहुत मान दिया है और हिन्दी के श्रेष्ठतम कवियों में उनकी गिनती की है। उर्दू में उदाहरण देकर उनकी कविता की विस्तृत चर्चा नहीं की जा सकती। सिर्फ़ इतना कहना काफ़ी है कि उन्होंने हर रंग में अपनी प्रतिभा का जौहर दिखाया। सौन्दर्य और वीरता का मैदान उनके लिए इतना ही आसान था जितना कायरता और घृणा का। तब भी जैसा हम ऊपर लिख चुके हैं, प्रेम के रंग में उनकी कविता असाधारण रूप से सशक्त, प्रभावशाली और नैचुरल है। अध्यात्म और वैराग्य में भी उनकी तबियत ने ज़ोर दिखाया है और जब यह ख़याल करो कि यह ऐशपसन्द, शौक़ीन, रसीले कवि की रचना है तो सचमुच आश्चर्य होता है। वह अपने युग के केवल कवि नहीं बल्कि राष्ट्रीय कवि थे, और राष्ट्रभाषा की हैसियत से हर एक पब्लिक और राष्ट्रीय घटना पर उन्होंने आवश्यकतानुसार बधाई, शोक, स्वागत, विदाई आदि की कवितायें लिखी हैं मगर उनमें कोई विशेषता नहीं। कविता से और उसके असली उद्देश्यों से उनका कवि-स्वभाव कैसा परिचित था वह इस बात से बख़ूबी ज़ाहिर हो जाता है कि उन्होंने कविता के नौ रसों में चार और जोड़े और काव्य-मर्मज्ञों ने इस संशोधन को एक मत से स्वीकार कर लिया।

बाबू हरिश्चन्द्र के गद्य-लेख विभिन्न विषयों पर हैं। ऐतिहासिक, धार्मिक, राष्ट्रीय, नैतिक—ग़रज़ कि सभी प्रश्नों पर उन्होंने अपना मत व्यक्त किया है मगर उनमें न विचारों की ताज़गी है न खोज, हाँ ज़बान अलबत्ता साफ़-सुथरी है।

हिन्दी के साहित्य संसार ने भारतेन्दु का यद्यपि उतना सम्मान नहीं किया जिसके वह अधिकारी हैं तो भी तुलसी और केशव जैसे उच्च कोटि के कवियों

को देखते हुए काफ़ी ग़नीमत है। तुलसी की कोई प्रामाणिक और संपूर्ण जीवनी नहीं, सूर और केशव भी गुमनामी के कूचे में पड़े हुए हैं मगर बाबू हरिश्चन्द्र की कई जीवनियाँ प्रकाशित हो चुकी हैं और उनमें बिहार के बाबू वृजनन्दन सहाय की पुस्तक 'हरिश्चन्द्र का जीवन' बहुत विशद और मनोरंजक है। हिन्दी में उसका वही स्थान है जो उर्दू में 'हयाते ग़ालिब' का है। इन बातों पर नज़र डालते हुए यह कहा जा सकता है कि उन्नीसवीं सदी में हिन्दी भाषा ने हरिश्चन्द्र जैसा समर्थ, उन्नत-विचार और उमंग से भरपूर कवि नहीं पैदा किया औरगो अब भाषा की चर्चा दिन ब दिन ज़्यादा हो रही है मगर अभी बहुत अर्सा गुज़रेगा जब हमको साहित्य की गद्दी पर हरिश्चन्द्र का कोई उत्तराधिकारी दिखायी देगा।

—ज़माना, जनवरी सन् १९१३

मजनूं

मजनूं फ़ारसी और अरबी इश्क़ की दुनिया का बादशाह है मगर उसकी दास्तान पढ़ कर ताज्जुब होता है कि उसे यह जगह कैसे मिल गई। न कोई दिलचस्पी है और न कोई वाक़या। बस वह आशिक़ पैदा हुआ, आशिक़ जिया और आशिक़ मरा गोया उसकी ज़िन्दगी ही इश्क़ थी। इससे ग़रज़ नहीं कि इतिहास हमें उसका हवाला देता है या नहीं। इतिहास हुस्न-ओ-इश्क़ का ज़िक्र नहीं करता। हाँ, यह सब जानते हैं कि बड़े से बड़े नाम पैदा करनेवाले, बड़े से बड़े मुल्क जीतनेवाले को वह अमर जीवन नहीं मिला। उसके नाम पर शायर का क़लम झूमता है। उसके नाम से इश्क़ की दुनिया क़ायम है वर्ना अब ऐसे आशिक़ कहाँ। वह आशिक़ों की आहों, उम्मीदों, नाउम्मीदी, पागलपन, आत्म-विस्मृति की ज़िन्दा तस्वीर है। वह खुद एक कवि की सुन्दर कल्पना है। फ़ारस और अरब के शायरों ने आशिक़ के लिए जो जगह क़ायम की है मजनूं उसी का हक़दार है। वहाँ का आशिक़ एक लम्बा, कमज़ोर, दुबला-पतला आदमी होता है। उसके नाखून और बाल बड़े-बड़े होते हैं, बदन पर कोई कपड़ा नहीं होता और अगर होता है तो गरेबां से दामन तक फटा हुआ, आँखों से आँसुओं की नदी जारी, गाल पीले, नाखून से बदन खसोटे हुए, ज़मीन पर ख़ाक-धूल में लोटता हुआ, पागल, मतवाला, हद से ज़्यादा कमज़ोरदिल, मस्त ऐसा कि माशूक़ को भी न पहचाने, पहाड़ों और जंगलों में ख़ाक छाने, न कुछ खाये न पिये, खाये तो ग़म, पिये तो आँसू, हवा के सहारे ज़िन्दा रहे, ये आशिक़ों की ख़ासियतें हैं और मजनूं में ये ख़ासियतें हद को पहुँच गई हैं।

पुराने ज़माने के हीरो का आम क़ायदा है कि वह उसी वक़्त पैदा होते हैं जब उनके निराश माँ-बाप पहुँचे हुए फ़क़ीरों और अल्लाह के दोस्तों की चौखटों पर माथा रगड़ते-रगड़ते बूढ़े हो जाते हैं। मजनूं ने भी यही ढंग अपनाया। आप पैदा हुए तो बाप ने सारी दौलत लुटा दी। यह बच्चा माँ के पेट से आशिक़ पैदा हुआ, बूढ़ी दाई की गोद में उसे चैन न आता, रो-रोकर दुनिया सिर पर उठा लेता मगर जब कोई खूबसूरत औरत गोद में लेती तो आप खिल जाते।

बा दायये खुद न मी शुदे राम
बे माहरुख न दाश्त आराम

अपनी दाई के बस में नहीं आता था और किसी चंद्रमुखी के बिना चैन न लेता था ।

गर सौते खुशश बगोश रफ़्ते
आँ तिफ़्ल दमे ज़े होश रफ़्ते

अगर कोई अच्छी आवाज़ सुनता तो झूम उठता और मस्त हो जाता ।

ज्योतिषियों ने जब इस आशिक़ लड़के का सितारा देखा तो बोले कि 'यह उठती जवानी में पागल हो जायेगा ।'

काँ तिफ़्ल व सैले रोज़गारे
दीवाना शवद ज़े बख़्येयारे

ज़माने के बहाव के साथ दीवाना हो जाये किसी माशूक़ के इश्क़ में ।

दर इश्क़े बुते फ़साना गरदद
रुसवा शुदये ज़माना गरदद

माशूक़ के इश्क़ में कहानी की तरह सारी दुनिया में मशहूर हो जायेगा ।

लेकिन फ़ितदश गहे जवानी
दरसर हवसे चुना के दानी (हातिफ़ी)

लेकिन जब उस पर जवानी आयेगी तो उसके सर में एक हवस पैदा हो जायेगी जिसे इश्क़ कहते हैं ।

अज़ इश्क़ बुते नज़न्द गरदद
दीवाना ओ मुस्तमंद गरदद

इश्क़ में बदनाम, पागल और परीशान होगा ।

जब लड़के की पढ़ाई का वक़्त आया तो माँ-बाप ने उसे मक्तब में बिठा दिया । इस मक्तब में कुछ लड़कियाँ भी पढ़ती थीं । लैला उनकी रानी थी । हुस्न और नज़ाकत में लाजवाब । आशिक़ मजनूं ने उसे छाँटा । दोनों मक्तब में बैठे-बैठे इशारे-नज़ारे करते । इश्क़ रंग लाने लगा । (समझदार लड़के और लड़कियों को एक ही मक्तब में पढ़ाना ठीक है या नहीं इस सवाल पर राय क़ायम करने में यह दास्तान पढ़नेवालों को बहुत दिक़्क़त नहीं हो सकती ।)

आँ गुलशने हुस्न रा ब एक बार
शुद क़ैस ब नक़्दे जाँ ख़रीदार

क़ैस यानी मजनूं इस हुस्न के बाग़ को फ़ौरन ही अपनी जान की क़ीमत देकर ख़रीदने पर तैयार हो गया ।

लैला चू रफ़ीक़े ख़ेश दीदश
ऊ नीज़ ब मेह्रे दिल ख़रीदश

लैला ने जब मजनूं को अपना दोस्त पाया तो उसने भी उसे अपने दिल की मेहरबानी से मोल ले लिया।

इश्क़ आमद व दर्द सीना जा कर्द
खुद रा बदो यार आशना कर्द

इश्क़ आया और सीने में दर्द की जगह पैदा की और अपने आप को दोनों से परिचित कराया।

दर खानये सब्र आतश उफ़्ताद
शुद खिरमने नंगोनाम बरबाद

सब्र की जगह पर आग गिर पड़ी और इज़्ज़त-आबरू का खलिहान बर्बाद हो गया।

धीरे-धीरे यह भेद लड़कों पर खुल गया। चर्चा फैली। लैला की माँ ने यह हालत देखी तो लड़की को मक्तब से उठवा लिया। समझाने लगी।

गुफ़्तश के शनीदम अज़ फ़लाने
का शुफ़्तईतू शुदी जवाने

मैंने किसी से सुना है कि तू किसी जवान पर आशिक़ हो गई है।

वीं हम के तू नीज़ असीरे रूये
आज़ुर्दा जे ज़ख्मे तीरा रूये

और यह भी कि तू इश्क़ में फँसी तो उसके जो काला सियाह है।

गीरम बुअदत हज़ार आशिक़
माशूक़ा शुदन ज़े तू चे लायक़

मैंने माना कि तेरे हज़ारों आशिक़ हैं लेकिन तुझे किसी का आशिक़ होने की क्या जरूरत।

दुख्तर कि ब ईनो आँ न शीनद
जुज़ रू सियही दिगर न बीनद

लैला ने माँ की बात न सुनी और सिवाय मुँह काला करने के कोई सूरत नज़र न आई।

गुल रा शरफ़ ओ लताफ़ते हस्त
चंदाँ के न कर्द कस बदूदस्त

फूल की इज़्ज़त और उसकी नज़ाकत तभी तक है जब तक कि कोई उसे न छुए।

आँ कस के गिरफ़्त ओ कर्द बूयश
अज़ दस्त बेफ़गनद बकूयश

जैसे ही आदमी ने उसको छुआ और सूंघा, हाथ में रखने के बदले मुहल्ले में फेंक दिया।

तरसम के चू गरदद ईं ख़बर फ़ाश
बदनाम शवी मियाने औबाश

मैं डरती हूँ कि अगर यह बात फैली तो तू बदमाशों में बदनाम हो जायेगी।

सूफ़ी कि रवद ब मजलिसे मै
वक़्ते बचकद प्याला बरवै

सूफ़ी जब शराब की मजलिस में जाता है तो वह छलकता हुआ शराब का प्याला चढ़ा जाता है।

आँ कस कि मगस ज़े कासा रानद
नाख़ुरदन ओ ख़ुरदनश न दानद (ख़ुसरो)

वह आदमी जो प्याले में से मक्खो निकाल देता है तो वह उसका खाना और नहीं खाना नहीं जानता यानी खाना न खाना बराबर समझता है।

मगर लैला पर इन नसीहतों का वही असर हुआ जो आशिक़ों पर हुआ करता है।

उसने फ़ौरन इन बातों से अपने को अनजान जताया, भोली-भाली लड़की बन गई और कहने लगी, 'अम्माँ, इश्क़ क्या होता है ?'

कै मादर दहर इश्क़ गो चीस्त
माशूक़ कुदाम व आशिक़म कीस्त

ऐ मेरी माँ, इश्क़ क्या चीज़ है, मैं किसकी आशिक़ हूँ और मेरा माशूक़ कौन है ?

आँ इश्क़ गुलेस्त दर बहारे
या नाम दिहेस्त दर दयारे

वह इश्क़ बहार का कोई फूल है क्या या किसी मुकाम का नाम है ?

या इश्क़ ज़े जिन्स खुर्द पिनहास्त
अज़ बह्रे खुदा ब मन बिगो रास्त

या वह इश्क़ कोई छिपी हुई चीज़ है, खुदा के वास्ते मुझे अच्छी तरह ठीक-ठीक बता।

हरगिज़ न शनीदाएम ईं नाम
लफ़्ज़े के नीस्त दर जहाँ आम

मैंने यह नाम कभी नहीं सुना। ऐसा कोई लफ्ज़ दुनिया में आम नहीं है।

माँ बेचारी सीधी-सादी औरत थी। लड़की की बातों पर यक़ीन आ गया। इधर इश्क़ ने और पाँव निकाले। मियाँ मजनूं मदरसे जाते और रो पीटकर घर

चले आते । आखिर जब देखा कि इस रोने-धोने से काम न चलेगा तो एक दिन आप अंधे बन बैठे और लैला के दरवाज़े पर जाकर रास्ता पूछा। लैला ने उनका हाथ पकड़कर रास्ता बताया। दिल की कहानी कहने-सुनने का भी मौक़ा मिल गया। अब तो आपको चस्का पड़ गया। अब आप फ़क़ीर बनकर लैला के दरवाज़े पर पहुँचे और आवाज लगाई। लैला ने आवाज पहचान ली। खुद भीख लेकर दरवाज़े पर आई। नज़रें मिलीं और दिल ठण्डे हुए। फिर तो मियाँ मजनूं रोज़ एक न एक स्वांग भरते यहाँ तक कि बहरूप खुल गया। लोग मजनूं की ताक में रहने लगे कि मौक़ा पायें तो हमेशा के लिए क़िस्सा पाक कर दें। यह पाँसा भी पट पड़ा। लैला की जुदाई ने मजनूं को पागल बना दिया।

दीवानए इश्क़ शुद ब एक बार
रुसवाये मुहल्ला गश्त ओ बाज़ार

वह इश्क़ में पागल हो गया। मुहल्ले-बाज़ार में बदनाम हो गया।

गश्ते सरोपा बरहना पैवस्त
तिफ़्लाने क़बीला संगे दरदस्त

हमेशा नंगे पांव और नंगे सर रहता और क़बीले के बच्चे उसे पत्थर मारते।

दर कू बफ़ुग़ाँ ज़े संगे एशाँ
दरख़ाना बजाँ ज़े पंदे ख़ेशाँ

मुहल्ले में उनके पत्थरों से परेशान और घर में घरवालों की नसीहत से तंग।

हर हर सरे कोह फ़सानए ऊ
दर हर महफ़िले तरानए ऊ

हर पहाड़ की चोटी पर उसी की कहानी थी और हर महफ़िल में उसी का तराना था।

मजनूं का इतना बुरा हाल देखा तो बाप को फ़िक्र हुई। पहले तो समझते रहे कि यह इश्क़ यूँ ही है, होश आयेगा तो आप ही असर जाता रहेगा। मगर जब देखा कि हर रोज़ रंग गाढ़ा होता जाता है तो एक दिन आपने मजनूं से पूछा—तुम्हारी यह क्या हालत है ? क्या फ़िक्र है ? इस पागलपन का क्या सबब है ? अगर इश्क़ ने सताया है तो माशूक़ कौन है ?

परवानए शोलए चे शमई
आशुफ़्ताये गुलरुखे चे जमई

तू किस चिराग़ के शोले का परवाना है और किस फूल जैसे गालों वाले का आशिक़ है ?

॥ मजनूं ॥

आहूए कुदाम लालाज़ारत
कर्द अज़ नज़रे चुनी शिकारत

तेरा हिरन किस बाग़ का है जिसने एक निगाह में तुझे शिकार कर लिया ?

मगर मजनूं की अक़्ल बिल्कुल ठिकाने न थी। बाप को भी न पहचान सका। पूछने लगा तुम कौन हो, कहाँ से आए हो ? और जब मालूम हुआ कि यह बुजुर्ग मेरे बाप हैं तो बोला—

मजनूं गुफ़्तश बिगो पिदर चीस्त
ग़ैरज़ लैला कसे दिगर कीस्त

मजनूं ने उससे कहा—बाप क्या चीज़ है, सिवाय लैला के दूसरा कौन है।

नामद ज़े मए कि इश्क़ दादश
अज़ मादरो अज़ पिदर बयादश

उसको इश्क़ ने जो शराब पिलाई है उसमें वह माँ-बाप को भूल गया है।

बेटे का तो यह हाल, बूढ़े बाप ने नसीहतों का दफ्तर खोल दिया। दुनिया की ऊँच-नीच सुझाई, कमाल पैदा करने की नसीहत की और अपनी लंबी-चौड़ी बातें औरतों की बेरुख़ी और मक्कारी पर ख़त्म कीं।

ज़ीं शेफ़्तगी व खामकारी
बिसियार कशी ज़े दहर ख़ारी

इस मुहब्बत और नातजुर्बेकारी की वजह से तू दुनिया में बहुत बेइज़्ज़त होगा।

ख़ाही चू सम्रादते गरामी
दानिश तलब ओ बलंद नामी

अगर तू चाहता है कि ख़ुशकिस्मत हो तो इल्म और बड़ा नाम हासिल कर।

अकनूं कि जवानओ होशमंदी
बायद तलबीदन अर्जुमंदी

अभी तू जवान और समझदार है, तुझे चाहिए कि इज़्ज़त और नाम पैदा करे।

फ़र्दा कि शवी बसाने मन पीर
अफ़सोस खुरी व नीस्त तदबीर

कल तू मेरी तरह बुड्ढा हो जायेगा फिर अफ़सोस करेगा लेकिन तब कोई इलाज न होगा।

बा अस्ल ओ नसब मबाश मग़रूर
काँ हस्त ज़े मर्दुमी दूर

खानदान और जात-पाँत पर घमंड न कर क्योंकि ये बातें मर्दानगी से दूर हैं।

कस मेह्रो वफ़ा ज़े ज़न न जूयद
कज़ शोरा ज़मीं समन न रूयद

कभी औरत से मुहब्बत और मेहरबानी की उम्मीद न रखनी चाहिए क्योंकि बंजर ज़मीन में चमेली कभी नहीं लगती।

चश्मश कि नज़र बनाज़ कर्दा
बर तू दरे फ़ितना बाज़ कर्दा

उसकी चितवन ने एक ख़ास नज़र करके तुझ पर फ़ितने और फ़साद का दरवाज़ा खोल दिया है।

मगर आशिक़ों पर नसीहतों का असर कब हुआ है। ख़ास तौर पर ऐसी नसीहत का जिसमें दिल की हालत का ज़रा भी ख़याल न रक्खा गया हो और जिसमें हमदर्दी का कोई पहलू न हो। मजनूं ने इसके जवाब में मजबूरी और बेबसी जतायी और किसी क़दर बेअदबी के साथ कहा, 'आप इस गली से वाक़िफ़ नहीं, आप मेरे दर्द को क्या जानें, मुझे मेरे हाल पर छोड़ दीजिए।'

ईं शेफ़्तगी बदस्ते मन नीस्त
कस दुश्मने जान खेश्तन नीस्त

यह इश्क़ मेरे बस का नहीं है क्योंकि कोई आदमी अपनी जान का दुश्मन नहीं होता।

ख़ाही ज़े फ़िराक़े ऊ न नालम
बरख़ेज़ ओ बरारश अज़ ख़यालम

अगर तू चाहता है कि मैं उसकी जुदाई में न रोऊँ-चिल्लाऊँ तो उठ और उसका ख़याल मेरे दिल से निकाल दे।

ख़िजलतज़दा ओ सियाहकारम
वज़ कर्दये ख़ेश शर्मसारम

मैं क़ुसूरवार हूँ और अपने किये पर शर्मिन्दा हूँ।

चूँ नीस्त बदस्त अख़्तियारम
बगुज़ार पिदर, मरा बकारम॥

जब मुझे अपने पर अख़्तियार नहीं तो यही अच्छा है कि ऐ बाप तू मुझे मेरी हालत पर छोड़ दे।

आँ बेह कि नसीहतम न गोई
दस्त अज़ मनो कारे मन बशोई

॥ मजनूं ॥

यही अच्छा है कि तू मुझे कोई नसीहत न कर और मुझसे और मेरे काम से हाथ धो ले।

आँ दीदा कि आमद अज़ अज़ल कूर
अज़ यारिए सुरमा कै दिहद नूर

वह आँख जो पैदा ही अंधी हुई उसको सुरमे की मदद से क्या रोशनी मिल सकती है।

पन्दम चे दिही, चे जाये पन्दस्त
पन्दे तू मरा न सूदमन्दस्त

तू मुझे नसीहत करता है, यहाँ नसीहत की क्या जगह है, तेरी नसीहत से मुझे क्या फ़ायदा।

अब जवाब का आख़िरी टुकड़ा मतलब से भरा हुआ है जो एक हद तक असलियत का रंग लिये हुए है।

ऊ नै लैला ओ मन न मजनूं
यक तन शुदाएम हर दो अकनूं

वह लैला नहीं है और मैं मजनूं नहीं हूँ। हम दोनों अब एक बदन हो गये हैं।

उधर लैला की हालत भी ख़राब थी। दिन-रात रोती-धोती रहती थी।

मी गुफ्त कि आह चूँ कुनम चूं
मजनूं शुदाअम ज़े इश्क़े मजनूं

कहती थी कि हाय मैं क्या करूँ। मजनूं के इश्क़ में खुद मजनूं हो गई हूँ।

ऐ बादेसबा चू मी तवानी
कज़ मन खबरे बाऊ रसानी

कहती, ऐ सुबह की नर्म और ठंडी हवा, अगर तुझसे हो सके तो मेरी हालत उससे कह देना।

मन हम ज़े तू कुश्तए फ़िराक़म
जुफ़्तम ब ग़मत ग़रज़ तू ताक़म

मैं भी तेरी जुदाई की मारी हुई हूँ। अगरचे तुझसे जुदा हूँ लेकिन तेरे ग़म के साथ हूँ।

ऐ दोस्त बिया दवाये मन कुन
फ़िक्रे मनो दर्दहाय मन कुन

ऐ दोस्त आ और मेरी दवा कर, मेरे दर्द की फ़िक्र कर।

मसलत न हरीफ़े रंजो दर्दम।
दानी कि जनम न चूँ तू मर्दम॥

॥ **विविध प्रसंग** ॥

तुझ-जैसा मेरे ग़म और दर्द का साथी नहीं है। तू जानता है कि मैं औरत हूँ मर्द नहीं हूँ।

ज़न ज़े आतशे इश्क़ बेश सोज़द
ख़ाशाके ज़ईफ़ पेश सोज़द

ग़ौरत इश्क़ की आग में ज़्यादा जलती है जैसे कमज़ोर घास-फूस फ़ौरन ही जलकर राख का ढेर हो जाते हैं।

मजनूं के बाप ने जब देखा कि खाली नसीहतों और तसल्लियों से काम न चलेगा और लड़का बिलकुल दीवाना हो चुका है तो लैला के बाप से दर्ख्वास्त की कि मजनूं से लैला की शादी कर दें मगर लैला के बाप ने बड़ी बेदर्दी से इन्कार कर दिया और अपनी मजबूरी इन शब्दों में व्यक्त की—

फ़र्ज़न्दे तू देव ज़िश्त ख़ूईस्त
दीवाना ओ तुन्द ओ हर्ज़गोईस्त

तेरा बेटा शैतान की सी प्रकृति रखता है। वह पागल है, सख्त तबीयत है और बकवास करता रहता है।

इस्लाह पिज़ीर नीस्त मजनूँ
अज़ वर्तये अक़्ल हस्त बेरूँ

मजनूं सीधे रास्ते पर नहीं आ सकता। वह अक़्ल के घेरे से दूर जा पड़ा है।

बदनामतरे अज़ू न बीनम
खुदकामतरे अज़ू न बीनम

मैंने उससे ज़्यादा बदनाम और उससे ज़्यादा मतलबी दूसरा नहीं देखा।

दानी कि मरा न बा तू जंगस्त
न अज़ तू व ख़ेशिये तू नंगस्त

तू जानता है कि मेरी तुझसे लड़ाई नहीं है और न तुझसे और तेरे रिश्तेदारों से मैं कोई शर्म रखता हूँ।

ईं कार वले न कारे सहलस्त
दीवानए तू न यारे अहलस्त

लेकिन यह काम आसान नहीं है क्योंकि तेरा दीवाना दोस्ती के लायक़ नहीं है।

तूती कि ब चोग़द हम नफ़स कर्द
बुलबुल कि ब ज़ाग़ दर क़फ़स कर्द

यह एक ऐसी ही बात है जैसे तूती का साथी उल्लू को बनाना या बुलबुल

के साथ कौवे को पिंजरे में रखना।

मजनूं के बाप ने इन ऐबों की सफ़ाई में बहुत ज़ोरदार तक़रीर की और कहा कि आपका यह ख़याल बिलकुल ग़लत है। मजनूं न तो बदमिज़ाज है और न बदमस्त। उसे सिर्फ इश्क़ की बीमारी है, उसकी दवा मिली और वह होश में आया। आप खुद उसे देखलें, उसकी आदत का इम्तहान कर लें, किसी के कहने-सुनने में न आयें। हुक्म हो तो हाज़िर करूँ। वह इस बात पर राज़ी हो गया और हज़रत मजनूं बुलाए गए मगर सवाल-जवाब की नौबत आने के पहले ही क़िस्मत की बात कि लैला का कुत्ता उधर से निकल पड़ा। 'दीवानारा हूए बसस्त' मजनूं को अब कहाँ सब्र, आप उठे और दौड़कर कुत्ते को सीने से चिपका लिया, कभी उसके नाखूनों को चूमते, कभी उसके मुँह को प्यार करते और उसकी तारीफ़ों के पुल बाँध दिये।

बरजस्त ज़े जाये ख़ेश आज़ाद
वज़ शौक़ बदस्तओ पायश उफ़्ताद

अपनी जगह से बेचैन होकर उठा और उसके पाँव पर गिर पड़ा।

मालीद ब पुश्त ओ पाये ऊ रूए
कीं पाये गुज़श्ता जस्त ज़ाँ कूए

उसकी पीठ और पाँव पर अपना चेहरा मला क्योंकि उसके पाँव लैला के मुहल्ले में गुज़रते थे।

आवुर्द बहस्रतश दर आग़ोश
ख़ारीद ब नाख़ुन आँ सरोगोश (हातिफ़ी)

बड़े अरमान से उसे गोद में लिया और उसका सर और कान खुजलाने लगा।

पायश ज़े कुलूखे खार मीरुफ़्त
वज़ पाओसरश गुबार मी रुफ़्त

उसके पाँव से काँटे साफ़ करता था और उसके पाँव और सर की मिट्टी साफ़ करता था।

दामन बतहश फ़िगन्दा दर ख़ाक
मीकर्द ब आस्तीं सरश पाक

अपना दामन उसके नीचे बिछाता और उसका सर आस्तीन से झाड़ता।

बोसीदा सरश ब रुफ़्क़ ओ आरज़्म
ख़ारीद तनश बनाख़ुने नर्म

उसका सर प्यार से चूमता और उसका बदन धीरे-धीरे नाखून से खुजाता।

॥ विविध प्रसंग ॥

गुफ़्त ऐ गिलेस्त अज़ वफ़ा सरिश्ता
नक़्शत फ़लक अज़ वफ़ा सरिश्ता

कहता जाता कि तेरी मट्टी वफ़ा से गूंधी हुई है और तेरी तस्वीर वफ़ा के आसमान से बनाई हुई है।

हमनान कसाँ हलाल खुर्दा
हम खुर्दा खुद हलाल कर्दा

तूने जिसका खाया उसे हलाल करके खाया और अपना खाया हुआ हलाल कर दिया।

सद रौज़ये खुश बज़ेरे पायत
दर रौज़येगह बिहिश्त जायत

तेरे पाँव के नीचे सैकड़ों बाग़ हैं और हर बाग़ में एक जन्नत है।

सद खूँ ज़े लबत चकीदा दर खाक
वज़ लौसे खबासतत दहन पाक

सैकड़ों खून तेरे ओंठ से टपके लेकिन तेरा मुँह खबासत से पाक है।

गर तू सगे अज़ सरिश्ते दौराँ
ईनक सगे तू मनम बसद जाँ

अगरचे तू दुनिया का कुत्ता है लेकिन अब मैं तेरा कुत्ता हूँ।

मजनूं की ज़बान ने इस वक़्त कमाल का ज़ोर दिखाया। यह गोया अपनी उम्मीदों और मुरादों का मर्सिया था। मजनूं से दामन छुड़ाकर लैला के बाप ने बेटी की शादी इब्ने सलाम से कर दी। लैला को बहुत ग़म हुआ। जहाँ तक शर्म ने इजाज़त दी उसने अपनी नाराज़ी ज़ाहिर की मगर जब कुछ ज़ोर न चला तो रो-धोकर चुप हो गई। खुशी की महफ़िल सजाई गई। क़ाज़ी साहब तशरीफ़ लाये। शादी की रस्में अदा की गईं और दूल्हा-दुल्हन के मिलने की तैयारियाँ होने लगीं। दूल्हा बन-ठन के दुल्हन के कमरे में आया।

आमद ब सूए उरूस दामाद
बा खातिरे खुर्रम ओ दिले शाद

बड़ी खुशी और शौक़ से दूल्हा दुल्हन की तरफ़ बढ़ा।

दर पहलुए ज़न निगार बनशस्त
मी खास्त के सूए ऊ बर दस्त

सवाँरी हुई दुल्हन के पास बैठा और चाहता था कि उस पर हाथ डाले कि

बर रूये ज़दश तमाचए सख़्त
जां गूना दरू फ़िताद अज़ तख़्त

दुल्हन ने दूल्हे को इस ज़ोर से तमाचा रसीद किया कि वह तख़्त से नीचे गिर पड़ा।

गुफ़्तश चे ख़याले ख़ाम दारी
गुल बूए मकुन ज़े काम दारी

और उससे कहा कि किस बेहूदा ख़याल में है। मेरी जवानी के फूल का रस न चूस।

ईं तख़्त मुक़ामे ताजदारीस्त
कीं ख़ुतबा बनामे शह्रयारीस्त (हातिफ़ी)

यह मुक़ाम ताजदार का है और यह ख़ुतबा बादशाह का।

लैलीश चुना तमाचए ज़द
कि उफ़्ताद मर्द मुर्दा बेख़ुद

लैला ने उसके इस ज़ोर से तमाचा मारा कि वह मुर्दे की तरह गिर पड़ा।

यहाँ क़िस्से में कुछ विरोध है। निज़ामी और हातिफ़ी कहते हैं कि लैला की शादी इब्ने सलाम से हुई और दोनों की एक राय है कि लैला ने अपने लालची शौहर के मुँह पर तमाचा मारा। आख़िर वह गरीब चाँटा खाकर भाग खड़ा हुआ और तलाक़ के सिवा कोई सूरत नज़र न आई। मगर ख़ुसरो फ़रमाते हैं कि मजनूं की शादी नूफ़ल की लड़की से हुई। नूफ़ल शायद मजनूं के क़बीले का सरदार था। उसे मजनूं की परेशानी पर तरस आया। मजनूं की तरफ़ से लैला के बाप के पास शादी का पैग़ाम भेजा और इन्कार की हालत में लड़ाई की धमकी दी। लैला का क़बीला भी लड़ाई में एक ही था। लड़ाई हुई और लैला का बाप हारा। मगर जब उसके क़बीलेवालों ने इस मार-काट को ख़त्म करने के लिए लैला को मार डालना चाहा तो मजनूं बेताब हो गया। उसने नूफ़ल से दरख़्वास्त की कि ख़ुदा के वास्ते इस हंगामे को ख़त्म कीजिए।

आँ तीर मज़न बदुश्मनाँ पेश
कज़ वै दिले दोस्ताँ कुनी रेश

दुश्मनों पर वह तीर न चला जिससे दोस्तों का दिल ज़ख़्मी हो जाय।

चूं जामये बख़्ते मन कबूदस्त
अज़ कोशिशे मर्दुमा चे सूदस्त

चूँकि मेरी क़िस्मत का लिबास आसमानी है यानी मैं बदनसीब हूँ, लोगों की कोशिश से क्या फ़ायदा।

नूफ़ल ने अपनी फ़ौज हटा ली मगर उसकी बहादुरों-जैसी हमदर्दी ने यह न चाहा कि वह मजनूं को अपना दामाद बना ले। मजनूं ने रिश्तेदारों के समझाने

और नूफ़ल की बहादुरी से प्रभावित होकर यह शादी मंजूर कर ली। धूम-धाम से ब्याह हुआ मगर

चूं शुद गहे आँ कि खुर्रम ओ शाद
हम ख्वाबा शवन्द सर्व ओ शमशाद

खुशी से भरी हुई घड़ी में सरो और शमशाद जैसे दूल्हा-दुल्हन एक कमरे में सोने गये।

अज़ तख्ते शही सुबुक फुरू जस्त
बर रूये ज़मीं चू ख़ाक बनशस्त

मजनूं दुल्हन की सेज से नीचे कूदा और ज़मीन पर मट्टी को तरह बैठ गया।

मह दर पये आँ कि शवद जुफ़्त
दीवाना ज़े माहेनौ बर आशुफ़्त

चाँद जैसी दुल्हन इस फ़िक्र में कि अपने दूल्हे से मिले और मजनूं की ऐसी हालत जैसी नये चाँद पर पागल का पागलपन और बढ़ जाता है।

अज़ बसके गिरीस्त सीना पुरताब
शुद नक़्शे बिसात शुस्ता ज़ाँ आब

(सीने की आग की बेचैनी से इस क़दर रोया कि आँसुओं से फ़र्श के फूल-बेल धुल गये।)

लैला ने यह खबर सुनी तो बेचैन हो गई। उस वक्त शिकायत के ढंग पर एक चिट्ठी लिखी, कोमल भावनाओं से भरी हुई, कि मैं तुम्हारे नाम पर क़सम खाये बैठी रहूँ, तुम्हारे लिए रोऊँ, तुम्हारे वियोग में जलूँ और घरवालों के ताने सहूँ और तुम वफ़ादारी की शर्त को इस बेदर्दी से भुला दो!

मन बे तू चुनी बग़म नशस्ता
अज़ हर चे बजुज़ तू रूये बस्ता

मैं तेरे ग़म में इस तरह बैठी हुई हूँ और सिवा तेरे सबसे मुँह बाँधे हुए हूँ।

चू साया रवद बराहे बा मन
फ़रक़े न कुनी ज़े साया ता मन

तू मेरे रास्ते में साये की तरह रहता है, मुझमें और मेरे साये में फ़र्क़ नहीं करता।

दीदी के ब मारिज़े हलाकम
चूं बाद बरो शुदी ज़े ख़ाकम

तू देख रहा है कि मैं मरने के किनारे तक पहुँच गई हूँ और तू मेरी ख़ाक पर हवा की तरह गुज़र रहा है।

बेगाना सिफ़त ख़राम कर्दी
बेगानगी तमाम कर्दी

ग़ैरों का रास्ता अख़्तियार कर रहा है और परायेपन को तूने हद कर दी।

अकनूं ब विसाल खुफ़्तये शाद
हमख़ाबये तू मुबारकत बाद

अब तू अपनी दुल्हन के साथ खुशी खुशी सो रहा है, तुझे तेरे साथ सोनेवाली मुबारक हो।

बाई हमा दोस्तदारो यारम
बा यारे तू नीज़ दोस्तदारम

(मैं इन तमाम बातों पर भी तेरी दोस्त हूँ और तेरे साथी की भी दोस्त हूँ।)

आँ यार कि दोस्त श्त यारम
दुश्मन बुअदम अर न दोस्त दारम

वह दोस्त जो मेरे प्रेमी को दोस्त रक्खे अगर मैं उसे दोस्त न रक्खूँ तो उसकी दुश्मन हूँ।

गर तू ब कुनी ब मेह्र यादम
अज़ तरबियते ग़मे तू शादम

अगर तू मेहरबानी से मुझे याद करे तो तेरे ग़म में भी ख़ुश हूँ।

मजनूं तो आशिक़ ही थे उसका एक लम्बा-चौड़ा जवाब लिखा। खूब रोये-गिड़गिड़ाये और मान लिया कि मैंने शादी की, मजबूर था, बेबस था मगर मैंने अगर इस माशूक़ की सूरत देखी हो तो मेरी आँखें फूट जायँ। कैसा नाजुक शेर है—

मुर्ग़े कि परश बिरेख़्त अज़ तन
बेहूदा बुअद क़फ़स शिकस्तन

वह चिड़िया जिसके पर उखाड़ दिये गये उसका पिंजड़ा तोड़ना फ़िज़ूल है।

यह खुसरो की रवायत है मगर हमारे ख़याल में निज़ामी और हातिफ़ी की रवायत ज़्यादा सही है। मजनूं अपने बाप को कई बार बेअदबी से जवाब दे चुका था। इस वक़्त सिर्फ़ अदब की ख़ातिर उसका क़ाबू में आ जाना मुमकिन नहीं मालूम होता। इसके विपरीत लैला औरत थी और अपने ज़िद्दी माँ-बाप की ज़्यादा खुल्लम-खुल्ला मुख़ालिफ़त नहीं कर सकती थी। इसलिए जब मजनूं को मालूम हुआ कि लैला की शादी इब्ने सलाम से हो गई तो उसने एक दर्द से भरी हुई चिट्ठी लिखी थी। (खुली खुली शिकायतें की थीं। तुम वादा तोड़नेवाली हो, दग़ाबाज़ हो, फ़रेबी हो।)

॥ विविध प्रसंग ॥

दानी ब मनत चे वादहा बूद
हर्गिज़ ब तू ईं गुमां कुजा बूद

तू जानती है कि मुझसे तूने क्या वादा किये थे, मुझे तुझसे यह उम्मीद कहाँ थी।

ऐ गंजे सुख़न दरोग़ वादा
वै दिलबरे बे फ़रोग़ वादा

(ऐ बातों के ख़ज़ाने, ऐ वादा न पूरा करनेवाले, ऐ माशूक़, ऐ वादा भूल जानेवाले।)

गाहम ब सुख़न फ़रेब दादी
बा वादा गहे शकेब दादी

कभी तूने मुझे अपने वादों से तसल्ली दी और कभी अपनी बातों से धोखा दिया।

लैला ने इसका बड़ी गंभीरता से जवाब दिया और मजनूं की तसल्ली की। आजकल के उर्दू शायरीवाले माशूक़ों की तरह खंजर हाथ में न लिये रहती थी, वफ़ा की शर्त और क़ायदे को जानती थी।

अफ़सानये कस न कर्दा अम गोश
पस खुर्दये कस न कर्दा अम नोश

मैंने किसी की बातों पर यक़ीन नहीं किया और न किसी का जूठा खाया है।

दानी कि मरा ब तू वयारे
दर बस तने अक़्द इख़्तियारे

तू जानता है कि मेरी तुझसे दोस्ती है। अपनी शादी करने के लिए तुझे अख़्तियार है।

चीज़े कि बर इख़्तियारे मन बूद
जाँ मुद्दइयत न गश्ता खुशनूद

जो चीज़ कि मेरे बस में थी उससे तेरा दुश्मन खुश न हुआ।

कम कुन ज़े शर्मसारम
मन खुद ज़े तू इन्फ़ेआल दारम

ज़्यादा गुस्सा न हो, मैं शर्मिन्दा हूँ। मुझे खुद तुझसे संकोच होता है।

इश्क़ की बीमारी बढ़ती गई। पहले तो क़ैस ही मजनूं थे अब लैला भी मजनूं (पागल) बनी। शर्म और हया की रोक-थाम कम हुई। उसने एक दिन सपना देखा कि मजनूं आया है और बहुत दर्दभरे, दिल के टुकड़े कर देनेवाले अंदाज़ में अपनी ग़म की दास्तान सुना रहा है। रोता है और उसके तलुओं से आँखें

मलता है। यह सपना देखते ही बेचैनी के मारे लैला की आँख खुल गई। उसने (दिल को फूँक देनेवाली एक आह) भरी और सुबह होते ही शर्म-हया पर लात मारकर अपने ऊँट पर सवार होकर नज्द का रास्ता लिया और पागलों की तरह मजनूं को ढूँढ़ने लगी। आह, इस आग ने मजनूं को बिलकुल घुला डाला। ऐसा कमज़ोर हो गया था कि लैला उसे पहचान न सकी। घुटनों पर सर झुकाये, एक चट्टान का तकिया बनाये, खुले मैदान में, जहाँ न कोई पेड़ न छाया, वह बैठा हुआ था। उसकी मुहब्बत का ही असर था कि जंगल के खूनी जानवर हिरनों के साथ उसके आस-पास बैठे थे। ऊँट इन जानवरों को देखते ही भागा मगर लैला फुर्ती से कूद पड़ी और जानवरों के बीच में से निर्भय निकलकर मजनूं के पास खड़ी हो गई और उसकी सेवा-शुश्रूषा करने लगी।

आँ सर के बख़ाके रह फ़ितादश
बर ज़ानुए ख़ेश्तन निहादश

वह सर जो रास्ते की ख़ाक पर पड़ा था उसे अपनी जांघ पर रक्खा।

अश्क अज़ रुख़े ग़रीब ग़मनाक
मी कर्द ब आस्तीने खुद पाक

अपनी आस्तीन से उस ग़रीब ग़म के मारे के चेहरे से आँसू पोंछे।

मजनूं को दोस्त की निकटता ने अधीर कर दिया। लैला उसकी अधीरता से प्रभावित होकर बोली—

ऐ आशिक़े ज़ार ग़मगुसारम
मक़सूदे तू चीस्त ता बरारम

ऐ मेरा ग़म खानेवाले आशिक़, बता तू क्या चाहता है। तेरी कोई ख़्वाहिश ऐसी नहीं जिसे मैं पूरा न कर सकूँ।

आँ बेह के दिहेम दस्त बाहम
वाँ गह ब निहेम सर ब आलम

यह अच्छा होगा कि हम-तुम (हमेशा के लिए) एक दूसरे का हाथ थाम लें और फिर दुनिया में रहें।

यह लहज़ा जुदा न बाशेम
बा हेचकस आशना न बाशेम

पल भर को भी जुदा न हों और दूसरे किसी से कोई मतलब न रक्खें।

मगर मजनूं को इश्क़ और रोने-धोने से काम था। शायद लैला से मिलने और उसकी सूरतें निकालने की तरफ़ उसका खयाल ही नहीं गया था। तड़पना और जलना उसकी तबियत बन गयी थी। इस मौक़े पर शायरों में कुछ मतभेद

हो गया है। हज़रत खुसरो कहते हैं :

आसूद दो मुर्ग़ दर यके दाम
वामीख़्त दो बादा दर यके जाम

दो बुलबुलें एक जाल में ऐसी खुशी से मिल गईं कि जैसे एक प्याले में दो शराबें मिला दी हों।

दर सुब्ह् बहम दमीदा अज़ दूर
दो शोलारा यके शुदा नूर

दूर से सुबह की रोशनी चमकी और दो शोलों से एक नूर पैदा हो गया।

मगर हज़रत निज़ामी और हातिफ़ी ने मजनूं की इश्क़ की इज़्ज़त बहुत ऊँची कर दी है। चुनाँचे इस मौक़े पर हातिफ़ी ने मजनूं के पाक दामन पर धब्बा नहीं लगाया। ख़याली इश्क़ को अमली मैदान में क़दम नहीं रखने दिया। मजनूं को उस वक़्त लैला की बदनामी का ख़याल आया। सारी ज़िन्दगी उसे बदनाम करने में खर्च की, खुद भी दुनिया के ताने सहे और उस पर उँगलियाँ उठवाईं मगर उस वक़्त विरोधियों का डर आड़े आ गया, बोले—

आं बेह् कि निहां ज़े ईनो आनत
नज़दीके पिदर बरम रवानत

यह अच्छा है कि मैं तुझे बहुत पर्देदारी के साथ तेरे बाप के पास ले चलूँ।

दस्तम न दिह्द अगर विसालत
क़ाने शवम अज़ तू बा ख़यालत

(अगर वे तुझे मेरे साथ रखने पर खुश न हों तो न सही। मैं तेरे खयाल ही से खुश रहूँगा।)

ज़ीं पस मनम ओ ख़याले तू ऐ दोस्त
ता दस्त दिह्द विसालत ऐ दोस्त

(और इसके बाद फिर जब तक ऐ दोस्त, तू मुझसे न मिले मैं हूँ और तेरा ख़याल।)

लैला अपने घर लौट आई। आशिक़ की इससे ज़्यादा और क्या ख़ातिर की जा सकती थी। कुछ दिनों तक वे दोनों इसी ग़म में घुलते रहे। मजनूं अब आशिक़ाना शेर कह कर अपने दिल की आग बुझाने लगा और उन शेरों में दर्द और दिल की तड़प का ऐसा असर होता था कि सुननेवालों के कलेजे मुँह को आ जाते थे। इश्क़ अपनी आख़िरी हद तक पहुँच चुका था, वह इश्क़ जो आप अपनी मंज़िल हो, वह इश्क़ जो दोस्त की मुलाक़ात की हदों का पाबंद न हो, उसका अंजाम और क्या हो सकता था। हातिफ़ी कहता है, लैला ने सपना देखा कि

मजनूं मर गया और उसी दिन उसे मारे ग़म और बेचैनी के बुख़ार आ गया। इस बुख़ार की आग ने दिल की जलन के साथ मिलकर उसका काम तमाम कर दिया। उसके मुक़ाबले में ख़ुसरो की यह रवायत ज़्यादा सही मालूम होती है कि एक दिन लैला बेचैन होकर अपनी कुछ सहेलियों के साथ एक बाग़ की तरफ़ निकल गई। घर पर किसी तरह चैन हो न आता था। बाग़ में वह ज़मीन पर बैठी हुई अपने दर्द व ग़म की दास्तान सुना रही थी कि इसी अर्से में मजनूं के एक हमदर्द और दोस्त उधर आ निकले। जवान लड़कियों का यह जमघट देखा तो लैला को पहचान गये। इस ख़याल से कि देखें मजनूं के पागलपन ने लैला के दिल पर भी कुछ असर किया है या नहीं, आपने मजनूं की एक दर्द-भरी ग़ज़ल गानी शुरू की। लैला ने सुनी तो जिगर के टुकड़े-टुकड़े हो गये। दीवानों की तरह उठी और उस ग़ज़ल गानेवाले के पाँव पर अपने गाल रख दिये और मजनूं की ख़बर पूछी।

जाँ ग़मज़दा कीं तराना रानी
मारा ख़बरे देह अर्तवानी

जस ग़म के मारे हुए का यह गीत है, अगर हो सके तो, उसका हाल भी बयान कर

वह हज़रत इश्क़ और आशिक़ी के भेदों से वाक़िफ़ न थे, अपनी उसी इम्तहान लेने की धुन में बोले—मजनूं तो चल बसे।

दिल रा ब तू दादा बूद आज़ाद
जाँ नीज़ बबेदिली ब तू, दाद

(उसने दिल तो तुझे आज़ादी से दे ही दिया था, आख़िरकार जान भी तुझे ही दे दी।

ताज़ीस्त नज़र बसूए तू दाश्त
चूं मरहमे आर्ज़ूए तू दाश्त

उसने मरते दम तक तेरा रास्ता देखा क्योंकि तू उसकी उम्मीदों का मरहम रखती थी।

लैला यह दिल छेद देनेवाली ख़बर सुनते ही पछाड़ खाकर गिरी और घायल परिन्दे की तरह तड़पने लगी। मियाँ ग़ज़ल गानेवाले बहुत शर्मिन्दा हुए और चाहा कि इस घाव को ख़ुशी की ख़बरों से भर दें—मजनूं अभी ज़िन्दा है, नज्द में उसकी दर्दभरी आवाज़ अब भी सुनायी दे रही है, मैंने तो परखने के लिए झूठ-मूठ कह दिया था। मगर इन बातों का लैला के दिल पर कुछ असर न हुआ, रूह को ऐसा सदमा पहुँचा कि संभल न सकी। घर पहुँचते-पहुँचते बुख़ार आया।

और हालत बिगड़ गई और मौत के लक्षण दिखाई पड़ने लगे। मरते वक़्त उसने अपनी माँ को बुलाया और उससे अपनी बेअदबी और अपनी शरारतों की माफ़ी माँगने के बाद यह आख़िरी गुज़ारिश की।

चू अज़ पये मरक़दे निहानी
पोशी ब लिबासे आँ जहानी

जब तू मुझे क़ब्र में रखने के लिए उस दुनिया का लिबास पहनाये।

अज़ दामने चाक यारे दिल सोज़
यक पारा बियार ओ दर कफ़न दोज़

(तो मेरे दिल-जले दोस्त के दामन का एक टुकड़ा भी कफ़न में सी देना।

ता बाख़ुद अज़ाँ मुसाहिबते पाक
पैवन्दे वफ़ा बरम तहे ख़ाक (ख़ुसरो)

ताकि मैं उस पाक दोस्त के साथ वफ़ादार रहने का रिश्ता ख़ाक में भी ले जाऊँ।

रोज़े कि बक़स्रे जाविदानी
रू आरम अज़ीं सराये फ़ानी

जिस दिन कि अपने उस हमेशा क़ायम रहनेवाले महल यानी क़ब्र में इस सराय फ़ानी दुनियाँ से जाऊँ।

आवाज़ देह आँ असीरे मारा
वाँ कुश्तये ज़ख़्मे तीर मारा

तू मेरे उस क़ैदी, मेरे तीर के ज़ख़्मी को आवाज़ देना।

अहवाल मरा चुना के दानी
गोई बतरीक़े तर्जुमानी

और जैसा कि तू मेरी हालत को जानती है ज्यों की त्यों उससे कह देना।

बरगोई कि शमअे जाँ गुदाज़ाँ
वै चश्मो चिराग़े इश्कबाज़ाँ

और कहना कि ऐ जान पिघलानेवालों के चिराग़, ऐ इश्क़वालों की आँख के नूर,

लैला ज़े ग़मे तू रफ़्त दर ख़ाक
पाक आमद ओ रफ़्त हम चुनाँ पाक

लैला तेरे ग़म में ख़ाक में चली गई वह जैसी पाक आई थी वैसी ही पाक चली गई

॥ मजनूँ ॥

संगेश कि बरसरे मज़ारस्त
अज़ कोहे ग़मे तू यादगारस्त

वह पत्थर जो उसकी क़ब्र पर है वह तेरे ग़म के पहाड़ की यादगार का एक टुकड़ा है।

मजनूं ने जब यह जान-लेवा ख़बर सुनी तो सर के बाल नोचता, रोता-पीटता लैला के मकान की तरफ़ दौड़ा। उस वक़्त लैला का जनाज़ा जा रहा था। अपने-पराये जनाज़े के पीछे थे। मजनूं जनाज़े के आगे-आगे हो लिया और हँसता, ग़ज़लें गाता चला। मौत की खुशी इसी को कहते हैं।

आशिक़ कि नज़्ज़ारए चुनाँ दीद
बरदाश्त क़दम कि हम इनाँ दीद

आशिक़ ने यह सीन देखा, क़दम उठाये कि अपने दोस्त को साथ देखा।

दर पेशे जनाज़ा रफ़्त ख़न्दाँ
नै दर्द नै दाग़े दर्दमन्दाँ

जनाज़े के आगे-आगे हँसता हुआ चला, न अपना ग़म और न ग़म खानेवालों का ख़याल।

नज़्म अज़ सरे वज्द हाल मी ख़ाँद
खुश खुश ग़ज़ले विसाल मी ख़ाँद

जोश के साथ शेर पढ़ता और बहुत खुश होकर पिया मिलन की ग़ज़ल गाता था।

इस ढंग से वह क़ब्र तक गया। जब रिश्तेदारों ने लैला की लाश क़ब्र में रक्खी तो मजनूं कूदकर अंदर बैठ गया। लोग उसकी इस तहज़ीब के ख़िलाफ़ हरकत पर आग हो गये। तलवारों के वार किये कि छोड़कर भाग जाये (मगर वहाँ मजनूं कहाँ था, सिर्फ़ उसकी ख़ाक थी) आख़िर एक दुनिया छाने हुए बुज़ुर्ग ने उन बेअक़्लों को समझाया।

कीं कार न शहवतो हवाईस्त
सिर्रे ज़े ख़ज़ीनये खुदाईस्त

यह काम झूठे इश्क़ और दिखावे की चाह का नहीं है, यह तो एक भेद है खुदा के ख़ज़ाने का।

वर्ना बहवस कसे न जूयद
कज़ जाने अज़ीज़ दस्त शूयद

वर्ना झूठे इश्क़ में कोई अपनी प्यारी जान से हाथ नहीं धोता।

॥ विविध प्रसंग ॥

खुशवक़्त कसे के अज़ दिले पाक
दर राहे वफ़ा चुनी शवद ख़ाक

(भाग्यवान है वह आदमी जो पाक दिल के साथ वफ़ा की राह में इस तरह ख़ाक हो जाये।

गर आशिक़ी ईं मुक़ाम दारद
तक़वा ब जहाँ चे नाम दारद

अगर इश्क़ यह मुक़ाम रखता है तो दुनिया में तक़वा यानी पाक ज़िन्दगी गुज़ारना और किस चीज़ का नाम है।

ता हर दो न दर मुग़ाक़ बूदन्द
ज़े आलाइशे नफ़्स पाक बूदन्द

यहाँ तक कि दोनों ख़ाक का ढेर ही नहीं हुए बल्कि दिल की सारी गंदगियों से पाक हो गये।

दरहम मी कुनद हाले ज़ेशाँ
दर गर्दने मा वबाल एशाँ

उनसे हमारा हाल परीशान और गर्दन भारी है।

इस तरह इश्क़ की यह अमर कहानी ख़त्म होती है। इसमें कथा की न मौलिकता है न ख़यालों की बुलन्दी। मगर मजनूं का कैरेक्टर जैसा कि शायरों ने खींचा है ख़याली होने पर भी दिलचस्प है। निज़ामी ने तो इन दोनों प्रेमियों को ख़ुदा के गहरे दोस्तों की महफ़िल में बिठाया है और उनका ज़िक्र बड़े अदब और इज़्ज़त से करते हैं। उनका मजनूं बहुत पाक और ऊँचे कैरेक्टर का आदमी है जिसका इश्क़ बेखोट और दिल की बुराइयों से साफ़-सुथरा है। पागल और मस्त था मगर उसने इंसानियत की हद से बाहर क़दम न रक्खा। जब कभी आशिक़ और माशूक़ मिले हैं उन्होंने इज़्ज़त-आबरू की शर्तों की बड़ी सख़्ती से पाबन्दी की है। अलबत्ता ख़ुसरो ने इस कैरेक्टर को इंसानी कसौटी की तरफ़ खींचा है। इसमें ज़रा भी शक की गुंजाइश नहीं कि मजनूं शारीरिक प्रेम की मंज़िलें तय करके आध्यात्मिक प्रेम तक पहुँच गया था जहाँ 'मैं' और 'तू' का भेद नहीं रहा।

आँ सालिके इश्क़ कामिले बूद
दीवाना न बूद आक़िले बूद

वह इश्क़ की राह का पहुँचा हुआ मुसाफ़िर था। पागल न था, अक़्लवाला था।

दाग़श न ज़े आतशे फ़तीला
दर्दश न ज़े गुलरुख़े क़बीला

उसका दाग़ आग का न था और उसका दर्द यानी इश्क़ फूल जैसी सूरतवालों

से न था।

सरमस्त न अज़ शराबे अंगूर
दर रक़्स न अज़ सदाये तंबूर

वह अंगूर की शराब से मस्त न था और वह सितार की आवाज़ पर नहीं झूमता था।

बेहोश ज़े बादये दिगर बूद
अज़ जामे मुराद बेख़बर बूद

वह किसी और ही शराब से बेहोश था और अपनी मुराद की शराब के प्याले से चूर था।

आँ रफ़अते शाँ कि दाश्त मजनूं
बूद अज़ दर्जाते अक़्ल बेरूँ

मजनूं जो ऊँची शान रखता था वह अक्ल की पहुँच से बाहर है।

प्रेम एक बड़ा कोमल भाव है जो इंसान को नर्मदिल बना देता है। जिस वक़्त नूफ़ल लैला के क़बीले से लौट रहा था और मजनूँ ने मार-काट का बाज़ार गर्म देखा तो उसका दिल पसीज गया। उसने फ़ौरन लड़ाई बन्द करवा दी। एक बार उसने माली को सरो का पेड़ काटते देखा और उसे अपनी क़ीमती अँगूठी देकर पेड़ को आरे की तकलीफ़ से बचाया। इसी तरह बहेलिये को कई हिरन जाल में फँसाये लाते देखा और उसे अपना घोड़ा देकर उन बेज़बानों की जान बचाई।

गर्दन मज़नश कि बेवफ़ा नीस्त
दर गर्दने ऊ रसन रवा नीस्त

उनकी गर्दन न मार क्योंकि वह बेवफ़ा नहीं हैं और उनकी गर्दन में रस्सी डालना मुनासिब नहीं है।

जब लैला की इब्ने सलाम से शादी हो चुकी थी तो एक दिन मजनूं उसे देखने के शौक़ से बेताब होकर लैला के घर चला आया। लैला ने झरोखे से उसे देखा तो बोली, "तुम इस तरह अपनी जान ख़तरे में क्यों डालते हो?" मजनूँ अपना दुखड़ा रोने लगा कि इतने में इब्ने सलाम को ख़बर हो गई। भरा बैठा ही था। तलवार लिये गरजता हुआ आ पहुँचा और चाहा कि एक ही वार में पागलपन के साथ सर भी ख़त्म कर दे। मगर उसका हाथ ऊपर का ऊपर उठा रह गया। दूसरे हाथ में तलवार ली। उसकी भी वही गति हुई। शर्मिन्दा होकर मजनूं के पैरों पर गिर पड़ा और माफ़ी चाही कि मदद कीजिए, मैं तो किसी काम का न रहा। मजनूँ ने जवाब दिया—

आज़ार कसाँ मसाज़ पेशा
काज़ुर्दगीयत रसद हमेशा

लोगों को तकलीफ़ न पहुँचा क्योंकि इससे तुझे हमेशा तकलीफ़ पहुँचती रहेगी।

और वहाँ से चला आया। बंदिश के लिहाज़ से यह दास्तान जुलेखा की दास्तान से ज़्यादा क़द्र के काबिल नहीं मगर इसके प्रेम का स्थान बहुत ऊँचा है। प्रेम को असफलता फ़ारसी शायरों का तरीक़ा है और मजनूं से ज़्यादा अच्छी इसकी कोई मिसाल नहीं।

—ज़माना, जनवरी सन् १६१३

कालिदास की कविता

यों तो संस्कृत साहित्य की आज तक थाह नहीं मिली। एक सागर है कि जितना डूबो उतना ही गहरा मालूम होता है। मगर तीन कवि बहुत प्रसिद्ध हैं—वाल्मीकि, व्यास और कालिदास। इनकी कृतियाँ एक एक युग का संपूर्ण इतिहास हैं और यही उनकी ख्याति का आधार है। वाल्मीकि सबसे पुराने थे। उनकी कविता में कर्तव्य और सच्चाई का रंग प्रधान है। व्यास, जो उनके बाद हुए, अध्यात्म और भक्ति की ओर झुके और कालिदास ने सौन्दर्य और प्रेम को अपना क्षेत्र बनाया। रामायण वाल्मीकि की और महाभारत व्यास की लोकप्रिय पुस्तकें हैं और ये दोनों हिन्दू धर्म का अंग बन गई हैं। मगर कालिदास को हम कुछ भूल-सा गये थे और अगर अँग्रेज़ी विद्वानों और लेखकों ने हमारा मार्ग-दर्शन न किया होता तो हम शायद अब तक इस अमर कवि को गुमनामी के कोने में पड़ा रहने देते। कालिदास की इस वक़्त जो कुछ चर्चा है वह अंग्रेज़ी शिक्षा की देन है। कई शताब्दियों के बाद कालिदास का सितारा चमका है और आज उसके जीवन, युग और कृतियों पर अंग्रेज़ी पत्र-पत्रिकाओं में बहुत खोज और विद्वत्तापूर्ण लेख लिखे जा रहे हैं। हिन्दुस्तान और यूरोप में एक से उत्साह के साथ उसके संबंध में खोज-बीन की जा रही है, यद्यपि अभी तक प्रामाणिक रूप से उसके जीवन के संबंध में सामग्री प्राप्त नहीं हुई।

कालिदास की कविता संक्षेप में कोमल भावनाओं और अलंकृत कल्पनाओं की कविता है। पुराने कवियों की कविता में सादगी और सहजता का रंग विशेष होता है, उपमायें और रूपक सर्वसुलभ, भावनायें सच्ची मगर सादा, वर्णनशैली सरल। और यही कारण है कि साधारण लोगों में पुराने कवियों को जो लोकप्रियता प्राप्त होती है उस पर बाद के कवि सदा ईर्ष्या किया करते हैं क्योंकि उनकी कविता, जिसे काव्य-रुचि की आवश्यकतायें और युग की परिस्थितियाँ रंगीन, सूक्ष्म और उलझा हुआ बना देती हैं, साधारण लोगों की समझ से बाहर होती है। मगर बाद के कवियों में अनुकरण, कृत्रिमता और विषयों की दरिद्रता की जो सर्वसामान्य दुर्बलता पाई जाती है कालिदास की कविता उससे बिलकुल अछूती है। रंगीनी और सूक्ष्मता के साथ उनकी कविता में वही सरलता, वही विषयों की नवीनता और वही कल्पनाओं की बाढ़ मौजूद है जो प्राचीन कवियों की कविता में

पाई जा सकती है। उसकी प्रतिभा कविता की हर शैली या रंग में एक-सी समर्थ है। उसकी नाच-गाने की महफ़िलें निज़ामी को शर्मिन्दा कर देती हैं और लड़ाई के मैदान में फ़िरदौसी की कल्पना का घोड़ा भी ऐसी उड़ानें नहीं भरता। सिर्फ़ 'मेघदूत' में सौन्दर्य और प्रेम, संयोग और वियोग की भावनायें इतनी अधिक मात्रा में मिलती हैं कि उन पर किसी भाषा की कविता को गर्व हो सकता है। उसकी एक एक कल्पना पर काव्यमर्मज्ञ चकित रह जाते हैं। पहले दिल पर एक नर्म असर होता है और फिर फौरन भावों की सूक्ष्मता, विचारों की विविधता और वर्णन के सौन्दर्य को देखकर आश्चर्य होने लगता है। हमारे उर्दू के प्रेमियों ने प्रातः समीर को दूत बनाया। मीर ने सबसे पहले यह सेवा प्रातः समीर को सौंपी और दाग़ को भी इससे अधिक गतिशील और वाणी-निरपेक्ष कोई दूत दिखाई न पड़ा। दो शताब्दियों तक प्रातःसमीर ने यह सेवा की और अब भी उसका गला न छूटा। मगर कालिदास ने एक नया दूत ढूँढ़ निकाला। वह मेघ को अपनी व्यथा की कहानी सुनाता है। ऐसी ही अछूती बातों से उसकी कविता भरपूर है। संस्कृत कवियों का यह एक विशेष गुण है कि वे अपने काव्य में प्राकृतिक दृश्यों की खूब चाशनी देते हैं। उनकी कवि-कल्पनायें सदाबहार फूलों और पत्तियों से सजी हुई नज़र आती हैं। कालिदास में यह गुण अपने चरम उत्कर्ष पर पहुँच गया है। फूल-पत्तियों का जिस खूबसूरती और अछूतेपन से उसने प्रयोग किया है वह संस्कृत में भी किसी दूसरे कवि को सुलभ नहीं हुआ। उसकी उपमायें नई-नई कोंपलें हैं और रूपक महकते हुए रंग-बिरंगे फूल। यह ठीक है कि उर्दू और फ़ारसी के कवियों ने बेल-बूटों का इस्तेमाल किया है मगर उनके फूल-पत्ते मुर्झाये हुए, बेरंग और बेमज़ा हैं। उनकी कल्पना की उड़ानें उन्हें आसमान पर उड़ा ले गईं और वहाँ ज़ोहल व अतारिद, ज़ोहरा व मुश्तरी-जैसे नक्षत्रों से उनका परिचय करा दिया, यहाँ तक कि अब किसी फ़ारसी क़सीदे को समझने के लिए ज्योतिष और अंतरिक्ष-विज्ञान का जानना ज़रूरी है। संस्कृत कविता इतने ऊँचे न उड़ सकी मगर उसने इसी दुनिया की हर चीज़ को खूब ग़ौर से देखा-भाला और उसका अध्ययन किया। वह किसी मीनार की तरह ऊँची नहीं बल्कि एक हरे-भरे मैदान की तरह फैली हुई है जिसमें हिरन किलोलें करते हैं, रंग-बिरंगे पंछी चहचहाते हैं, हरियाली लहलहाती है और दर्पन-जैसे पानी के सोते बहते हैं। मतलब यह कि संस्कृत कविता को तीनों लोकों से समान रुचि है। वह जिस दुनिया में पैदा हुई है उसी दुनिया की हर चीज़ से परिचित है और यह सिर्फ़ शकुन्तला नाटक का पहला पार्ट पढ़ने से इस खूबी के साथ प्रकट हो जाता है जिसे बयान नहीं किया जा सकता। हिरन और भौंरा, माधवी

और केतकी, कदम्ब और नीम, ये सब हमारे सामने आते हैं, बेजान चीज़ों की तरह नहीं, कवि ने उनमें एक जान डाल दी है, उन सब में प्रकृति की संवेदना का समान अंश है। इसी सीन को पढ़कर प्रसिद्ध कवि गेटे विभोर हो गया था, और वह भी केवल अंग्रेज़ी अनुवाद के अध्ययन से। और अब इस बात को सिद्ध करने के लिए ज़्यादा दलीलों की ज़रूरत नहीं है कि वह नशे का सा असर जो संस्कृत कविता हमारे दिलों पर पैदा करती है, किसी दूसरी भाषा की कविता के सामर्थ्य से परे है, विशेषतया उर्दू कविता के जिसकी उपमा उन पौधों से दी जा सकती है जो अक्सर बाग़ों में बनावटी जिन्दगी बसर करते नज़र आते हैं, मुर्झाये हुए पत्ते, निर्जीव पीला रंग, सिमटी हुई शाखें, न फल न फूल। फ़ारस का पौधा हिन्दुस्तान में लगाया गया, न वह ज़मीन न वह आबहवा, न देखने से आँखों को ताज़गी होती है न दिल को खुशी। जहाँ तक उपमाओं और दृश्य-चित्रण का संबंध है उर्दू कविता बड़ी हद तक कृत्रिमता और अवास्तविकता की एक पिटारी है। संस्कृत कवियों के दृश्य और भावनायें सब इसी धरती की हवा-पानी से बनी हैं और यही उनकी प्रभावोत्पादकता का रहस्य है। देखिये कालिदास वर्षा ऋतु में शहद की मक्खियों का शहद जमा करना किस नर्मी और खूबसूरती से दिखाता है :

तलाशे शहद में हैं मक्खियाँ सुबुक परवाज़
मगर मिज़ाज में ये सादगी के हैं अंदाज़
कि नाचते कहीं आते हैं जब नज़र ताऊस
फ़िज़ाये दश्त में फैलाये बाल-ओ-पर ताऊस
तराने गाती हुई जब क़रीब आती है
कँवल के फूलों के धोखे में बैठ जाती है।
महक रही है हवा केतकी के फूलों से
बसी हुई है सबा केतकी के फूलों से
हर एक रविश पे है जमघट परीजमालों का
अजब बनाव है फूलों के गहनेवालों का
चमन में करती हुई सुब्हदम गुलअफ़शानी
लचक लचक के है पौदों को दे रही पानी
कहीं कदम के दरख्तों पर छा रही है बहार
हरे हरे किसी जानिब हैं नीम के अशजार

सरो, शमशाद और सनोबर के मुकाबले में कदम्ब और नीम और केतकी कैसे अपने जान पड़ते हैं।

कविता की इन खूबियों के अलावा कालिदास ने मानव चरित्र को भी बड़ी गहरी आँखों से देखा था। मानव-स्वभाव के उलट-फेर का उसे पूरा ज्ञान था। किन बातों से आदमी के दिल में कैसी भावनायें और विचार पैदा होते हैं वे उसने आश्चर्यजनक वास्तविकता के साथ दिखलाये हैं। उसके नाटक मानव चरित्र के चित्र हैं जिनके अंग-प्रत्यंग के संतुलन, रंगों की उपयुक्तता और चेहरे-मोहरे की सुघरता की तारीफ़ पूरी तरह नहीं की जा सकती। और इश्क़ की घातें और मुहब्बत के इशारे तो उसने ऐसी नज़ाकत से दिखाये हैं जो काव्य-रसिकों को मुग्ध कर देते हैं। इस रंग में न कोई उसका प्रतिद्वन्दी है न उसकी बराबरी का दावा करनेवाला और वह इस रंग का उस्ताद है, गोकि यह सच है कि कभी-कभी उसका क़लम अपनी शोखी में हद से आगे बढ़ गया है क्योंकि वह स्वच्छन्द स्वभाव का आदमी था। मगर इसमें कोई संदेह नहीं कि उसने दाम्पत्य ही को प्रेम की सबसे ऊँची कसौटी माना है। 'मेघदूत' में विरही यक्ष जिस प्रेमिका की याद में तड़पा है वह उसकी पत्नी थी। 'ऋतुसंहार' में भी जहाँ-तहाँ इसके संकेत हैं :

वो महवशें जो बदलती हैं करवटें शब भर
रुला रही है लहू जिनको दूरिये शौहर
बरस रही है उदासी अब उनकी सूरत पर
जिगर की आग क़यामत है इक क़यामत पर

कालिदास आमतौर पर हिन्दुस्तान का शेक्सपियर कहा जाता है और इसमें तनिक भी अत्युक्ति नहीं। दुनिया में सिर्फ़ शेक्सपियर ही ऐसा कवि है जिसकी उससे तुलना की जा सकती है। दोनों नाटककार हैं, दोनों मानव-हृदय के मर्मज्ञ। उनकी कल्पनाएँ उनकी बंदिशें बहुत जगहों पर लड़ गई हैं। एक ही कवि-मन प्रकृति की ओर से दोनों को मिला था। किसी चीज़ को जिस निगाह से शेक्सपियर देखता है उसी निगाह से कालिदास भी उसे देखता है। व्यथा और शोक, निराशा और प्रतिशोध, प्रेम और वियोग में आदमी के दिल में कैसी भावनायें लहरें मारती हैं, इसको जिस खूबी से शेक्सपियर ने दिखाया है, उसी रंगीनी के साथ कालिदास ने भी दिखाया है। शेक्सपियर के जितने कैरेक्टर हैं वह सब एक दूसरे से भिन्न हैं। हर एक में कोई न कोई अपनी विशेषता है। कालिदास के कैरेक्टरों की भी यही स्थिति है। शेक्सपियर के मैकबेथ, ओथेलो, रोमियो, जूलियट की तस्वीरों को कालिदास के दुष्यंत, शकुन्तला, प्रियंवदा की तस्वीरों के मुक़ाबले में रखने से साफ़ मालूम हो जाता है कि इन दोनों कवियों को मनुष्य की प्रकृति का कैसा ज्ञान था। शेक्सपियर और कालिदास में अगर कुछ अंतर है

तो यह है कि शेक्सपियर को मानव-चरित्र के चमत्कार दिखाने में अधिक कौशल है और कालिदास को प्रकृति के चित्रण में। शेक्सपियर को मानव-स्वभाव के भीतर जो पहुँच थी वही कालिदास को प्रकृति के चमत्कारों में थी। इसीलिए शेक्सपियर का साहित्य गंभीर है और कालिदास का रंगीन। शेक्सपियर जिस तरह अपने पहले और बाद के कवियों से बड़ा है उसी तरह कालिदास के साहित्य की रंगीनी और नर्मी संस्कृत में बेजोड़ है।

कालिदास की कविताओं और नाटकों से प्रकट होता है कि वह काव्य-शिल्प और पिंगल आदि के ज्ञान के अलावा विभिन्न शास्त्रों और कलाओं में भी सिद्ध थे। उनके साहित्य में जगह-जगह दार्शनिक विचार बिखरे पड़े हैं जिनसे सिद्ध होता है कि वह सांख्यदर्शन और योग पर अधिकार रखते थे। वह शिव के उपासक थे मगर उनका विचार वेदांत की ओर झुका हुआ था। आत्मा और परमात्मा, शरीर और प्राण, माया और संसार आदि पेचीदा आध्यात्मिक प्रश्नों पर उन्होंने अपने साहित्य में बड़ी स्वतंत्रता के साथ विचार किया है। ज्योतिष की इस युग में बड़ी चर्चा थी। उज्जैन इस विद्या का उन दिनों केन्द्र था। वराहमिहिर, जो बड़ा प्रसिद्ध ज्योतिषी हुआ है, कालिदास के मित्रों में था और इसमें अब कोई संदेह नहीं हो सकता कि कालिदास को इस विद्या का प्रकांड ज्ञान था। उन्होंने खुद ज्योतिष पर एक मार्के की किताब लिखी है जो आज तक चलती है। उनका भौगोलिक ज्ञान भी बहुत विस्तृत था। उन्होंने हिन्दुस्तान के हर कोने में सफ़र किया था। मेघदूत में उनके भौगोलिक ज्ञान का काफ़ी प्रमाण मिलता है। जहाँ कहीं समुद्री दृश्य चित्रित किये हैं उनसे यह सिद्ध होता है कि वह किसी आँखों-देखे दृश्य की तस्वीर खींच रहे हैं। प्रकृति-विज्ञान में भी उनकी दृष्टि गहरी और ठीक थी। ज्वार-भाटा, तूफ़ान, चंद्र-और सूर्य-ग्रहण आदि प्रकृति के चमत्कारों के संबंध में उन्होंने जो चर्चा की है, उनसे मालूम होता है कि उनके बारे में उन्हें वही ज्ञान था जिस पर आज के वैज्ञानिक एकमत हैं। और राजनीति के तो वे जैसे एक सागर थे। 'रघुवंश' में शुरू से आखिर तक राजाओं ही का ज़िक्र है। इसमें सैकड़ों ऐसे प्रसंग हैं जिनसे पता चलता है कि उन्हें राजनीति का पूरा ज्ञान था। राजा किसे कहते हैं? उसका क्या धर्म है? प्रजा के साथ उसका कैसा बर्ताव होना चाहिये? प्रजा के उस पर क्या अधिकार हैं? इन बातों को जैसा कुछ कालिदास समझते थे शायद आज बड़े बड़े बादशाहों को भी वह ज्ञान न होगा। कहने का मतलब यह कि कालिदास एक अत्यंत गुणी व्यक्ति, सिद्धहस्त कवि और ज्ञान का सागर था। उसकी बुद्धि के विस्तार पर हमको आश्चर्य होता है। उपमाओं में दुनिया का कोई कवि उससे आँखें नहीं

मिला सकता। उसकी उपमायें ऐसी उपयुक्त, ऐसी सटीक, ऐसी सजीव हैं कि अगर उन्हें श्लोक में से निकाल दीजिये तो श्लोक बिलकुल नीरस और फीका हो जाता है। प्रकृति का कोई ऐसा चमत्कार नहीं जिससे उसने उपमा न ली हो। यह ठीक है कि हिन्दुस्तान को उसकी जन्मभूमि होने का गौरव प्राप्त है मगर सच तो यह है कि वह हिन्दुस्तान का नहीं बल्कि सारी दुनिया का कवि है। हिन्दुस्तानियों को उसके काव्य से जो आनंद प्राप्त हो सकता है वही किसी दूसरे देश के आदमी को हासिल हो सकता है। उसके लिए दुनिया कविता की एक पिटारी थी। जिस चीज़ पर निगाह डाली है उसे अपनी कविता का आभूषण बना लिया है। वेद, पुराण, इतिहास, दर्शन आदि विधायें जिन्हें कवि रूखा-सूखा समझते थे और जिनका कविता से कोई सम्बन्ध नहीं बतलाया जाता वह कालिदास की कविता के अहाते में आकर कुछ और ही रंग-रूप अख्तियार कर लेती हैं। पदार्थ जगत् को कविता के आभूषण से सजानेवाला, ठूँठ पेड़ों और वीरान खँडहरों में वह मज़ा पैदा करनेवाला जो हरे-भरे पेड़ों और सजे हुए महलों से न मिल सके, ऐसा समर्थ कवि दुनिया में दूसरा नहीं पैदा हुआ और जब तक कविता के मर्मज्ञ और सौन्दर्य-रसिक बाक़ी रहेंगे तब तक कालिदास का नाम क़ायम रहेगा। वह संस्कृत कविता का पूरनम का चाँद है और जिस व्यक्ति में कविता की जितनी ही रुचि और सच्ची परख है वह कालिदास की कविता से उतना ही आनन्द उठा सकता है।

कालिदास की कृतियाँ, जिनका अब तक पता चला है, संख्या में सोलह हैं मगर उनको ख्याति और लोकप्रियता जिन पुस्तकों पर आधारित है वे सात से ज़्यादा नहीं, और इन सातों में कोई एक पुस्तक भी उसको अमरता के लिए काफ़ी है। इन सात तारों के चार अंग चार काव्य हैं—१) रघुवंश २) कुमार संभव ३) मेघदूत ४) ऋतु संहार। और बाक़ी तीन वे नाटक हैं जिन्होंने कलाविदों को आश्चर्य में डाल दिया है—१) शकुन्तला २) विक्रमोर्वशी ३) मालविकाग्निमित्र। सभ्य संसार में इन पुस्तकों को जो कीर्ति मिली है वह शायद ही किसी दूसरे कवि को नसीब हुई हो। यूरोप की अधिकांश भाषाओं में उनका अनुवाद हो जाना, उनकी लोकप्रियता का सशक्त प्रमाण है। हिन्दुस्तान की लगभग सब भाषाओं में भी उनके अनुवाद हो गये हैं। नाटकों की लोक-प्रियता का हाल यह है कि वे यूरोप और अमरीका के थियेटरों में खेले जा चुके हैं और कालिदास की रचनाओं की थोड़ी-बहुत जानकारी रखना सभ्य कहलाने के लिए जरूरी होगया है। आज हिन्दुस्तान के चित्रकार कालिदास के कैरेक्टरों और दृश्यों को खींचना अपनी कला का उत्कर्ष समझते हैं। राजा रवि वर्मा का चित्र 'शकुन्तला-पत्र-लेखन' स्वयं सौन्दर्य और प्रेम की एक दुनिया है, जहाँ प्रकृति ने वेदना के मधुर और

मोहक साधन एकत्र कर दिये हैं। ऐसी ही कल्पनाओं और दृश्यों से कालिदास की कविता भरी हुई है। नाटकों में प्रथम दो का अनुवाद उर्दू भाषा में भी हो गया है। 'शकुन्तला' का अनुवाद स्वर्गीय राजा शिव प्रसाद ने किया था और 'विक्रमोर्वशी' का कुछ साल पहले मौलवी मोहम्मद अज़ीज़ मिर्ज़ा साहब ने। 'शकुन्तला' का अनुवाद मूल संस्कृत से किया गया है और इसलिए मूल का रस कुछ बाक़ी है। 'विक्रमोर्वशी' शायद अंग्रेज़ी से उर्दू में आई है इसलिए मूल का आनंद उसमें न पैदा हो सका। तब भी काफ़ी ग़नीमत है। मगर चारों काव्यों में से एक का अनुवाद भी उर्दू में अब तक नहीं हुआ। इस कमी की शिकायत मुसलमान साहित्यकारों से नहीं; मगर हिन्दू सज्जनों के लिए यह बड़ी लज्जा की बात है। कितने ही हिन्दू लोग हैं जिनमें कविता की रुचि है, जो ग़ज़लें और क़सीदे लिखते हैं और गुल-ओ-बुलबुल के झगड़ों में सर खपाते हैं मगर इतना न हुआ कि संस्कृत कवियों की कविता से जाति और भाषा को लाभ पहुँचायें। उर्दू शेरोसुख़न का चर्चा ज्यादातर कायस्थों और कश्मीरियों में है और ये दोनों सम्प्रदाय अब तक आमतौर पर संस्कृत के अध्ययन से अलग-थलग हैं। मगर अब चूँकि संस्कृत की ओर रुझान होने लगा है इससे उम्मीद की जाती है कि शायद कुछ दिनों में हम रघुवंश, मेघदूत और कुमारसंभव को उर्दू भाषा में पढ़ सकें। रहा 'ऋतुसंहार' उसका अनुवाद मिस्टर शाकिर की मदद से स्वर्गीय सुरूर साहब ने किया है और अधिकांश ऋतुओं की कवितायें 'ज़माना' के पाठकों के सामने पेश हो चुकी हैं।

हम लिख चुके हैं कि 'ऋतु-संहार' कालिदास के चार सर्वश्रेष्ठ काव्यों में से एक है। इसमें कवि ने हिन्दुस्तान की छः ऋतुओं के दृश्य और उनके परिवर्तनों और उनसे पैदा होनेवाली भावनाओं और विचारों को बहुत ही सुन्दर ढंग से बयान किया है। चूँकि उर्दू-फ़ारसी में तीन ही मौसम माने गये हैं इसलिए मुनासिब मालूम होता है कि इन छहों ऋतुओं को यहाँ स्पष्ट कर दिया जाय—

क्रमांक	ऋतु का नाम	हिन्दी महीने	अंग्रेज़ी महीने
१—	ग्रीष्म	जेठ-असाढ़	जून-जुलाई
२—	वर्षा	सावन-भादों	अगस्त-सितम्बर
३—	शरद	कुआर-कातिक	अक्टूबर-नवम्बर
४—	हेमन्त	अगहन-पूस	दिसम्बर-जनवरी
५—	शिशिर	माघ-फागुन	फरवरी-मार्च
६—	बसन्त	चैत-वैशाख	अप्रैल-मई

उर्दू-फ़ारसी कवियों ने मौसमी भावनाओं को सिर्फ़ उसी हद तक अपने शेरों में दख़ल दिया है जहाँ तक कि बसंत और पतझड़ का सम्बन्ध है, यहाँ तक कि पतझड़ और बसंत भी केवल रूपक हैं। खुशी के दिनों और ग़म के दिनों के लिए। हाँ, काले बादलों को देखकर कभी कभी साक़ी की याद आ जाती है :

तुंद ओ पुरशोर सियह मस्त ज़े कोहसार आमद
साक़िया मुज़दा के अब्र आमद ओ बिसियार आमद

हिन्दुस्तान में मौसमी भावनायें हमारे सामाजिक जीवन में दाखिल हो गई हैं। हमेशा से उनकी अभिव्यक्ति होती आई है। वर्षा ऋतु आई और घरों में झूले पड़ गये, सावन और मल्हार की तानें गूँजने लगीं, लड़कियों ने हाथ-पाँव में मेंहदी रचाई, प्यार के दर्द भरे भाव ने दिलों को बेचैन करना शुरू किया, यहाँ तक कि गलियों और बाज़ारों में जहाँ-तहाँ इसकी आवाज़ें सुनाई देने लगीं। संस्कृत कवियों ने बसंत को ऋतुराज या मौसमों का राजा माना है। पेड़ों में नई नई कोंपलें निकलीं, आम की बौर की महक से हवा सुगन्धित हो गई, खलिहानों में सुनहरी बालों के ढेर लग गये, कोयल आम की डाली पर बैठकर कूकने लगी, प्रेमी जनों को रोने की सूझी, उत्सुकता ने दिलों को गुदगुदाया, प्रेमिकायें अपना रूठना भूल गईं, बसंत की सुहानी पुकार कानों में आयी :

आयी बसंत बहार बलम घर न आये सखी

कालिदास ने ऋतुओं के इन्हीं दृश्यों को अपनी चमत्कारिक लेखनी से अंकित किया है और इस खूबी से अंकित किया है कि हर एक मौसम का समाँ आँखों में फिर जाता है। खास तौर पर बसंत ऋतु का वर्णन ऐसा सरस, ऐसा यथार्थ और सुकुमार भावनाओं से ऐसा अलंकृत है कि उसकी तारीफ़ नहीं की जा सकती :

फूल खिलते हैं जो टेसू के बियाबानों में
जान पड़ जाती है उश्शाक़ के अरमानों में
आते हैं रूप पे आमों के इसी रुत में शजर
कोयल आती है इसी रुत में दरख़्तों पे नज़र
छेड़ती है लबे जू आके तराना अपना
सारे आलम को सुनाती है फ़साना अपना
भौंरे फूलों पे हैं सरमस्त मये जोशे बहार
झूमते हैं असरे बादे सबा में अशजार
चुटकियाँ लेती हैं रह रहके उमंगें दिल में
नशए शौक़ की उठती हैं तरंगें दिल में

कालिदास की अन्य कृतियों की तरह 'ऋतुसंहार' का अनुवाद भी योरप को

अधिकांश भाषाओं में हो गया है। हिन्दी भाषा में लाला सीताराम साहब और राजकुमार बाबू देवकीनन्दन साहब ने उनका पद्यबद्ध अनुवाद किया है। कुछ समय हुआ बंगाल के प्रसिद्ध चित्रकार बाबू अवनीन्द्रनाथ ठाकुर ने 'ऋतु-संहार' के मौसमी दृश्यों की तस्वीरें खींची थीं जो बहुत पसंद की गईं। इनके अलावा बंबई के प्रसिद्ध चित्रकार मिस्टर धुरन्धर ने भी 'ऋतु-संहार' से सम्बद्ध छः तस्वीरें खींची हैं जो देखने योग्य हैं। योरोपियन कलामर्मज्ञ इस छोटे से किन्तु मार्मिक काव्य को बड़ी प्रशंसा की आँखों से देखते हैं। जाना-माना इतिहासकार एलफ़िन्सटन कहता है:

'भावनाओं को अंकित करने के साथ-साथ यह कवि उन तमाम स्थितियों का चित्र खींच देता है जो उन भावनाओं के प्रेरक हुए और दृश्यों की खूबियाँ और उनके आकर्षण ऐसे जादू-भरे शब्दों में बयान करता है कि वह आदमी भी जो इन पौधों और जानवरों से अपरिचित हो हिन्दुस्तानी दृश्य का खाका अपने दिल में क़ायम कर सकता है।'

प्राच्यविदों का शिरोमणि मोनियर विलियम्स लिखता है:

'इस काव्य का एक-एक श्लोक किसी-न-किसी भारतीय दृश्य का एक सम्पूर्ण चित्र है।'

काव्य-मर्मज्ञों का विचार है कि 'ऋतु-संहार' कालिदास के यौवन-काल की कृति है और कई कारणों से इस विचार की पुष्टि होती है। यौवन-काल सौन्दर्य और प्रेम और भोग-विलास का समय होता है। इस वक़्त तक ग़म के काँटे पहलू में नहीं खटकते और दुनिया की कठोरताओं का अनुभव नहीं होता। नौजवान कवि की कविता निराशा और वेदना और शोक और विपत्ति के भावों से मुक्त होती है। कवि को मुहब्बत की दास्तान, मिलन की खुशियों और प्रेमिका की गुपचुप बातों से इतनी फ़ुर्सत ही नहीं मिलती कि वह वेदना का राग गाये। जब दिल हँसता हो तो आँखें क्योंकर रोयें। 'ऋतु-संहार' शुरू से लेकर आख़ीर तक प्रेम के रस में डूबा हुआ है। अरमानों के दिन हैं, मुरादों की रातें। वह तेज़ी, वह जोश, वह बेतकल्लुफ़ी, वह रंगीनी, वह ताज़गी, वह चहल-पहल जो जवानी की ख़ासियतें हैं इस कविता में शुरू से आख़ीर तक भरी हुई हैं। सुन्दरियों की चर्चा से कवि का जी नहीं भरता। कहीं उनके गलों के गजरों का बयान है, कहीं उनकी मेंहदी-रची हथेलियों का। कवि ने हर एक मौसम को सुन्दरियों की आँखों से देखा है। हर एक कल्पना, हर एक भाव यहाँ तक कि रूपक और अन्वय सुन्दरियों के रूप से सजे हुए हैं। यह भी नौजवान कवि की एक ख़ासियत है कि उसे हर जगह औरत ही सूझती है। नौजवान कवि के दिल पर कोई

जादू इतना असर नहीं करता जितना कि रूप का जादू। सुन्दर स्त्री ही उसकी भावनाओं को उभारती है, सुन्दर स्त्री उसकी आशाओं का आरम्भ और उसकी उमंगों की सीमा और उसके आकर्षणों का स्रोत होती है। कहने का आशय यह कि ऋतु-संहार एक जवान कविता है, जवानी की खुशियों से चमकती हुई, जवानी की मुहब्बत से महकती हुई और जवानी की उम्मीदों से भरी हुई।

हज़रत 'सुरूर' के अलावा मौलवी अब्दुल हलीम साहब 'शरर' ने अपने रिसाले 'दिलगुदाज़' में 'ऋतु-संहार' की दो तीन ऋतुओं का अनुवाद गद्य में किया है। जून सन् १९१४ के 'दिलगुदाज़' में उन्होंने इस काव्य के बारे में इन शब्दों में अपना विचार व्यक्त किया है :

"हिन्दुस्तान के शेक्सपियर कालिदास ने ऋतु-संहार के नाम से छः कवितायें छः ऋतुओं के संबंध में लिखी हैं जिनमें खास हिन्दुस्तान को ये ऋतुयें इस खूबी और मज़े के साथ दिखाई हैं कि पढ़ने से मौसमी कैफ़ियत को तस्वीरें आँखों मे फिर जाती हैं....इन कविताओं में नई उपमायें, नयी कल्पनाएँ और नई बंदिशें हैं जो इस लिटरेचर के लिए, जिसका जन्म हिन्दुस्तान में हुआ, अंग्रेज़ी और फ़ारसी लिटरेचर की लेखन-शैली से ज़्यादा उपयुक्त और प्रभावशाली हैं।"

मूल-काव्य में कालिदास की रंगीन-बयानी कहीं कहीं हद से आगे बढ़ गयी है। फल जब ज़्यादा मीठा हो जाता है तो उसमें कीड़े पड़ जाते हैं। मगर अनुवादक ने इन स्थलों को, जैसा कि उसका नैतिक कर्तव्य था, नज़र से ओझल कर दिया है। काश उर्दू के कवि मौलाना शरर की तरह समझते कि इन कविताओं की नई उपमायें, नयी कल्पनाएँ और नई बंदिशें उर्दू लिटरेचर के लिए अंग्रेज़ी और फ़ारसी लिटरेचर की लेखन-शैली से अधिक उपयुक्त हैं तो आज उर्दू शायरी को इतने ताने न मिलते और उसे इतना बुरा-भला न कहा जाता। मगर मौलाना शरर ने इस काव्य का अनुवाद गद्य ही में लिखने पर संतोष किया, हालाँकि यह ज़ाहिर है कि कवि की कल्पनाएँ कविता में ही मज़ा देती हैं। गद्य की काया में आकर उनकी वही हालत हो जाती है जो मज़ेदार शराब की रूखे-सूखे वैरागियों के गिरोह में या किसी सुन्दरी की नग्नता के परिधान में। बहरहाल कालिदास के विचारों को उर्दू पद्य में रूपान्तरित करने का काम जवानी में ही सिधार जानेवाले सुरूर साहब के ज़िम्मे रहा और इसको उन्होंने जिस शानदार कामयाबी के साथ पूरा किया है उसकी तमाम उर्दू पब्लिक को क़द्र करनी चाहिए। दरअसल शायर ने अनुवाद में मूल का रस पैदा कर दिया है। सरलता इस संग्रह की सबसे बड़ी विशेषता है। संस्कृत में पेचीदा और जटिल भावों को पद्य में रूपान्तरित करते समय सरलता का ध्यान रखना और उसमें

कामयाब हो जाना कवि के कौशल और काव्य-शक्ति का प्रमाण है ।

थे बरंगे दीदये उश्शाक़ जो चश्मे पुरआब
उड़ रही है ख़ाक उनमें सूरते मौजे सराब
सत्हे गर्दूं को समझ कर चश्मये आबे रवाँ
तक रहे हैं दीदये हसरत से होकर नीमजाँ

कितना सच्चा और नेचुरल ख़याल है और कितनी खूबसूरती से कविता में बाँधा गया है :

धूप से हैं ऐसे घबराये हुए मारे सियाह
बाजुये ताऊस के साये में लेते हैं पनाह

मोर साँप का दुश्मन है मगर सख्त गर्मी ने उनके होश-हवास इस तरह उड़ा दिये हैं कि न साँप को डर रहा और न मोर को शिकार करने की ताब। उर्दू में ऐसे विचार देखने को नहीं मिलते और अनुवादक ने प्रशंसनीय सामर्थ्य से उन्हें पद्यबद्ध किया है :

धूप की शिद्दत से यूँ आतश बजाँ ताऊस हैं
बाजुए ज़र्री नहीं हैं शोल-ए-फ़ानूस हैं

कैसा अछूता और अनूठा ख़याल है और जितने संक्षेप में इस भाव को व्यक्त किया गया है वह सोने में सुहागा है !

ठुन्ड कुछ सूखे हुए आते हैं सहरा में नज़र
चोंच खोले जिसपे दम लेती हैं चिड़ियाँ बैठकर

कैसी तस्वीर खींच दी है। इसी का नाम शायरी है। शायर की निगाह किस क़दर पैनी है। जंगली झरबेरियाँ और करौंदे के पेड़ भी उससे नहीं बचे जिनकी तरफ़ उर्दू शायर कभी भूल कर भी आँख नहीं उठाता :

अजब अंदाज़ से बेलों को हिलाती है नसीम
और करौंदे के दरख्तों को नचाती है नसीम
यूँ हर एक फूल पर टेसू की बरसती है बहार
सुर्ख़ जैसे किसी तोते की नुकीली मिनक़ार
फूल शाख़ों पे हैं खोले हुए आग़ोश निशात
भौंरे कुंजों में हैं सरमस्त मये जोशे निशात

इन उदाहरणों से पाठकों के सामने स्पष्ट हो गया होगा कि अनुवाद में कितने संक्षेप से काम लिया गया है और प्रवाह जो किसी मौलिक कविता में पाया जाता है यहाँ शुरू से आख़ीर तक मौजूद है। इस बात को अधिक स्पष्ट रूप से दिखाने के लिए कि कवि को किस हद तक अनुवाद मे सफलता मिली है, उचित

तो यह था कि संस्कृत के श्लोक और उनके अनुवाद आमने-सामने लिखे जाते मगर उर्दू में संस्कृत के समझनेवाले बहुत कम हैं और इस बाल की खाल निकालने से कुछ हासिल नहीं। ग्रीष्म ऋतु की कविता को अनुवादक ने कुछ छोटा कर दिया है क्योंकि इसमें अधिकतर ऐसे जानवरों का ज़िक्र था जिनके नाम से भी उर्दू पाठक परिचित न होंगे। कालिदास की काव्य-सामर्थ्य का एक प्रमाण यह भी है कि वह एक ही विचार को बार-बार अलग-अलग ढंग से व्यक्त करता है और विचार की ताज़गी में फ़र्क़ नहीं आता। उर्दू जैसी दरिद्र भाषा में शब्दों की यह बहुतायत कहाँ! ऐसे विचार चूँकि खूबसूरती से कविता में नहीं आ सकते थे, इसलिए शायद पुनरावृत्ति के भय से अनुवादक ने उन्हें नज़र से ओझल कर दिया है और हमारे ख़याल में यह विवशता उनकी नहीं बल्कि उर्दू भाषा की है।

—ज़माना, अगस्त १९१४

हँसी

एक प्रसिद्ध दार्शनिक का कथन है कि मनुष्य हँसने वाला प्राणी है और यह बिलकुल ठीक बात है क्योंकि श्रेणियों का विभाजन विशेषताओं पर ही आधारित होता है और हँसी मनुष्य की विशेषता है। यों तो मानव हृदय की भावनायें अनेक प्रकार की होती हैं मगर आनंद और शोक का स्थान इनमें सबसे प्रधान हैं। अन्य भावनायें इन्हीं दोनों के अंतर्गत आ जाती हैं। उदाहरण के लिए निराशा, लज्जा, दुख, क्रोध, घृणा ये सब शोक के अंतर्गत आ जायेंगे। उसी प्रकार अहंकार, वीरता, प्रेम आदि आनंद की श्रेणी में। मनुष्य का जीवन इन्हीं दो प्रतिकूल भावनाओं में विभाजित है। आनंद का प्रकट लक्षण हँसी है, शोक का रोना। हँसने और खुश रहने की इच्छा सर्वसामान्य है। रोने और शोक से हर व्यक्ति बचता है। हँसना और रोना मनुष्य के जन्मजात गुण हैं, अर्जित गुण नहीं। बच्चा पैदा होते ही रोता है और उसके थोड़े ही दिनों बाद एक ख़ामोश-सी मुस्कराहट उसके चेहरे पर दिखाई देने लगती है। अन्य भावनायें समझ बढ़ने के साथ-साथ पैदा होती जाती हैं।

कुछ विद्वानों ने यह पता लगाने का प्रयत्न किया है कि कुछ जानवर भी हँसने में आदमियों के साझीदार हैं। वे यह तो स्वीकार करते हैं कि जानवरों की हँसी सस्वर नहीं होती मगर जो प्रेरणायें मनुष्य के हृदय में हँसी उत्पन्न करती हैं उनमें किसी न किसी हद तक वह भी ज़रूर शरीक हैं। कुत्ता अपने मालिक को जब कई दिन के बाद देखता है तो दुम हिलाता हुआ उसके पास चला जाता है बल्कि उसके बदन पर चढ़ने की कोशिश करता है और एक क़िस्म की आवाज़ उसके मुँह से निकलने लगती है। जिन कुत्तों को गेंद उठा लाने की शिक्षा दी जाती है वे गेंद उठाते समय कभी-कभी खुद भी अपने पैरों से गेंद को और आगे ढकेल देते हैं। जब कई कुत्ते साथ खेलने लगते हैं तो उनकी चुहल और शरारत की कोई सीमा नहीं रहती। जिन लोगों ने इन कुत्तों के चेहरों को ध्यान से देखा है वे कहते हैं कि आँखों में एक शरारत-भरी झलक, गालों का सिकुड़ना और दाँतों का बाहर निकल आना, जो हँसी के अनिवार्य लक्षण हैं, वे सभी एक बहुत हल्की-सी शक्ल में कुत्तों के चेहरे पर भी दिखाई देने लगते हैं। कभी-कभी कुत्ते मुर्ग़ियों को सिर्फ़ डराने के लिए दौड़ाया करते हैं। बिल्ली एक बहुत गंभीर जानवर है

मगर वह भी चूहों को खिलाते वक़्त अपनी जन्मजात हास्यप्रियता का परिचय देती है। और बंदरों के बारे में तो कितने ही पशु-विज्ञान के विद्वानों का विश्वास है कि वे हँसते भी हैं और मज़ाक समझते भी हैं। अगर बंदर को मुँह चिढ़ाओ तो वह कितना झल्लाता है। अगर उसे छेड़ने के लिए उसके साथ दिल्लगी करो तो वह नाराज़ हो जाता है। उसे यह पसंद नहीं कि कोई उसका मज़ाक़ उड़ाए। कहने का मतलब यह कि कुत्ते, बिल्ली, बंदर की हँसी ख़ामोश और बेआवाज़ होती है मगर उनमें हँसी-दिल्लगी की चेतना होती है।

बच्चे की हँसी भी शुरू में बेआवाज़ और किसी क़दर जानवरों से मिलती हुई होती है। मगर उम्र के दूसरे महीने में उसमें फैलाव और तीसरे महीने में आवाज़ पैदा हो जाती है। तब उसे गुदगुदाओ तो खिलखिलाता है और दूसरों को देख कर हँसता है। गुदगुदाने से हँसी क्यों आती है, कुछ विद्वानों ने इसकी भी व्याख्या की है। एक प्रोफ़ेसर का ख़्याल है कि जब मनुष्य विकास की आरंभिक स्थिति में था उस समय म बच्चे के शरीर पर से मक्खियाँ उड़ाने या दूसरे ड़की को भगाने के लिए उसी तरह हाथ फेरती थी जिस तरह आजकल गायें अपने बच्चों को चाटती हैं। इसी तरह हाथ फेरने से बच्चे को बहुत कुछ आराम मिलता है। लिहाज़ा आजकल भी जब नर्मी से शरीर पर हाथ फेरा जाता है तो उसी तरह इंसान को वही आराम याद आता है और वह हँसने लगता है। यह ख़याल सही हो या ग़लत मगर आदमी की हँसी का विकास उसकी इंसानियत के साथ ही होता है। एक मज़ेदार बात है कि होंठ या शरीर की एक ज़रा-सी हरकत इंसान को घंटों हँसाती है।

वहशी क़ौमें भावनाओं की प्रौढ़ता की दृष्टि से बहुत कुछ बच्चों से मिलती हैं। यही कारण है कि उनकी हँसी भी बच्चों की हँसी से मिलती-जुलती होती है। बच्चे कभी-कभी ख़ामख़ाह हँसते हैं। उनकी हँसी लाज-संकोच की परवाह नहीं करती। वहशियों की भी यही हालत है। सभ्य लोग अपनी हँसी पर बहुत संयम करते हैं लेकिन बर्बरों में यह संयम कहाँ। वह जब हँसते हैं तो ख़ूब खुल-कर। ख़ूब क़हक़हे लगाते हैं, तालियाँ बजाते हैं, चूतड़ पीटने लगते हैं और नाचते हैं, यहाँ तक कि कभी-कभी उनकी आँखों से आँसू बहने लगते हैं। हँसते-हँसते मर जाना इससे चाहे एक क़दम और आगे बढ़ा होता हो। कोई अपरिचित चीज़ देखकर वह ख़ूब हँसते हैं। बोर्नियो द्वीप में एक मिशनरी को पियानो बजाते देख कर वहाँ के बर्बर निवासी हँसने लगते हैं। सभ्य लोगों की एक-एक हरकत उन बर्बरों की हँसी का सामान है। उनके कपड़े, उनका मुँह-हाथ धोना, यह सब बातें उन्हें अजीब मालूम होती हैं और यह अजीब मालूम होना हँसी की मुख्य

प्रेरणाओं में से एक है। एक बार एक हब्शी सरदार इंगलिस्तान में पहुँचा और एक कारखाने की सैर करने के लिए चला। मैनेजर ने मेहरबानी से उसे कारखाना दिखाना शुरू किया। संयोग से एक जगह मैनेजर का कोट किसी चर्खी की पकड़ में आ गया और बेचारे मैनेजर साहब कोट के साथ दो-तीन चक्कर खा गये। कर्मचारियों ने दौड़कर किसी तरह उनकी जान बचायी मगर हब्शी सरदार हँसते-हँसते लोट गया। उसने समझा कि मैनेजर साहब ने उसे तमाशा दिखाने के लिए क़लाबाज़ियाँ खायीं और इस घटना के बाद वह जब तक इंगलिस्तान में रहा उसने कई बार मैनेजर साहब से वही दिलचस्प तमाशा दिखाने का तक़ाज़ा कया। कुछ असभ्य जातियों में रईसों के दरबार में अब भी मसख़रे या विदूषक रक्खे जाते हैं।

पुराने ज़माने में दरबारी विदूषकों का रिवाज हिन्दुस्तान और योरप में प्रचलित था। यहाँ तक कि वे दरबार का आभूषण समझे जाते थे। उनके बग़ैर दरबार सूना रहता था। इस सभ्यता के युग में भी वही रिवाज एक दूसरी शकल में मौजूद है जिसे थियेटरों में देख सकते हैं। एस्किमो एक जंगली क़ौम है। उनके यहाँ रिवाज है कि जब किसी मुक़दमे का फ़ैसला होने लगता है तो दोनों विरोधी पक्ष के लोग एक-दूसरे को गंदी-गंदी गालियाँ सुनाना शुरू करते हैं। कभी-कभी पद्य-बद्ध गालियाँ दी जाती हैं। हाकिम इजलास और दूसरे तमाशाई इन तुकबंदियों पर खूब हँसते हैं और आख़िरकार उसी पक्ष की विजय होती है जो गालियों की गंदगी और बेशर्मी के लिहाज़ से तमाशाइयों को ज़्यादा खुश कर दे। न्याय की अच्छी कसौटी निकाली है। ऐसे देश में गालियाँ बकना निश्चय ही कानूनदानी से अच्छा और फ़ायदेमन्द धन्धा है और काश हमारे देश के कुंजड़े और भटियारे वहाँ पहुँच जायें तो यक़ीन है कि उन्हें किसी अदालत में हार न हो। अभी पशु-विज्ञान के किसी पंडित ने यह छान-बीन नहीं की लेकिन हँसी और निर्लज्जता में कोई कार्य-कारण संबंध अवश्य है। हिन्दुस्तान में शादी-ब्याह में, दावतों में गंदी और शर्मनाक गालियाँ गाने का रिवाज कितना बुरा मगर सब तरफ़ कितना प्रचलित और लोकप्रिय है। यहाँ तक कि कितने ही लोगों को गालियों के बग़ैर ब्याह का मज़ा ही नहीं आता और जब तक कानों में गंदी-गंदी गालियों की पुकारें नहीं आतीं खाने की तरफ़ तबियत नहीं झुकती।

हर एक देश या जाति का साहित्य उस देश की सर्वोत्तम भावनाओं और विचारों का संग्रह होता है और हालांकि किसी जाति के साहित्य में हँसी-दिल्लगी को वह स्थान नहीं दिया जायगा जिसका उसे सर्वसाधारण में अपने प्रचलन की दृष्टि से अधिकार है और प्रेम की भावनाओं को उससे ऊँचा स्थान दिया जाता है जो

एक सीमाबद्ध भावना है और जिसका प्रभाव मानव जीवन के एक विशेष अंग तक सीमित है, तब भी यह विश्वास के साथ कहा जा सकता है कि उनका प्रभाव हर एक साहित्य पर स्पष्ट है और चूँकि हँसने-हँसाने की इच्छा हर दिल में रहती है, हास्य-कृतियाँ पसंद भी की जाती हैं। अंग्रेज़ी में शेक्सपियर का मसख़रा फ़ॉल्स्टाफ़, स्पेनी लिटरेचर का डॉन कुइक्ज़ोट और उर्दू लिटरेचर का ख़ोजी कैसे ग़म भुला देनेवाले हैं। कितने रंज और ग़म के सताये हुए दिल उनके एहसानमंद हैं। यह कहने में कोई अत्युक्ति नहीं कि गद्य हो या पद्य, हँसी-दिल्लगी उसकी आत्मा है और उसके बग़ैर वह रूखी-सूखी और बेमज़ा रहती है।

हँसी के अनेक उद्दीपक हैं। संस्कृत में हँसी के प्रकारों, उनकी व्याख्या और उनके उद्दीपकों आदि को बड़े विशद और विस्तृत ढंग से बयान किया गया है। अंग्रेज़ी में ऐसी विशद सैद्धान्तिक चर्चा इस विषय पर नहीं है। इन उद्दीपकों में विशेष ये हैं।

१—किसी चीज़ का अनोखापन जैसे बंदर का कोट-पतलून पहनना।

२—किसी अच्छी चीज़ का फ़ौरन किसी बुरी सूरत में ज़ाहिर होना जैसे मुँह चिढ़ाना।

३—कोई शारीरिक दोष जैसे कानापन या लंगड़ाकर चलना।

४—मानव विशेषताओं में कोई असाधारण बात जैसे शेख़ी मारना या भोलापन।

५—किसी चीज़ का अपने साधारण रूप से अलग हटना जैसे मुँह में कालिख लगना।

६—अशिष्टता।

७—छोटी-मोटी दुर्घटनाएँ जैसे किसी का लड़खड़ाकर गिर पड़ना।

८—निर्लज्ज शब्दों का प्रयोग।

९—हर तरह की अतिशयोक्ति या हद से आगे बढ़ जाना जैसे भारी-भरकम पेट या बहुत ऊँचा क़द।

१०—गुप-चुप बातें।

११—चीज़ों की तरह आवाज़ में भी अजनबीपन, अनोखापन जैसे बेसुरा गीत।

१२—दूसरों की नक़ल करना।

१३—कोई द्वयर्थक वाक्य।

उपरोक्त वर्गीकरण को ध्यान से देखने पर स्पष्ट हो जाता है कि हँसी का उद्दीपन विशेषतः किन्हीं दो वस्तुओं के विरोध पर आधारित है। एक लड़का

अपने बाप का ढीलाढाला कोट पहन लेता है और उसे देखते ही फ़ौरन हँसी आती है। अफ़ीमचियों की कहानियाँ हँसी का एक न चुकनेवाला खज़ाना हैं। अकबर और बीरबल के चुटकुले भी दिलों को गरमाने के लिए आज़माए हुए नुस्खे हैं और ख्वाजा बदीउज़्ज़माँ उर्फ़ खोजी (खुदा की उन पर रहमत हो!) को तो उर्दू लिटरेचर का सबसे बड़ा शोकसंहारक कहना चाहिए। हाजी बग़लोल भी उन्हीं के मुरीदों में शामिल हैं। शायरी के दोषों और त्रुटियों को सरशार ने हँसी-दिल्लगी का कैसा फड़कता हुआ लिबास पहनाया है। ख्वाजा साहब की गँवई बातचीत, उनका शेर पढ़ना, डींग मारना, ये सब हँसने के अक्सीर नुस्खे हैं। छन्द-शास्त्र की भूलें, स्त्रीलिंग और पुल्लिग की ग़लतियाँ जो शायरी में ऐब समझी जाती हैं वे पढ़े-लिखे आदमियों के लिए हँसी का सामान हैं। उर्दू कवियों की सौन्दर्य की अतिशयोक्ति भी मज़ाक़ की हद तक जा पहुँचती है। नाभी की गहराई को अगर बरेली का कुआं कहें तो ख़ामखाह हँसी आयेगी।

विद्वानों ने हँसी को छः श्रेणियों में विभाजित किया है :

१—होंठों ही होंठों मे मुस्कराना। २—खुलकर मुस्कराना। ३—खिल-खिलाना ४—ज़ोर से हँसना ५—क़हक़हे लगाना ६—हँसते-हँसते पेट में बल पड़ जाना और आँखों से आँसू बहने लगना।

इनमें पहली और दूसरी क़िस्मों का स्थान सबसे ऊँचा है, तीसरी और चौथी का मध्यम और पाँचवी और छठीं क़िस्में सबसे निकृष्ट समझी जाती हैं और उनकी गिनती अशिष्टता में होती है। जिस समय गालों पर हल्की-सी शिकन पड़ती है, नीचे के होंठ फैल जाते हैं, दाँत नहीं दिखाई देते हैं, आँखें चमकने लगती हैं, उसे होंठों ही होंठों में मुस्कराना कहते हैं। जिस हँसी में मुँह, गाल और आँखें फूली हुई नज़र आती हैं और दाँतों की लड़ियाँ किसी क़दर दिखाई देने लगती हैं उसे खुलकर मुस्कराना कहते हैं। खिलखिलाने की व्याख्या करने की ज़रूरत नहीं। इसमें आँख कुछ सिकुड़ जाती है। क़हक़हा लगाना अशिष्टता है, ख़ासतौर पर बड़े-बूढ़ों के सामने ज़ोर से हँसना बुरी बात है। डाक्टरी दृष्टि से क़हक़हा तन्दुरुस्ती के लिए बहुत अच्छा माना गया है। इससे सीने और फेफड़ों को ताक़त पहुँचती है और तबीयत खिल उठती है। मनोविज्ञान के पंडितों का विचार है कि हँसी खुली हुई तबीयत की पहचान है और जिस आदमी के इरादे नेक न हों और जिसके हृदय को शांति और इत्मीनान हासिल न हो वह कभी खुलकर नहीं हँस सकता।

हम ऊपर लिख आये हैं कि संस्कृत साहित्य में हँसी-दिल्लगी के बारे में बड़ी गहरी छान-बीन के साथ विचार किया गया है। उपरोक्त विचार बड़ी हद तक

उसी के हैं। अब हम कुछ हास्य-रस के संस्कृत श्लोकों का अनुवाद लिख कर इस लेख को समाप्त करेंगे। उर्दू हास्य की शैली से हम परिचित हैं, संस्कृत साहित्य के भी कुछ उदाहरण देखिए :

१—यह देखिए कुक्कुट मिश्र आए। आपने अपने गुरू से कुल पाँच दिन शिक्षा पाई। सारा वेदांत तीन दिन में पढ़ा है और न्याय को तो फूल की तरह सूँघ डाला है।

२—विष्णु शर्मा नामक किसी दुश्चरित्र विद्वान की बुराई यों की गई है—विष्णु शर्मा हाय हाय करके रोते और कहते थे कि मेरे जिस मस्तक पर मन्त्रों से पवित्र किया गया पानी छिड़का गया था उसी पर प्रेमिका के पवित्र हाथों ने तड़ातड़ चपत लगाई।

३—एक कोमल भावनाओं से अपरिचित ब्राह्मण अपनी प्रेमिका से कहता है—ऐ देवी, मेरे यह होंठ सामवेद गाते-गाते बहुत पवित्र हो गये हैं। इन्हें तुम जूठा मत करो। अगर तुमसे किसी तरह नहीं रहा जाता तो मेरे बायें कान को ही मुँह में लेकर चुबलाओ।

४—ज़बान कट नहीं जाती, सर फट नहीं जाता, तब फिर जो कुछ मुँह में आये कह डालने में हर्ज ही क्या है। निर्लज्ज व्यक्ति विद्वान बनने में आगा-पीछा क्यों करे।

५—दो औरतों वाले मर्द की हालत उस चूहे की सी होती है जिसके बिल में साँप है और बिल के बाहर बिल्ली।

६—दामाद दसवाँ ग्रह है। वह हमेशा टेढ़ा और तीखा रहता है, हरदम पूजा की माँग किया करता है और हमेशा कन्याराशि पर चढ़ा रहता है।

७—जैनियों का मज़ाक़ उड़ाते हुए एक लेखक कहता है कि ये लोग एकांत में भी सुन्दरी के लाल-लाल होंठों से बचते रहते हैं क्योंकि होंठ में दाँत लगने से उन्हें मांसाहार का आरोप लगने का भय है।

८—एक ज़िन्दादिल बुड्ढा कहता है—क्या करें सिर के बाल सफ़ेद हो गये हैं, गालों पर झुर्रियाँ पड़ गई हैं दाँत टूट गये हैं पर इन सब बातों का मुझे कुछ दुख नहीं। हाँ जब रास्ते में मृगनयनी सुन्दरियाँ मुझे देखकर पूछती हैं, "बाबा किधर चले ?" तो उनका यह पूछना मेरे दिल पर बिजलियाँ गिरा देता है।

—ज़माना, फरवरी १९१६

बिहारी

संस्कृत कविता के आचार्यों ने कविता को नौ रसों में बाँटा है। रस का मतलब है कविता का रंग। सौन्दर्य और प्रेम, वीरता, क्रोध, हास्य, भक्ति वग़ैरह। सूरदास शांति और भक्ति रस के कवि थे। बिहारी सौन्दर्य और प्रेम के कवि हैं। उनका रंग उर्दू की ग़ज़लों के रंग से बहुत कुछ मिलता-जुलता है। हिन्दी के सब कवियों में बिहारी ही को यह विशेषता प्राप्त है। यह पता नहीं चलता कि बिहारी ने फ़ारसी भी पढ़ी थी या नहीं। इसका कोई स्पष्ट प्रमाण नहीं है लेकिन उनकी कविता के रंग पर फ़ारसी ग़ज़लों का रंग बहुत चोखा नज़र आता है। संभव है यह उनकी स्वाभाविक प्रवृत्ति हो। सौन्दर्य और प्रेम के सिवाय उन्होंने किसी दूसरे रंग में कविता नहीं की और की भी तो वह नहीं के बराबर है। मगर इसके बावजूद कि उनका क्षेत्र बहुत सीमित है वह भावों की जिस ऊँचाई और गहराई तक पहुँच गये हैं वह इस रंग में किसी दूसरे हिन्दी कवि को नसीब नहीं। वह पिटी-पिटाई कल्पनाओं को कविता में नहीं बाँधते। उनकी सुथरी तबीयत ऐसे विषयों से भागती है जिनमें अब कोई नयापन नहीं रहा। उनमें ग़ालिब की सी मौलिकता का रुझान है। ग़ालिब की तरह उन्होंने भी प्रेम की ऊँची कसौटी अपने सामने रक्खी है और भावों को गंभीरता के स्तर से नहीं गिरने दिया। यह नहीं कहा जा सकता कि उनमें चंचलता नहीं है। सौन्दर्य और प्रेम की बाटिका में आकर कोरा मुल्ला और रूखा-सूखा उपदेशक बनना मुश्किल है मगर बिहारी के यहाँ ऐसी संयमहीनता के उदाहरण बहुत कम हैं। ग़ालिब की तरह वह भी बहुत ही कम लिखते थे। उनकी यादगार, ज़िन्दगी भर की कमाई, कुल ७०० दोहे हैं मगर अनुमान होता है कि यह उनकी कुल कविता नहीं बल्कि उसका चुना हुआ कुछ अंश है। जिस कवि ने जीवन भर लिखा हो वह सिर्फ़ ७०० दोहे अपनी यादगार छोड़े इसे बुद्धि स्वीकार नहीं कर सकती। ज़रूर अन्य कवियों की तरह उन्होंने भी बहुत कुछ लिखा होगा मगर बाद को उच्चकोटि के संयम और आत्मनिग्रह से काम लेकर उन्होंने ठीकरों में से हीरे छाँट लिये और वह हीरे आज उनके नाम को चमका रहे हैं। अगर उनकी सब कविता मौजूद होती तो यह लाल गुदड़ी में छिप जाते या नज़र आते तो सिर्फ़ पारखियों को। दस-पाँच हज़ार शेरों या दोहों में पाँच-सात सौ दोहों का अच्छा

होना कोई असाधारण बात नहीं। लगभग सभी कवियों की कविता में यह गुण होता है। जिस शायर ने सारी जिन्दगी बकवास ही की और सौ दो सौ भी जानदार फड़कते हुए अछूते शेर नहीं निकाले उसे शायर कहना ही फ़िज़ूल है। इस हालत में बिहारी में कोई विशेषता न रहती मगर उनके चुनाव ने विस्तार को कम करके उन्हें ऊँचाई के शिखर पर पहुँचा दिया। यह हीरे की माला सतसई के नाम से प्रसिद्ध है यानी सात सौ दोहों का संग्रह। हालांकि तादाद में सात सौ दोहे कुछ ज़्यादा नहीं, इस छोटे से संग्रह में कवि ने सौन्दर्य और प्रेम का सागर भर दिया है। निराशा और कामना और उत्कंठा, वियोग और मिलन और उसका दाह ग़रज़ कोई भाव आँख से ओझल नहीं हुआ। उस पर बयान का सुथरापन और अलंकारों का चमत्कार इन दोहों को और भी उछाल देता है। अलंकार स्वयं कविता का उत्कर्ष है। कोई रूखा-सूखा विषय भी अलंकारों का जामा पहन कर सँवर जाता है। जो जेनरल सौ सिपाहियों का काम दस सिपाहियों से पूरा करे वह बेशक अपने फ़न का उस्ताद है। अच्छे से अच्छा, अछूता, अनोखा विषय बहुत थोड़े से शब्दों में बात कहने के आभूषण से सजा हुआ न हो तो बेमज़ा हो जाता है। कुछ आलोचकों ने तो इस गुण को इतना महत्व दिया है कि उसे कविता का पर्याय कह दिया है। उनके विचार में कविता अलंकार के सिवा और कुछ नहीं। संस्कृत के पुराने आचार्य अलंकार में बेजोड़ हैं। उन्होंने सारे उपनिषद् और पिंगल सूत्रों में लिखे हैं। सूत्र वह छोटा सा कुल्हड़ है जिसमें दरिया बंद होता है। आज भी दुनिया के विद्वान इन सूत्रों को देखते हैं और आश्चर्य से दाँतों तले उँगली दबाते हैं। तीन चार शब्दों का एक टुकड़ा है और उसमें इतना अर्थ भरा हुआ है जो ढेरों शब्दों में भी मुश्किल से अदा हो सकता। कुछ सूत्रों की टीका और भाष्य में बाद के लोगों ने पोथे के पोथे रँग डाले हैं। उर्दू में ग़ालिब और नसीम ने कसाव के साथ बात कहने में कमाल दिखाया है। हिन्दी में यह सेहरा बिहारी के सर है।

कवि के स्थान का पता उसकी लोकप्रियता से चलता है। इस दृष्टि से तुलसी का स्थान पहला है। मगर बिहारी उनसे बहुत पीछे नहीं। कमोबेश तीस कवियों ने सतसई की टीका गद्य और पद्य में लिखी है। पिछले बीस सालों के अंदर इसकी तीन टीकाएँ निकल चुकी हैं। इनमें एक गद्य में है और दो पद्य में। कवियों ने उन पर क़तें लिखे हैं। वासोख़्त, तरजीअ, मुख़म्मस सब कुछ है। बाबू हरिश्चन्द्र हिन्दी के वर्तमान युग के एक सर्वतोमुखी प्रतिभावाले साहित्यकार हुए हैं। उन्होंने गद्य और पद्य में कितनी ही अमर कृतियाँ छोड़ी हैं और आधुनिक हिन्दी नाटक के तो वह भगवान हैं। उन्होंने सतसई पर कुन्डलियाँ चिपकाने

का संकल्प किया मगर सत्तर-अस्सी दोहे से ज़्यादा न जा सके, रचना-शक्ति ने जवाब दे दिया। बिहारी ने दोहे क्या लिखे हैं कवियों के लिए लोहे के चने हैं। जब तक कोई इसी स्तर का कवि सारी उम्र इन दोहों में जान न खपाये, सफल नहीं हो सकता। हिन्दी में बिहारी ही की विशेषता है कि उनकी कविता का संस्कृत में भी अनुवाद हुआ। यह तो उस लोकप्रियता का हाल है जो बिहारी को कवियों की मंडली में प्राप्त है, जनसाधारण में भी वह कम लोक-प्रिय नहीं हैं। हालांकि यहाँ उनका स्थान तुलसी और सूर के बाद है। उनके कितने ही दोहे, कहावत बन गये हैं और कितने ही लोगों की जबान पर चढ़े हुए हैं। बिहारी से उर्दू भी अपरिचित नहीं है। यह भी उन्हीं का दोहा है :

अमिय हलाहल मद भरे श्वेत श्याम रतनार।
जियत मरत झुकि झुकि परत जेहि चितवत एक बार॥

क्या इस दोहे की टीका करने की ज़रूरत है? उर्दू का साहित्यकार जब भाषा की कविता की प्रशंसा ज़ोरों से करता है तो वह इस दोहे को पेश करता है और कोई शक नहीं कि कवि ने इसमें जितना अर्थ और भाव भर दिया है वह एक पूरी ग़ज़ल में भी अदा न हो सकता और अदा हो भी जाये तो यह लुत्फ़ कहाँ। कितने थोड़े शब्दों में कितने कसाव के साथ बात कही गई है। शब्दों का कैसा अनूठा चयन। अमिय कहते हैं अमृत को। उसका रंग काला माना गया है। उसके पीने से मुर्दा ज़िंदा हो जाता है। हलाहल कहते हैं ज़हर को। उसका रंग सफ़ेद माना गया है। वह प्राणघातक है। मद कहते हैं शराब को। उसका रंग लाल माना गया है। उसके पीने से आदमी झुकझुक पड़ता है। यानी प्रेमिका की आँखों में अमृत भी है, विष भी और शराब भी। सुर्ख़ी भी, सफेदी भी और सियाही भी। उसकी चितवन जिलाती है, क़त्ल करती है और नशा पैदा कर देती है। झुक झुक पड़ना कैसी मनोहर कल्पना है। नशे में भी इंसान की यही हालत होती है। उसके पैर लड़खड़ाते हैं और वह गिरते-गिरते संभल जाता है।

मुसलमान काव्यमर्मज्ञों ने भी सतसई का बहुत आदर किया। उस ज़माने के मुसलमान लोग हिन्दी में शायरी करना अपनी ज़िल्लत न समझते थे। अगर उर्दू में नसीम और तुफ़्ता थे तो हिन्दी में भी कितने ही मुसलमान कवि मौजूद थे। आलमगीर औरंगज़ेब के तीसरे बेटे आज़मशाह हिन्दी कविता के मर्मज्ञ थे। कविता की रुचि रखते थे। उन्हीं के कहने से सतसई का वर्तमान चयन कार्यान्वित हुआ। हालांकि और लोगों ने भी इस काम को किया मगर यह चयन सबसे अच्छा है। यह काव्य-नैपुण्य के विचार से किया गया है। बिहारी के सभी दोहे अलंकृत है। ऐसा कोई नहीं जिसमें कोई न कोई काव्य-नैपुण्य न रक्खा गया हो। आज़म-

शाह ने दोहों की यह माला गूँथ कर अपनी काव्यमर्मज्ञता का बहुत अच्छा प्रमाण दिया है। मुसलमान रईसों और कवियों ने सतसई की खूब दाद दी है। उस वक़्त बावजूद राजनीतिक झगड़ों के क़द्रदानी की स्प्रिट ग़ायब न थी। शेरोसुख़न के मामले में जातीय विद्वेष को एक किनारे रख दिया जाता था। सतसई के तीस टीकाकारों में पाँच नाम मुसलमानों के हैं—

१. ज़ुलफ़िक़ार ख़ाँ—बहादुर शाह के बाद जहाँदारशाह के ज़माने में अमीरुल-उमरा के पद पर थे। राजनीतिक कामों में पूरे अधिकार प्राप्त थे। जहाँदार शाह तो भोग-विलास में डूबे हुए थे, राज्य के सब काम ज़ुलफ़िक़ार ख़ाँ देखते थे। शहज़ादा फ़र्रुख़सियर ने जब बंगाल से आकर जहाँदार शाह पर धावा किया और कई लड़ाइयों के बाद दिल्ली पर क़ब्ज़ा कर लिया, ज़ुलफ़िक़ार ख़ाँ ने विश्वासघात किया, जहाँदार शाह को गिरफ़्तार करवा दिया। मगर फ़र्रुख़सियर ने गद्दी पर बैठने के बाद ज़ुलफ़िक़ार को भी क़त्ल करवा दिया। यह हिन्दी कविता के प्रशंसक थे। इन्हीं की फ़रमाइश से कवियों ने सतसई की एक बहुत अच्छी टीका तैयार की जो आज तक मौजूद है। संभवतः वे खुद भी कवि थे और इससे तो इन्कार ही नहीं हो सकता कि वह कविता के उच्चकोटि के मर्मज्ञ थे।

२. अनवर चन्द्रिका—नवाब अनवर ख़ाँ के दरबार के कवियों ने सतसई पर यह टीका लिखी। रचना काल सन् १८२८ ई०।

३. रस चन्द्रिका—ईसा ख़ाँ उन्नीसवीं सदी में अच्छे हिन्दी कवि हुए हैं। नरवरगढ़ के राजा छत्रसिंह के संकेत पर उन्होंने यह टीका पद्य में तैयार की। बिहारी के दोहों का क्रम उन्होंने अकारादि क्रम से दिया है। रचनाकाल सन् १८६६ ई०।

४. यूसुफ़ ख़ाँ की टीका—यूसुफ़ ख़ाँ का विस्तृत विवरण ज्ञात नहीं है मगर उनकी टीका मार्के की है। रचनाकाल अनुमानतः सन् १८६० ई० है।

५. पठान सुल्तान की टीका—रियासत भोपाल के ज़िले राजगढ़ के नवाब सुल्तान पठान ने सन् १८१७ में यह टीका पद्य में लिखी। हिन्दी के अच्छे कवि थे। यह संभवतः उनके दरबार के कवियों की लिखी हुई नहीं बल्कि खुद उन्हीं की लिखी हुई है। यह टीका अब अप्राप्य है।

लेकिन कितने खेद का विषय है कि इस ख्याति और लोकप्रियता और कला की निपुणता के बावजूद बिहारी की ज़िंदगी पर एक बहुत अँधेरा पर्दा पड़ा हुआ है। न उनके समकालीन कवियों ने उनकी कोई चर्चा की और न उन्होंने खुद अपने बारे में कुछ लिखा। उनके समकालीनों की कमी न थी। कमोबेश साठ कवि उनके समकालीन थे। उन सब की कवितायें मिलती हैं मगर बिहारी के बारे में किसी ने कुछ

नहीं लिखा। उनके निजी हालात पूरी तरह केवल उनके तीन दोहों पर निर्भर हैं और वह भी साफ़ तौर पर समझ में नहीं आते। हिन्दी के इतिहासकार बहुत दिनों से जाँच-पड़ताल कर रहे हैं और अब तक इस अनुसंधान का निष्कर्ष यह है कि बिहारी अठारहवीं शताब्दी के मध्य में पैदा हुए। सतसई समाप्त करने की तारीख़ बिहारी ने सन् १८१७ ई० दी है। मुमकिन है उसके बाद कुछ दिन और ज़िन्दा रहे हों। अनुमान से मालूम होता है कि उन्होंने बड़ी उम्र पाई। ग्वालियर के पास एक मौज़े में पैदा हुए। लड़कपन बुन्देलखंड में गुज़रा। मथुरा में उनकी शादी हुई थी। वहीं उम्र का ज़्यादा बड़ा हिस्सा गुज़ारा। उनकी ज़बान ब्रज भाषा है मगर उसमें बुन्देलखंडी शब्द बहुत आये हैं, जिससे इस अनुमान की पुष्टि होती है कि उनका ब्रज और बुन्देलखंड दोनों ही से अवश्य संबंध था। जाति के चौबे ब्राह्मण थे। कुछ आलोचकों ने उन्हें भाट बताया है मगर इस विचार का समर्थन नहीं होता। अनुमानतः जिस ज़माने में सतसई ख़त्म हुई है उनकी उम्र साठ से कुछ ही कम थी मगर इतना ज़माना उन्होंने किस काम में ख़र्च किया इसका कुछ पता नहीं। संभव है दोहे लिखे हों मगर वह ज़माने के हाथों बर्बाद हो गये हों। बिहारी खुशहाल न थे और इस ज़माने के रिवाज के मुताबिक़ राजाओं और रईसों के दरबार में जीविका के लिए हाज़िर होना ज़रूरी था। मगर सतसई के पहले उनके किसी की सेवा में उपस्थित होने का पता नहीं चलता। उम्र का बहुत बड़ा हिस्सा अज्ञात रूप से काटने के बाद ये जयपुर पहुँचे। वहाँ उस वक़्त सवाई राजा जयसिंह गद्दी पर थे। दरबार के लोगों से महाराज की सेवा में अपना सलाम अर्ज़ कराने की दरख़्वास्त की। महाराज उन दिनों एक कमसिन छोकरी के प्रेम के जाल में बेतरह फँसे हुए थे। राज्य का काम-काज छोड़ बैठे थे। रनिवास में बैठे प्रेमिका की रूप-सुधा का पान किया करते। सैर व शिकार से नफ़रत थी। दरबारी महीनों उनकी सूरत न देख पाते। उन्होंने बिहारी से इस प्रसंग में अपनी असमर्थता प्रकट की। जब महाराज बाहर निकलते ही नहीं तो सिफ़ारिश कौन करे और किससे करे। मगर बिहारी निराश न हुए। एक रोज़ उन्हें एक मालिन फूलों की एक टोकरी लिये महल में जाती हुई दिखाई पड़ी। उन्होंने सोचा कि ये फूल महाराज की सेज पर बिछाने के लिये जाते होंगे। उन्होंने फ़ौरन निम्नांकित दोहा लिखा और उसे मालिन की टोकरी में डाल दिया—

नहिं पराग नहिं मधुर मधु नहिं विकास यहि काल।
अली कली ही सों बिंध्यो आगे कौन हवाल॥

अर्थात् अभी न रस है न गंध है न फूल खिल पाया है। अभी वह एक

बिनखिली कली है। अभी ही से इस तरह उलझ गये तो आगे क्या हालत होगी।

यह काग़ज़ का पुर्ज़ा महाराज के हाथ लगा, दोहा पढ़ा, आँख खुल गई। दरबारियों को तलब किया। लोग बड़े खुश हुए, चलो किसी तरह महाराज बरामद तो हुए। महाराज ने दरबार में वह दोहा पढ़ा और कहा, जिसने यह दोहा लिखा हो उसे फ़ौरन हाजिर करो। बिहारी ने आगे बढ़कर सलाम अर्ज़ किया। महाराज बहुत खुश हुए। बिहारी का बहुत स्वागत-सत्कार किया और कहा, मुझे अपनी कविता रोज़ सुनाया करो। बिहारी ने फ़रमाइश कुबूल की और रोज़ कुछ दोहे लिखकर महाराज को सुनाने लगे। महाराज के यहाँ यह पुर्ज़े नत्थी किये जाने लगे। कुछ दिनों बाद बिहारी को अपनी जन्मभूमि की याद आई। महाराज से छुट्टी माँगी। महाराज ने दोहों को गिनने का हुक्म दिया। सात सौ से कुछ ज़्यादा निकले। महाराज ने सात सौ अशर्फ़ियाँ इनाम के तौर पर देकर बिहारी को रुखसत किया। आज की हालतों का खयाल कीजिये तो यह रक़म कम न थी। इसके लगभग बीस हज़ार रुपये होते हैं और उस ज़माने में एक रुपये की क़ीमत पाँच रुपये से कम न होगी। मगर वह ज़माना इतनी सस्ती क़द्रदानी का न था। आजकल तो मामूली जलसों में हमारे कवि की प्रतिभा चमक उठती है और जंट साहब बहादुर नौशेरवाँ से मिला दिये जाते हैं। कहीं साहब कलक्टर बहादुर रुस्तम और इसफ़ंदियार से बढ़ा दिये जाते हैं मगर इसका बहुमूल्य पुरस्कार इसके सिवा और कुछ नहीं कि जब हमारे कवि महोदय उन साहब की कोठी पर हाज़िर हों तो कमरे में से एक गुर्राती हुई आवाज़ सुनाई दे, "कुर्सी लाओ" और अगर किसी रईस के दस्तर्ख़ान पर मीठे लुक़्मे चखने की इज़्ज़त हासिल हो गई तब तो कवि जी की कल्पना आसमान के सितारों की खबर लाती है। शुक्र है कि इसी बहाने से हमारी कविता रोज़-ब-रोज़ भटई के दोष से मुक्त होती जाती है। मगर बिहारी के ज़माने में कवियों को उनके नैपुण्य के अनुसार इनाम-इकराम और जागीरें देने का आम रिवाज था। रईस अपनी क़द्रदानी में एक दूसरे से आगे बढ़ जाने की कोशिश करते थे। भूषण को महाराज शिवाजी ने एक कवित्त के पुरस्कार-स्वरूप बीस हज़ार रुपये और पच्चीस हाथी दिये थे और अगर किंवदंतियों पर विश्वास किया जाये तो एक ही कवित्त के पुरस्कार-स्वरूप इसी देशभक्त राजा ने इस भाग्यशाली कवि को अठारह लाख रुपये दिये। वह इस कवित्त को सुनकर इतना खुश हुआ कि भूषण से उसे बार-बार पढ़ने की फ़रमाइश की। भूषण ने इसे अठारह बार पढ़ा मगर आखिरकार उन्नीसवीं बार उनके धीरज ने जवाब दे दिया। शिवाजी ने अठारह बार पढ़ने के लिए अठारह लाख रुपये दिये और अफ़सोस किया कि कवि ने इससे ज़्यादा धीरज

से काम क्यों न लिया। पन्ना के महाराज छत्रसाल इन भूषण को कुछ इनाम देने के बाद उनकी पालकी को अपने कंधे पर उठाकर कई क़दम ले गये। इन क़द्रदानियों के मुक़ाबले में बिहारी को जो इनाम मिला वह इतना उत्साहवर्धक नहीं कहा जा सकता। ये मिसालें उस वक़्त ताज़ा थीं। बिहारी ने उनके चर्चे सुने थे। वह जयपुर से भग्न-हृदय लौटे। शायद यही कारण हो कि सतसई में सवाई जयसिंह की स्तुति में एक दोहा भी नहीं है। एक दोहा सिर्फ़ उनके शीशमहल की प्रशंसा में है। बल्कि दो दोहों में उन्होंने इशारे से जयसिंह की नाक़द्री की शिकायत भी की है हालांकि पाक निगाहें उनमें तारीफ़ ही देखती हैं। इस इनाम की बात अगर छोड़ भी दें तो बिहारी की वह आव-भगत जयपुर में नहीं हुई जिसकी इतने क़द्रदाँ दरबार में उन्होंने उम्मीद की थी। भूषण ने राजा छत्रसाल के भक्तिपूर्ण कवि-सत्कार को शिवाजी की उदारता से श्रेष्ठतर समझा था। कवि के मन में केवल धन-संपदा की हवस नहीं होती, उसमें प्रशंसा पाने की इच्छा भी होती है। यदि काव्यमर्मज्ञ की प्रशंसा के साथ उसका थोड़ा-सा व्यावहारिक सत्कार भी हो जाये तो वह प्रसन्न हो जाता है। मगर प्रशंसा के बिना क़ारूँ का ख़ज़ाना भी उसे खुश नहीं कर सकता। राजा छत्रसाल अभी जीवित थे। बिहारी जयपुर से निराश होकर इसी आदमियों के पारखी राजा के दरबार में पहुँचे और सतसई उनकी सेवा में उपस्थित करके योग्य प्रशंसा चाही। छत्रसाल खुद भी अच्छे कवि थे। दिल में उमंग थी। उनका दरबार सिद्धहस्त कवियों का केन्द्र बना हुआ था। इन कवियों ने सतसई को ग़ौर से देखा, परखा, तोला और बिहारी की कला के प्रशंसक हो गये। हालांकि इसी दरबार में एक कवि ने द्वेषवश बिहारी को बुरा-भला भी कहा मगर उसकी कुछ नहीं चली। राजा साहब ने बिहारी को पाँच गाँव की जागीर दी। इस दरबार के स्वागत-सत्कार से बिहारी बहुत प्रसन्न हुए मगर वे तो यहाँ अपने काव्य की प्रशंसा पाने के उद्देश्य से आये थे, जागीर पाने के लिए नहीं। जागीर धन्यवाद के साथ लौटा दी। महाराज जयसिंह को भी इस घटना की खबर मिली। उनके त्याग पर वह बहुत प्रसन्न हुए, फिर उन्हें दरबार में बुलाया और पिछली भूलों के लिए माफ़ी चाहकर दो अच्छी आमदनी वाले मौज़े दिये। बिहारी ने उनको शुक्रिये के साथ कुबूल कर लिया। वह अब तक उनके उत्तराधिकारियों के अधिकार में हैं।

बिहारी का अब बुढ़ापा आ गया था। साठ से ऊपर हो गये थे। ज़्यादा सैर व सफ़र की ताक़त न थी। मथुरा लौट आये। यहाँ इन दिनों जोधपुर के महाराज जसवंत सिंह भी आये हुए थे। उन्होंने बहुत दिनों से बिहारी की तारीफ़

सुन रक्खी थी। उनसे मिलने के इच्छुक थे। खुद भी काव्यमर्मज्ञ थे, कविता पर एक मार्के की किताब भी लिखी थी जो आज तक कवियों में प्रामाणिक समझी जाती है। बिहारी को उनसे भेंट करने की कम उत्कंठा न होगी। महाराज ने उनके काव्य की प्रशंसा की, कहा—थारी कविता में सूलो लग्यो यानी तुम्हारी कविता में कीड़े पड़ गये। बिहारी ने इस द्वयर्थक प्रशंसा को न समझा। घर चले आये, उदास थे। उनकी लड़की समझदार थी। उदासी का कारण पूछा। बिहारी ने राजा जसवंत सिंह की वह पहेली उससे बयान की। लड़की उसका मतलब समझ गई, बोली महाराज का आशय यह है कि आपकी कविता में जान पड़ गई है। बिहारी को भी यही व्याख्या उचित जान पड़ी। महाराज जसवंत सिंह से जब दूसरे दिन ज़िक्र आया तो वह बहुत खुश हुए और बोले, हाँ मेरा यही आशय था। बिहारी के बारे में इससे ज़्यादा और कुछ नहीं मालूम है, वह कब मरे कहाँ मरे। हाँ उनके एक बेटे थे जिनका नाम कृष्ण था। वह भी कवि हुए हैं।

बिहारी की कविता के कुछ नमूने ज़रूरी हैं हालांकि उर्दू लिबास पहन कर उनकी शक्ल बहुत कुछ बदल जाती है। ग़ालिब के दीवान की तरह बिहारी सतसई के अर्थों के संबंध में टीकाकारों में अक्सर मतभेद है। उनके दोहे बहुत जटिल, कठिन और पेचीदा होते हैं। वह मोती हैं जो डूबने से हाथ आते हैं।

मानहुँ विधि तन अच्छ छबि, स्वच्छ राखिबैं काज,
दृग पग पोंछन कों किए, भूषन पायंदाज।

यहाँ बिहारी ने नाज़ुक-ख़याली का कमाल दिखाया है,—यानी प्रकृति-रूपी कारीगर ने प्रेमिका के कोमल तन पर आभूषणों का पायंदाज़ बना दिया है ताकि निगाह के पाँव से उस पर गर्द न आ जाये। 'पाअंदाज़' उर्दू शब्द है, कवि ने उसका प्रयोग किया है। बिहारी अक्सर उर्दू, फारसी और अरबी शब्द लाते हैं और बड़ी खूबी से लाते हैं। मतलब यह है कि प्रेमिका का बदन इतना नाज़ुक और सुथरा है कि निगाहों से भी मैला हो जाता है, इसलिए ज़रूरी है कि ज़ेवरों पर पैर साफ़ करके निगाह उसके रूप के साफ़ फ़र्श पर क़दम रक्खे। रूप की क्या स्वच्छता है जो दृष्टि पड़ने से मैली पड़ जाती है। 'पाये निगाह' ग़ालिब ने भी इस्तेमाल किया है। ज़ेवर प्रेमिका के रूप को चमकाने के लिए नहीं बल्कि निगाहों के पैर की गर्द पोंछने के लिए। एक उर्दू शायर ने माशूक़ की नज़ाकत की इस रूप में कल्पना की है—

क्या नज़ाकत है कि आरिज़ उनके नीले पड़ गये
मैंने तो बोसा लिया था ख्वाब में तस्वीर का।

कपूरमणि को उर्दू में कहरुबा कहते हैं अर्थात् प्रेमिका के गले में मोतियों की

माला उसके शरीर के सोने-जैसे रंग में मिलकर कुछ पीलापन लिए हुए कहरुबा सी हो जाती है। उसकी सहेली को धोखा होता है और वह घास के तिनके से उस माला को छूती है क्योंकि कहरुबा में घास को खींचने का गुण होता है। वह सोचती है कि यह तो मोतियों की माला थी, कहरुबा क्योंकर हो गई। इस संदेह को दूर करने के लिए वह उसके खरियाई गुण की परीक्षा लेती है। अमीर लखनवी का एक शेर देखिये—

मुनकिरे यकरंगिये माशूक़ व आशिक़ थे जो लोग
देख लें क्या रंगे काहो कहरुबा मिलता नहीं

कहे जु बचन बियोगिनी बिरह विकल अकुलाइ।
किये न को अँसुवा-सहित, सुआ तिबोल सुनाइ॥

इस दोहे में कवि ने कल्पना की उड़ान को चोटी पर पहुँचा दिया है। उर्दू में शायद ही किसी शायर ने इस मज़मून को अदा किया हो। यानी प्रेमिका वियोग के दुख से बेचैन हो हो कर अकेले में अपने दर्दभरे दिल से जो बातें करती है उसे पिंजड़े में बैठा हुआ तोता सुन लेता है और उसे वही दर्दनाक शब्द दुहराते सुनकर लोगों की आँखों में आँसू भर आते हैं। माशूक़ ने पर्दा डालने की कितनी कोशिश की मगर आख़िर भेद खुल गया। इसमें कैसी सुकुमार कवि-कल्पना है और इस तोते के दुहराने में भी यह असर है कि सुननेवाले दिल को हाथों से थाम लेते हैं और रोने लगते हैं। इससे उसके दर्द का अंदाज़ा हो सकता है। फ़ारसी का एक मशहूर शेर है—

सब्ज़ खत्ते बखते सब्ज़ मरा कर्द असीर
दाम हमरंग ज़मीं बूद गिरफ़्तार शुदेम

सायब ने इस शेर के बदले अपना सारा दीवान देना चाहा था। बिहारी के इस दोहे में यही कोमल वास्तविकता और अपेक्षाकृत अधिक नर्मी है।

तच्यो आँच अब बिरह की, रह्यो प्रेम-रस भींजि।
नैननु के मगु जलु बहै, हियौ पसीजि पसीजि॥

इसी ख़याल को फ़ारसी शायर ने यूँ अदा किया है—

चे मी पुरसी ज़े हाले मा दिले ग़मदीदा अत चूँ शुद
दिलम शुद ख़ूँ व ख़ूँ शुद आब व आब अज़ चश्म बेरूँ शुद

इस दोहे और फ़ारसी शेर में इतना सादृश्य है कि उसे टक्कर कहना चाहिए, क्योंकि दोनों कवि ऊँचे दर्जे के हैं और चोरी का संदेह किसी पर नहीं हो सकता।

बैठि रही अति सघन बन, पैठि सदन तन माँह।
निरखि दुपहरी जेठ की, छाँहौ चाहति छाँह॥

॥ विविध प्रसंग ॥

मतलब यह है कि जेठ की जलती हुई दुपहरी से घबराकर छाँह भी छाँह ढूँढ़ती फिरती है। इसलिए वह जंगल में और मकानों के अंदर छिपती फिरती है।

ऋतुओं पर भी बिहारी ने लिखा है। हेमन्त यानी पूस का यों ज़िक्र करते हैं—

आवत जात न जानिये, तेजहिं तजि सियरान,
घरहिं जँवाई लौं घट्यो खरो पूस दिनमान।

यानी जिस तरह घर जमाई की इज़्ज़त ससुराल में कुछ नहीं होती, उसके आने-जाने का कोई खयाल करता मालूम नहीं होता कि वह कब आता है और कब जाता है, उसी तरह पूस में दिन के आने-जाने की कोई खबर नहीं होती।

बरसात का ज़िक्र यों करता है—

हठ न हठीली करि सकै यहि पावस ऋतु पाइ।
आन गाँठ घुटि जाति ज्यों मान गाँठ छुटि जाइ॥

यानी वर्षा ऋतु में रूठी हुई प्रेमिका भी हठ नहीं कर सकती। बरसात में रस्सी की गाँठ मज़बूत हो जाती है मगर हठ की गाँठ ढीली पड़ जाती है।

दूसरे बड़े कवियों की तरह बिहारी ने भी नेचर का और मानव प्रकृति का बहुत गहरा अध्ययन किया था। विशेष रूप से सौन्दर्य और प्रेम की भावनाओं का जैसा सच्चा और सम्यक् चित्र उन्होंने खींचा है वह किसी दूसरे हिन्दी कवि के बस के बाहर है। मगर इस बाग़ीचे में इतने काँटे हैं कि किसी कवि का दामन काँटा लगे बग़ैर नहीं रह सकता। जब ग़ालिब जैसा सावधान व्यक्ति भी इन काँटों में उलझने से न बचा तो दूसरों का क्या ज़िक्र।*

—ज़माना, अप्रैल १९१७

* इस लेख में हिन्दी नवरत्न, बिहारी-विहार और सतसई सिंगार से मदद ली गई है। यह आखिरी लेख स्वर्गीय ज्वाला प्रसाद मिश्र की पुस्तक की बड़ी मनोरंजक समालोचना है जो सन् १९१२ में कई महीने तक क्रमशः 'सरस्वती' में निकली थी। इसके लिए लेखक इन सब विद्वानों का ऋणी है।

पैके अब्र

'मेघदूत' कालिदास के खण्ड-काव्यों में एक विशेष स्थान रखता है। कालिदास ने प्रेम के भावों का खूब वर्णन किया है और यह कविता इस खूबी से सजायी गई है कि इसी बुनियाद पर कुछ आलोचकों का विचार है कि यह कवि के यौवन काल की कृति है। इन पंक्तियों के लेखक ने हज़रत शाकिर मेरठी के 'अक्सीरे सुख़न' की भूमिका में उर्दू ज़बान के हिन्दू शायरों से प्रार्थना की थी कि वे कालिदास की कविताओं को उर्दू का जामा पहिनायें और मुझे बहुत खुशी है कि मेरी यह प्रेरणा अरण्य-रोदन सिद्ध नहीं हुई। किसी के हाथों जस होता है किसी के बातों जस होता है। इन पंक्तियों के लेखक को बातों ही में जस मिल गया। हज़रत आशिक़ उर्दू के सिद्धहस्त कवि हैं और संस्कृत के कवियों के भी प्रशंसक हैं। उन्हें खुद ही यह चिन्ता होगी कि संस्कृत कविता की विशेषताओं से उर्दू दुनिया को परिचित करायें। मगर उन्होंने मेरी प्रेरणा को इसका आधार कहा है। इसके लिए मैं अपने को बधाई देता हूँ। वह प्रेरणा किसी अच्छी साइत में की गई थी क्योंकि 'पैके अब्र' ही तक उसका असर खत्म नहीं होता। मुंशी इक़बाल बहादुर वर्मा साहब सेहर ने 'शकुन्तला' को हज़रत नसीम लखनवी के तर्ज़ पर नज़्म किया है जो जल्दी ही छपनेवाली है। सच बात यह है कि असर मेरी इस तुच्छ बिनती में न था बल्कि यह उस राष्ट्रीयता की भावना का असर है जो हमको अपने पुरखों के कला-कौशल का आदर करना सिखलाती है।

कालिदास के नाम से उर्दू दुनिया अब अपरिचित नहीं। उसके काव्य-गुणों और पांडित्य से भी लोग थोड़ा-बहुत परिचित हो गये हैं। मतलब यह कि उसकी गिनती संसार के प्रथम श्रेणी के कवियों में है। 'मेघदूत' को कथा भी साधारणतः पाठक जानते हैं। अनुवादक ने अपने अनुवाद में विस्तार से उसका वर्णन किया है।

यह कालिदास की अत्यंत लोकप्रिय प्रेम की कविता है। एक विरही प्रेमी ने मेघ को अपना दूत बनाकर उसे प्रेम का संदेश दिया है। बरसात में जब बादलों के झुंड के झुड तेज़ी से दौड़ते हुए एक तरफ़ से दूसरी तरफ़ चले जाते हैं तो क्या यह खयाल नहीं पैदा होता कि यह कहाँ जा रहे हैं। इस प्रेमी ने मेघ क दूतो बनाने में एक बारीकी और सोची होगी। मिट्टी-पानी के दूत को

दरबान की कृपा की अपेक्षा है और दरबान बेरुखी करे तो फिर झूला डालने के सिवाय कोई तदबीर नहीं। मेघदूत को किसी मदद की ज़रूरत नहीं। वह ऊपर की दुनिया पर बैठा हुआ दूत का काम खूब कर सकता है। कालिदास को दृश्य-चित्रण में विशेष रुचि थी। इस संदेश में दृश्यों के साथ प्रेम की भावनाओं का बहुत रंगीन संयोग दिखाई देता है। गोया उसने हरे-भरे मैदानों में हिरन छड़ो दिये हैं। इस काव्य की असामान्य विशेषता का अंदाज़ा इस बात से हो सकता है कि यूरोप की अधिकांश भाषाओं में इसका अनुवाद हो गया है। हिन्दी भाषा में भी इसके कई पद्य और गद्य के अनुवाद मौजूद हैं। उर्दू में 'ज़माना' में कई साल हुए मुंशी उमाशंकर 'फ़ना' ने इसे संक्षेप में बयान किया था। इसे उर्दू शायरी का जामा पहली ही बार पहनाया गया। संस्कृत जैसी ललित और अर्थ-गंभीर भाषा का उर्दू में मतलब अदा करना बहुत मुश्किल है और यह दिक़्क़त और भी बढ़ जाती है जब काव्य में मूल का आनंद देने का प्रयत्न किया जाय। इस ख़याल को दृष्टि में रख कर अगर 'पैके अब्र' को देखें तो हज़रत आशिक़ की यह कोशिश यक़ीनन क़ाबिलेदाद नज़र आती है। अभी तक 'मेघदूत' का भूगोल बड़े-बड़े विद्वानों के लिए एक रहस्य बना हुआ है। कोई रामगिरि को नीलगिरि बताता है कोई चित्रकूट को। हज़रत आशिक़ ने इस मसले पर भी रोशनी डालने की कोशिश की है।

हज़रत आशिक़ ने अनुवाद में यह ढंग रक्खा है कि हर एक श्लोक का अनुवाद एक-एक बंद में हो जाये। बंद तीन-तीन शेरों के हैं। इस पद्धति में अक्सर उन्हें दिक़्क़तें पेश आई हैं और हमारे ख़याल में यह बहुत बेहतर होता कि काव्य के बंधन न लागू करके दृष्टि अर्थ की अभिव्यक्ति पर रक्खी जाती। इस बंधन के कारण कहीं तो एक पूरे श्लोक का आशय एक बंद में व्यक्त न हो सकने के कारण हज़रत आशिक़ को कुछ छोड़ देना पड़ा। इसके विपरीत कहीं-कहीं श्लोक का आशय दो ही शेरों में अदा हो जाने के कारण बंद पूरा करने के लिए अपनी तरफ़ से एक शेर और ज़्यादा करना पड़ा। 'सरस्वती' के योग्य संपादक पं० महावीर प्रसाद द्विवेदी ने इस पुस्तक की समीक्षा करते हुए अनुवाद के दोष बतलाये हैं और ये दोष अधिकतर इसी अपने पर लागू किये गये बंधन के कारण पैदा हो गये हैं।

'मेघदूत' शुरू से आख़ीर तक प्रेम की कविता है, एक विरही प्रेमी की मर्म-वेदना की कहानी है, मगर इतिहास की दृष्टि से भी इसका महत्व कुछ कम नहीं। ध्यानपूर्वक इसका अध्ययन करने से हिन्दुस्तान के उस पुराने ज़माने के समाज पर रोशनी पड़ती है जिसके संबंध में इतिहास लुप्त हैं। किसी देश

भोग-विलास के सामान उन्नत सभ्यता का पता देते हैं। यह एक दुःखद वास्तविकता है कि ज्ञान-विज्ञान और बुद्धि के विकास के साथ-साथ भोग-विलास के उपकरणों में भी उन्नति होती जाती है।

तर्जुमे की खूबी को उजागर करने के लिए ज़रूरी है कि पाठकों के सामने उसके कुछ टुकड़े पेश किये जायँ।

चित्रकूट का ज़िक्र करते हुए शायर कहता है :

इस जगह से आगे चलकर आयेगा फिर चित्रकूट
जो सर आँखों पर बिठायेगा वफ़ूरे शौक़ से।
जल रही हैं धूप की ताबिश से इसकी चोटियाँ
खूब बारिश कीजिए ता क़ल्ब में ठंडक पड़े।

नर्बदा नदी का ज़िक्र सुनिए :

राह में उज्जैन के पहले मिलेगी नर्बदा
ज़ीनत अफ़ज़ाये लबे साहिल बिन्ध्याचल पहाड़।
साफ़ रंगत धार पतली जैसे हंसों की क़तार
इक नज़र से देखते ही आप उसे जायेंगे ताड़।
महवशों की माँग के मानिन्द पतली धार है
आपकी सोज़े जुदाई ने किया है हालेज़ार।

शिप्रा नदी का ज़िक्र यूँ किया है :

मस्त होकर बोलती हैं सारसें हंगामे सुब्ह
क़ाबिले नज़्ज़ारा है दरियाये सिप्रा की बहार।
मस्त-कुन बूए कमल फैली हुई है चार सू
इत्र-आगीं फिरती है बादे नसीमे खुशगवार।

गंभीरा नदी का ज़िक्र सुनिए :

ज़ेबे तन पोशाक नीली रंगते आबे रवाँ
बेद की शाखें लबे साहिल हैं या बेबाक हाथ।।
आपकी सोज़े जुदाई से बरहना हो गई
हट गया है छोड़ कर उसका लबे साहिल भी साथ।
कीजिए सैराब उसे करके निगाहे इल्तिफ़ात
चाहनेवाले से इतनी बेरुखी ऐ मेघनाथ।

प्रेमी अपनी प्रेमिका की विरह-वेदना का चित्र यों खींचता है :

दिन कटे कितने जुदाई के यह करने को शुमार
रोज़मर्रा ताक़चों में फूल रखती होगी या

और कितने दिन रहे बाक़ी विसाले यार में
उँगलियों पर गिन रही होगी बसद आहो बुका।
रोती होगी लज़्ज़ते अहदे गुज़िश्ता करके याद
शामे फ़ुरक़त में यही है औरतों का मशग़ला।

घास के बिस्तर पे होगी एक करवट से पड़ी
सदमये सोज़े जुदाई से बसद् हाले ख़राब।
या हुजूमे यास से होगा रुख़े रौशन उदास
आख़िरी तारीख़ का बेनूर जैसे माहताब।

प्रेमिका का नख-शिख कितना सुन्दर है :

मिलती है तेरी नज़ाकत मालकँगिनी में अगर
चाँद में मिलती है तेरे रूये रौशन की चमक।
चश्मे आहू में अगर मिलती हैं तेरी चितवनें
मौजे बहरे आब में है तेरे अबरू की लचक।
मिलती है ज़ुल्फे मुअम्बर गर परे ताऊस में
एक जा मिलती नहीं तेरे सरापा की झलक।

इन उद्धरणों से पाठकों को अनुवाद की खूबी का कुछ अंदाज़ा हो गया होगा। उपमा में कालिदास बेजोड़ है। कुछ उपमायें देखिए :

जिस तरह बदली में पज़मुर्दा कमल के फूल हों,
सदमये फ़ुरक़त से पज़मुर्दा है मेरी जाने जाँ।
नन्हीं-नन्हीं बूँदें क्या दिलचस्प आती हैं नज़र,
जिस तरह तागे में हो गूंधा हुआ दुर्रे खुश आब।
जुम्बिशे अबरूये पुरख़म शक्ल रक़्से शाख़े गुल,
बेले के फूलों पे भौंरों की क़तारें हैं पलक।

इतना काफ़ी है। पूरा मज़ा उठाने के लिए पाठकों को पूरी किताब पढ़नी चाहिए। क़ीमत ज़्यादा नहीं। सिर्फ़ छः आने है। काग़ज़-किताबत-छपाई अत्यंत मोहक। छः सुन्दर तस्वीरें हैं जिससे किताब की शोभा और बढ़ गई है। पृष्ठ संख्या चालीस। उर्दू में यह एक नई चीज़ है। इसकी क़द्र करना हमारा फ़र्ज़ है। हज़रत आशिक़ घर के कोई लखपती नहीं हैं। उन्होंने इस किताब को छापने में बहुत ज़्यादा ज़ेरबारी उठाई है मगर अभी तक पब्लिक ने जो क़द्रदानी की है वह बहुत हौसला तोड़नेवाली है। यही रुकावटें हैं जिनसे इल्मी ख़िदमत करने वालों के हौसले पस्त हो जाते हैं। दाद दीजिए मगर उनकी मेहनत का सिला सिर्फ़ ज़बान तक सीमित न रखिए, कोई हर्ज न समझिये तो भगवान के नाम

पर उसे पूँजी के नुक़सान से तो बचाइये ताकि उसे दुबारा आपकी ख़िदमत करने का हौसला हो। उर्दू अख़बारों ने भी इस किताब की तरफ़ ध्यान नहीं दिया है। अक्सर लोगों ने तो इस पर क़लम भी नहीं उठाया और जिन महाशयों ने कुछ ध्यान दिया भी तो वह बहुत सरसरी। ख़ास तौर पर मुस्लिम अख़बारों ने तो ख़बर ही नहीं ली। हमारे उर्दू ज़बान पर मरनेवाले वतनी भाई हिन्दुओं पर उर्दू की तरफ़ से बेरुख़ी की शिकायत किया करते हैं। वह कभी-कभी उर्दू ज़बान में भाषा या संस्कृत के ख़यालात के न होने पर अफ़सोस करते देखे जाते हैं मगर जब कोई हिन्दू मनचला लिखनेवाला उनकी इन प्रेरणाओं से उमंग में आकर कोई किताब प्रकाशित कर देता है तो उनकी तरफ़ ऐसी उदासीनता और बेरुख़ी बरती जाती है कि फिर उसे कभी क़लम उठाने का साहस नहीं होता। मुस्लिम भाइयों को शायद यह मालूम नहीं है कि उर्दू लिखनेवाले हिन्दू लेखक की स्थिति बहुत स्पृहणीय नहीं है। कोई उसे अपनी हिन्दी भाषा की बुराई चाहनेवाला समझता है, कोई उसे अपनी उर्दू ज़बान के हरमसरा में अनधिकार प्रवेश का दोषी। ऐसी नागवार हालतों में रह कर साहित्य-सेवा करनेवाले की अगर इतनी भी क़द्र न हो कि वह आर्थिक हानि से बचा रहे तो इसके सिवाय और क्या कहा जा सकता है कि लिटरेचर के विस्तार और विकास को लेकर यह सब शोर-गुल बेकार है। यह ज़ाहिर है कि संस्कृत से एक संस्कृत जाननेवाला हिन्दू जितनी ख़ूबी से अनुवाद कर सकता है, ग़ैर संस्कृत-दाँ मुसलमान महज़ अंग्रेज़ी तर्जुमों के आधार पर हरगिज़ नहीं कर सकता। और मुसलमानों में संस्कृत जाननेवाले हैं ही कितने। यह एक और दलील है जिसकी क़ीमत उर्दू लिटरेचर के चाहनेवालों की निगाह में ख़ासतौर पर होनी चाहिए। हाँ, अगर यह ख़याल है कि उर्दू ज़बान को संस्कृत से अलग-थलग रहना चाहिए और इस अलगाव से उनका कोई नुक़सान नहीं, तो मजबूरी है।

—ज़माना, अप्रैल १९१७

केशव

काव्य-मर्मज्ञों ने केशव को हिन्दी का तीसरा कवि माना है लेकिन केशव में वह उड़ान नहीं जो बिहारी की अपनी विशेषता है। तुलसी, सूर, बिहारी, भूषण आदि कवियों ने विशेष शैलियों में अपनो सर्वोत्तम योग्यता लगाई। तुलसी भक्ति की तरफ़ झुके, सूरदास प्रेम की तरफ़, बिहारी ने प्रेम के रहस्यों में ग़ोता लगाया और भूषण बहादुरी के मैदान में झुके लेकिन केशव ने विशेष रूप से अपना कोई ढंग नहीं अख़्तियार किया। वह सौन्दर्य और अध्यात्म और भक्ति, सभी रंगों की तरफ़ लपके और यही कारण है कि किसी रंग में चोटी पर न पहुँच सके। केशव में काव्य-कौशल कम न था और संभव है कि किसी एक रंग के पाबन्द रह कर वह दूसरे तुलसीदास बन सकते। लेकिन ऐसा मालूम होता है कि वह आख़िरी दम तक अपने को समझ न सके, अपने स्वभाव की थाह न पा सके और यह दृष्टि-दोष कुछ उन्हीं तक सीमित नहीं है। हमारे लेखकों और कलाकारों का बहुत बड़ा हिस्सा इस अज्ञान का शिकार पाया जाता है। अपने स्वाभाविक रंग को पहचानना आसान काम नहीं है। तो भी कविता के रंग की दृष्टि से केशव की रुचि सौन्दर्य और प्रेम की ओर ज़्यादा झुकी हुई दिखाई देती है। एक मौक़े पर अपने बुढ़ापे का रोना रोते हुए वह कहते हैं कि अब सुन्दरियाँ उन्हें प्रेम की आँखों से नहीं बल्कि आदर की दृष्टि से देखती हैं और उन्हें बाबा कह कर पुकारती हैं। मज़े की बात यह है कि उनकी ख्याति प्रेम-विषयक काव्य पर नहीं बल्कि पद्य-बद्ध आख्यायिका लिखने पर आधारित है। 'रामचन्द्रिका' जो उनकी सबसे ज़्यादा जानी-मानी कृति है शायद हिन्दी भाषा में तुलसीदास की रामायण के बाद सबसे अधिक लोकप्रिय पुस्तक है।

केशव तुलसीदास के समकालीन थे। उनका जन्म संवत् प्रामाणिक रूप से पता नहीं लेकिन अनुमान से सन् १५५२ के लगभग ठहरता है और मृत्यु संभवतः सन् १६१२ की है। सूरदास के देहान्त के समय केशव की अवस्था बारह साल थी। तुलसीदास का देहान्त सन् १६२५ में हुआ। इस हिसाब से केशव की मृत्यु बारह-तेरह साल पहले हुई। उनकी जन्मभूमि ओरछा थी जो अब भी बुन्देल-खंड की एक प्रसिद्ध रियासत है और उस ज़माने में तो सारा बुन्देलखंड ओरछा के अधीन था। अकबरी दरबार में ओरछा के राजा की ख़ास इज़्ज़त थी। यह

अकबर का काल था और ओरछा में राजा रामसिंह गद्दी पर थे। रामसिंह अकबर के दरबार में पहली क़तार में जगह पाते थे और ज़्यादातर आगरे में ही रहते थे। रियासत का प्रबन्ध इन्द्रजीत के योग्य हाथों में था। केशव इस राज्य के नमक खानेवालों में थे। उन्होंने अपनी कविता में जगह-जगह इन्द्रजीत की कृपा का गुणगान किया है। ओरछा बेतवा नदी के किनारे स्थित है। यह जमुना की एक सहयोगिनी नदी है जो हमीरपुर में जमुना से आकर मिल जाती है। अधिकतर पहाड़ी इलाकों से गुजरने के कारण इस नदी का पानी बहुत स्वच्छ और स्वास्थ्य-प्रद है और जहाँ कहीं वह घाटियों में होकर बही है वहाँ के दृश्य देखने योग्य हैं। केशव ने जगह जगह बेतवा नदी की प्रशंसा की है।

इन्द्रजीत एक रसिक स्वभाव का राजा था। उसके प्रेम की पात्रियों में रायप्रवीन नाम की एक वेश्या थी। उसके सौन्दर्य की दूर-दूर तक चर्चा थी। वह कविता भी करती थी। अकबर ने भी उसकी तारीफ़ सुनी। देखने का शौक़ पैदा हुआ। इन्द्रजीत को हुक्म हुआ कि उसे हाज़िर करो। इन्द्रजीत दुविधा में पड़ा। आदेश का उल्लंघन करने का साहस न होता था। उस वक्त रायप्रवीन ने दरबार में जाकर अपना एक कवित्त पढ़ा जिसका आशय यह है कि आप राज-नीति से परिचित हैं, मेरे लिए कोई ऐसी राह निकालिए कि आपकी आन भी बनी रहे और मेरे सतीत्व में भी धब्बा न लगे—

जामे रहे प्रभु की प्रभुता अरु
मोर पतिव्रत भंग न होई।

इस कवित्त ने इन्द्रजीत की हिम्मत मज़बूत कर दी। उसने रायप्रवीन को शाही दरबार में न भेजा। अकबर इस पर इतना क्रुद्ध हुआ कि उसने इन्द्रजीत पर आज्ञा का उल्लंघन करने के अभियोग में एक करोड़ रुपया जुर्माना किया। मालूम नहीं यह किंवदंती कहाँ तक ठीक है। अकबर की कुल आमदनी उस वक़्त बीस करोड़ सालाना से ज़्यादा न थी। एक करोड़ की रक़म एक ऐसे जुर्म के लिए कल्पनातीत सज़ा कही जा सकती है। बहरहाल जुर्माना हुआ और इन्द्रजीत को किसी ऐसे वाणी-कुशल आदमी की ज़रूरत हुई जो अकबर से यह जुर्माना माफ़ करवा दे।

इस काम के लिए केशव को चुना गया और वह आगरा पहुँचे। यहाँ राजा बीरबल अकबर के ख़ास दरबारियों में थे जो उसके मिज़ाज को समझते थे। ख़ुद भी सिद्धहस्त कवि थे और कवियों का सम्मान भी करते थे। केशव ने उनका दामन पकड़ा और उनकी स्तुति में एक कवित्त पढ़ा। बीरबल इससे इतना प्रसन्न हुए कि अकबर से सिफ़ारिश करके वह जुर्माना ही नहीं

माफ़ करा दिया बल्कि छः लाख की हुन्डियाँ जो उनके जेब में थीं निकाल कर केशव को दे दीं। अगर यह किंवदंती सच है तो यह उस युग के उदार साहित्य-प्रेम का एक अनोखा उदाहरण है। कैसे दानी लोग थे जो एक-एक कवित्त पर लाखों लुटा देते थे। हम यह नहीं कहते कि यह दान उचित था या ऐसी बड़ी-बड़ी रक़में ज़्यादा अच्छे कामों में ख़र्च न की जा सकती थीं। लेकिन इससे कौन इन्कार कर सकता है कि वह बड़े जिगरे के लोग थे। अपव्यय के लिए बदनाम होना चाहते थे लेकिन कंजूसी की बदनामी गवारा न थी। केशव यहाँ से सफल लौटे तो ओरछा में उनका खूब स्वागत-सत्कार हुआ और वह राजदरबारियों में गिने जाने लगे। उधर रायप्रवीन ने भी अकबर के पास एक दोहा लिखकर भेजा जिससे उसकी गहरी सूझ-बूझ का प्रमाण मिलता है—

बिनती रायप्रवीन की सुनिए साह सुजान
जूठी पातर भखत हैं बारी बायस स्वान

यानी जूठी पत्तल बारी कुत्ते वग़ैरह खाते हैं। मेरी यह अर्ज़ कुबूल हो....इस दोहे का जो असर अकबर पर हुआ होगा उसका अनुमान किया जा सकता है। उसने फिर रायप्रवीन का नाम नहीं लिया।

केशव दास ने अपनी स्मृति-स्वरूप चार पुस्तकें छोड़ी हैं। इनमें दो को तो ज़माने ने भुला दिया लेकिन दो अब भी जानी जाती हैं—कविप्रिया और राम-चन्द्रिका। कविप्रिया में कवि ने अपनी ज़िन्दगी के हालात और अपने उदार काव्य-मर्मज्ञ राजा के संबंध में लिखा है। इसके अलावा इसमें काव्य के अलंकारादि, काव्य की विभिन्न शैलियाँ, उसके गुण-दोष और प्राकृतिक दृश्यों पर भी अपनी लेखनी का चमत्कार दिखलाया है। कवि ने इस कृति पर अपनी सारी काव्य-शक्ति ख़र्च कर दी है और कई मौक़ों पर इसका बड़े गर्व के साथ उल्लेख किया है। स्पष्ट है कि ऐसी पुस्तक लोकप्रिय नहीं हो सकती, लेकिन कवियों के समाज में उसे आज तक विशेष सम्मान प्राप्त है। नये कवियों के लिए तो उसका अध्ययन आवश्यक समझा जाता है। सच तो यह है कि इस किताब ने केशव की गिनती उस्तादों में करा दी है। लेखक बहुत बार अपनी पुस्तक का स्थान उसमें लगे हुए अपने परिश्रम के अनुसार निश्चित करता है और चूँकि ऐसी पांडित्यपूर्ण पुस्तकों में कवि अधिकतर दूसरे कवियों को ही संबोधित करता है इसलिए उसे क़दम क़दम पर सँभलने की ज़रूरत होती है कि कहीं उसका उस्तादी का दावा उपहासास्पद न बन जाय। कवि बड़ी गंभीर और पैनी दृष्टि से उसके दावे की जाँच-पड़ताल करते हैं और उसके गुणों को चाहे एक बार आँख की ओट कर भी दें लेकिन दोषों को हरगिज़ नहीं छोड़ते। वह देखते हैं कि जिन सिद्धांतों की

यहाँ स्थापना की गई है उनका पालन भी हुआ है या नहीं। अगर कवि इस कसौटी पर ठीक न उतरा तो वह गर्दन मार देने के क़ाबिल करार दिया जाता है। सब दरबारों में रिश्वत चलती है लेकिन कवियों के दरबार में रिश्वत का गुज़र नहीं। यह अदालत कभी रहम करने की ग़लती नहीं करती। इस दरबार ने कविप्रिया को परखा और तोला और केशव दास को भाषा के कवियों की उस मंडली में तीसरी जगह दे दी जिसमें पहला स्थान सूर का और दूसरा तुलसी का है।

लेकिन जैसा हम कह चुके हैं 'कविप्रिया' की ख्याति विशेष लोगों तक ही सीमित है। साधारण लोगों में उन्हें जो लोकप्रियता प्राप्त है वह उनकी अमर-कृति 'रामचन्द्रिका' का प्रसाद है। इसमें रामचन्द्र जी की कथा लिखी गई है मगर केशव ने राम को अवतार मानकर और खुद उनका सच्चा भक्त बनकर अपने को बिलकुल बेज़बान नहीं कर दिया है। उन्होंने तुलसीदास के मुक़ाबले में ज़्यादा आज़ादी से काम लिया है और जहाँ कहीं रामचंद्र या किसी दूसरे कैरेक्टर में उन्हें कोई दोष दिखाई पड़ा है तो उन्होंने उसे गुण बना कर दिखाने की कोशिश नहीं की बल्कि स्पष्ट शब्दों में उस पर आपत्ति की है। तुलसीदास ने रावण के साथ अन्याय किया है और उसे एक मनस्वी, प्रतिष्ठित और स्वाभिमानी राजा के पद से गिराकर घृणा का पात्र बना दिया है, हालाँकि उसे इस तरह से अपमानित करने के बाद भी वह रावण का कोई ऐसा आचरण न दिखा सके जो इस घृणा की पुष्टि करता। रावण ने अगर कोई पाप किया तो यह कि उसने रामचंद्र को मनुष्येतर प्राणी समझकर उनके सामने सिर नहीं झुकाया। विभीषण रावण का छोटा भाई था। संभव है वह भगवान से डरने वाला और नेम-धरम का पक्का रहा हो, संभव है उसे रावण का राज्य-संचालन और उसका आचरण न भाता हो लेकिन यह इसके लिए काफ़ी कारण नहीं है कि वह अपने भाई के दुश्मन से जा मिले और घर का भेदी बनकर लंका ढाये। उसका यह कार्य राष्ट्रीय दृष्टि से अत्यंत घृणित है। तुलसीदास ने उसे आस्तीन के साँप के बदले भक्त बनाकर दिखाना चाहा है लेकिन बावजूद वह सब रंग चढ़ाने के जैसा कि एक कवि करता है, वह उसे सिर्फ़ बगुला भगत बनाने में सफल हुए हैं। हिन्दुस्तान के लिए जयचंद ने जो किया, राजपूताने के लिए समरसिंह ने जो किया, दारा के लिए सरहंगों ने जो किया वही विभीषण ने रावण के साथ किया। रामचन्द्र के हाथों ऐसे शैतान की वही दुर्गत होनी चाहिए थी जो सिकन्दर के हाथों सरहंगों की हुई थी लेकिन रामचंद्र ने उसे राजगद्दी और मुकुट देकर जैसे देशद्रोह और परिवार-हत्या को बढ़ावा दिया है। जिस कथा को सारी जाति धार्मिक विश्वास की दृष्टि से देखती हो उसमें ऐसे कमीने नीच आचरण को दंड न देना एक अत्यंत

खेदजनक दोष है। हिन्दुस्तान का इतिहास देशद्रोह और विश्वासघात से भरा हुआ है लेकिन क्या अजब है विभीषण को उचित दंड देना इन गुमराहियों में से कुछ को दूर कर सकता। आज अगर इंगलिस्तान की पार्लियामेन्ट का कोई मेम्बर न्याय और नैतिकता के आधार पर किसी ऐसी बात का समर्थन करता है जिसमें इंगलिस्तान को नुकसान पहुँचने का डर हो तो उस पर चारों तरफ़ से घृणा की बौछार पड़ने लगती है। यह देश-प्रेम का युग है, जब वैयक्तिक और पारिवारिक स्वार्थ को देश पर बलिदान कर दिया जाता है। आश्चर्य तो यह है कि संस्कृत कवियों ने भी विभीषण की कुछ खबर न ली और यह सेहरा केशवदास के लिए छोड़ दिया। केशव एक राजा के दरबारी थे, शाही दरबारों के अदब-क़ायदे से परिचित, देशप्रेम का महत्व समझने वाले अतः उन्होंने रामचन्द्र के बड़े बेटे लव की ज़बान से विभीषण को खूब खरी-खरी सुनाई है। जब रामचन्द्र अपना दल सजाकर लव के मुक़ाबले में चले तो विभीषण भी उनके साथ था। लव ने उसे देखकर खूब आड़े हाथों लिया—"अत्याचारी ! परिवार को कलंकित करने वाला ! अगर तुझे रावण का आचरण पसंद न था तो जिस समय रावण रामचन्द्र जी की पत्नी को हर लाया था उसी समय तू रावण को छोड़कर क्यों राम के पास नहीं चला आया ! तुझे धिक्कार है ! तू ज़हर क्यों नहीं पी लेता ! जा कर चुल्लू भर पानी में डूब क्यों नहीं मरता ! तुझे अब भी शरम नहीं आती कि तू हथियार बाँधकर लड़ने निकला है ! पापी, तुझे अपनी भावज को ब्याहते शर्म न आयी जिसे तूने कितनी ही बार माँ कह कर पुकारा होगा !"

संस्कृत में पद्य-बद्ध आख्यायिका लिखने की दो पद्धतियाँ हैं। एक में तो कवि की दृष्टि अपनी कथा पर रहती है, वह कथा को प्रधान समझता है और अलंकारों को गौण। दूसरे रंग में कवि की दृष्टि अलंकारों आदि पर रहती है, कथा को वह केवल अपने काव्य-कौशल और रचना-चातुर्य का एक साधन बना लेता है। पहली पद्धति वाल्मीकि और व्यास की है और दूसरी पद्धति कालिदास और भवभूति की। तुलसीदास ने पहली पद्धति अपनाई, केशव ने दूसरी पद्धति को पसंद किया और अपने काव्य चातुर्य की दृष्टि से उनका यह चुनाव शायद अच्छा रहा क्योंकि उनमें वह कविजनोचित कोमलता और वह गहरी संवेदनशीलता न थी जिसने तुलसीदास की कविता को सदाबहार फूल बना रक्खा है। इस कमी को पूरा करने के लिए काव्यशिल्प और अलंकार की आवश्यकता थी। यही कारण है कि केशवदास की कविता काफ़ी कठिन है लेकिन उसके कठिन होने का एक कारण यह और हो सकता है कि उस समय तक हिन्दी भाषा प्रौढ़ नहीं हुई थी। विद्वानों की मंडली में संस्कृत की चर्चा थी, बिलकुल उसी तरह

जैसे सौदा के ज़माने में फ़ारसी की। अतः तुलसीदास और केशव दोनों भाषा में कविता करते हुए झेंपते थे और इस डर से कि कहीं उनका भाषा-प्रेम संस्कृत का अल्प-ज्ञान न समझ लिया जाये वे समय-समय पर अपने पांडित्य का प्रदर्शन आवश्यक समझते थे। उन्हें अपने पांडित्य का प्रमाण देने के लिए दुरूह शब्द का प्रयोग उचित जान पड़ता था। तुलसीदास चूँकि वैरागी थे उन्हें किसी की प्रशंसा या निन्दा की परवाह न थी लेकिन केशव एक राजा के दरबारी थे। बड़े-बड़े पंडितों से हमेशा उनकी मुठभेड़ रहती थी इसलिए उनका दुरूह शब्दों का प्रेम स्वाभाविक था।

केशव धार्मिक मामलों में लकीर के फ़क़ीर न थे, अंधविश्वासों को मुक्ति का साधन न समझते थे। नदी में नहाने और मूर्ति-पूजा को वे मूर्खों की रस्म समझते थे। वह एकेश्वरवाद के अनुयायी थे और केवल एक परमात्मा की पूजा करने के लिए कहते थे। देवताओं को उन्होंने कृत्रिम और आडंबरपूर्ण कहा है। लेकिन इसके साथ ही जनसाधारण के लिए एकेश्वरवाद या चरित्र-शुद्धि या आत्मविवेक की आवश्यकता नहीं समझी। उनके लिए केवल परमात्मा के नाम का स्मरण काफ़ी बतलाया है। स्त्रियों के लिए पातिव्रत मुख्य धर्म बतलाया है जो प्राचीन हिन्दू समाज का एक विशेष अंग है और यद्यपि अब ज़माने ने सांस्कृतिक व्यवस्थाओं में एक उथल-पुथल मचा दी है और स्त्री का व्यक्तित्व अपने पति में खोया हुआ न रह कर अलग एक सत्ता बन चुका है, स्त्रियों के राष्ट्रीय-सांस्कृतिक अधिकार पेश हो रहे हैं, तो भी वह पुरानी व्यवस्था भी अपने अच्छे पहलुओं से खाली न थी और अभी जबकि नई व्यवस्था प्रयोग की दशा में है वह पुराना सिद्धान्त शताब्दियों तक प्रचलित रहा। उसमें अब भी कुछ ऐसे गुण हैं जिनसे बड़े से बड़ा, कट्टर से कट्टर सफ़रेजिस्ट भी इन्कार नहीं कर सकता। इसलिए हम इस मामले में केशव को दोषी नहीं समझते।

इसमें कोई संदेह नहीं कि केशवदास भाषा की पहली पंक्ति के बैठनेवालों में हैं लेकिन उनके स्वभाव में उन्मेष से अधिक साधना का रंग है। वह ग़ालिब या मीर न थे। वह नासिख़ और अमीर थे। उनकी कविता में आडंबर और खींचतान ज़्यादा है, कोमलता और संवेदनशीलता कम। तो भी उनकी कविता मिठास से ख़ाली नहीं है। कहीं-कहीं इस रंग में उन्होंने चमत्कार कर दिखाया है।

पद्य-बद्ध आख्यायिकायें लगभग सभी भाषाओं में एक ही छंद में लिखी जाती हैं। तुलसीकृत रामायण, सिकन्दरनामा, शाहनामा, मौलाना रूम की मसनवी, पैराडाइज़ लास्ट, इलियड आदि प्रसिद्ध आख्यायिकायें इसी ढंग की हैं। लेकिन केशवदास ने रामचन्द्रिका में सैकड़ों छंदों का प्रयोग किया है और कहीं-कहीं इस

तेज़ी से कि आख्यायिका के प्रवाह में फ़र्क़ नहीं आता। कुछ आलोचकों का विचार है कि यह विभिन्नता पुनरावृत्ति की निषेधक होने के कारण बहुत सुन्दर हो गयी है। लेकिन यह कुछ ज़्यादती है। दुनिया की बड़ी-बड़ी मसनवियाँ एक ही छंद में लिखी गई हैं। हाँ, कहीं-कहीं कवियों ने मज़ा बदलने के लिए भिन्न-भिन्न छंदों का प्रयोग किया है। तुलसीदास की रामायण इसकी अनूठी मिसाल है। शायद केशव ने एक ही छंद की मसनवी या पद्य-बद्ध आख्यायिका लिखकर इस रंग में तुलसी से टक्कर लेना अपने लिए अहितकर समझा। इससे विभिन्नता का आनंद नहीं आता, कथा के प्रवाह में अलबत्ता रुकावट होती है।

हमने विभीषण की ग़द्दारी का ज़िक्र ऊपर किया है। इसके मुक़ाबले में केशव ने अंगद की वफ़ादारी और सदाचारिता को खूब दिखाया है। अंगद बालि का बेटा था। बालि का रामचंद्र ने वध किया था और उसका राज-पाट बालि के भाई सुग्रीव को दिया था। इसलिए अंगद का अपने बाप के हत्यारे से द्वेष रखना एक स्वाभाविक बात थी। लेकिन जब वह रावण के दरबार में गया है और उसने राम के इस कृत्य का संकेत देकर अंगद को फोड़ना चाहा है तो अंगद ने रावण को खूब करारे जवाब दिये हैं। कवि ने उसकी सदाचारिता दिखलाने के उत्साह में पद के सम्मान की रक्षा का भी ध्यान नहीं रक्खा। अंगद के हृदय में द्वेष था और ज़रूर था। आख़िर में उसने उसको व्यक्त भी किया है लेकिन जिससे एक बार एकता का संबंध स्थापित कर लिया उससे दुश्मन के भड़कावे में आकर विमुख हो जाना मर्दानगी के खिलाफ़ था।

अब हम पाठकों के मनोरंजन के लिए केशवदास की कविता के नमूने पेश करते हैं—

सब जाति कटी दुख की दुपटी कपटी न रहै जहँ एक घटी
निघटी रुचि मीचु घटीहु घटी जग जीव जतीन को छूटि तटी

कवि ने पंचवटी का परिचय दिया है। कहता है यहाँ दुख और कष्ट की चादर तार-तार हो जाती है और दिल दग़ा व फ़रेब से मुक्त हो जाता है। उसके मोहक आकर्षणों से यतियों का ध्यान भी भंग हो जाता है।

कहि केशव याचक के अरि चंपक शोक अशोक किये हरि कै।
लखि केतक केतकि जाति गुलाब ते तीछण जानि तजे डरि कै॥
सुनि साधु तुम्हें हम बूझन आये रहे मन मौन कहा धरि कै।
सियु को कछु सोध कहौ करुणामय हे करुणा करुणा करि कै॥

रावण सीता को हर ले गया है और राम वियोग के उद्वेग में जंगल के पेड़ों से सीता का पता पूछते फिरते हैं। वह करुणा के वृक्ष को संबोधित करके कहते

हैं—चंपा भौंरे को अपने पास नहीं आने देती इसलिए उसमें दर्द नहीं है। अशोक ने शोक को भुला दिया है इसलिये उसमें भी दर्द नहीं। केवड़ा, केतकी और गुलाब कंटीले हैं और दिल के दर्द का हाल नहीं जानते इसलिए मैं तुम्हारे पास आया हूँ, कुछ सीता की ख़बर बताओ, ख़ामोश क्यों खड़े हो।

दीरघ दरीन बसैं केसोदास केसरी ज्यौं,
केसरी कौं देखि बन-करी ज्यौं कँपत हैं।
बासर की संपति उलूक ज्यौं न चितवत,
चकवा ज्यौं चंद चितै चौगुनो चँपत हैं।
केका सुनि व्याल ज्यौं बिलात जात घनश्याम,
घनन की घोरनि जवासो ज्यौं तपत हैं।
भौंर ज्यौं भँवत बन, जोगी ज्यौं जपत रैनि,
साकत ज्यौं राम नाम तेरोई जपत हैं।

हनुमान लंका मे सीता जी को देखने गये हैं और उन्हें अशोकवाटिका में देखकर उनसे रामचंद्र के वियोग की पीड़ा का यों वर्णन करते हैं—जैसे घने जंगल में शेर रहता है उसी तरह रामचंद्र रहते हैं यानी ज़मीन पर सोते-बैठते हैं। आराम की ज़रा भी इच्छा नहीं। जैसे उल्लू दिन की रोशनी के नेमतों की ओर आँख उठाकर नहीं देखता उसी तरह रामचंद्र किसी चीज़ की तरफ़ नहीं देखते। जैसे चकोर चाँद को देखकर अधीर हो जाता है उसी तरह चाँद को देखकर रामचंद्र के दिल की बेचैनी भी बढ़ जाती है। मोर की आवाज़ सुनकर जैसे साँप छिप जाता है उसी तरह रामचंद्र छिप जाते हैं। वर्षा से जैसे मदार का पेड़ जल जाता है उसी तरह रामचंद्र घुलते हैं। भौंरे की तरह इधर-उधर घूमा करते हैं, जोगी की तरह रात को जागते हैं और तेरे ही नाम की रट लगाते हैं।

दन्तावलि कुन्द समान गनो।
चंद्रानन कुन्तल चौंर घनो॥
भौहें धनु खंजन नैन मनो।
राजीवनि ज्यों पद पानि भनो॥
हारावलि नीरज हिय-पट में।
हैं लीन पयोधर अम्बर में॥
पाटीर जोन्हाइहि अंग धरे।
हंसी गति केशव चित्त हरे॥

कवि ने शरद ऋतु की एक कल्पना की है। इस ऋतु में कुन्द खिलता है। ये गोया उस सुन्दरी के दाँत हैं। चाँद उसका काँतिमान मुखड़ा है। इस ऋतु में

चाँद बहुत प्रकाशवाला होता है। राजा लोग इन्हीं दिनों पूजा करके दरबार को सजाते हैं। दरबार के चँवर इस सुन्दरी के बाल हैं। उनके कमान उसकी भौंहें हैं। खंजन पक्षी इसी ऋतु में आता है। वह इस सुन्दरी की आँख है। (कवियों ने आँख की उपमा खंजन से दी है।) इस मौसम में कमल खिलते हैं। वह इस सुन्दरी के पाँव हैं। स्वाति की बूँद से मोती बन जाता है, ऐसी कवि प्रसिद्धि है। यह गोया इस सुन्दरी के हार हैं। इस मौसम में बादल आसमान में मिल जाता है कि जैसे सुन्दरी ने अपना दमकता हुआ वक्ष कपड़े में छिपा लिया है। इन दिनों चाँदनी खूब निखरती है। यह गोया इस सुन्दरी के लिए चंदन का लेप है। इस ऋतु में हंस आते हैं। ये गोया इस सुन्दरी की मस्ताना चाल हैं। इन गुणों वाली सुन्दरी अर्थात् शरद ऋतु दिलों को बस में कर लेती है।

—ज़माना, जुलाई १९१७

पुराना ज़माना : नया ज़माना

पुराने ज़माने में सभ्यता का अर्थ आत्मा की सभ्यता और आचार की सभ्यता होता था। वर्तमान युग में सभ्यता का अर्थ है स्वार्थ और आडंबर। उसका नैतिक पक्ष छूट गया। उसकी सूरत बदल कर अब वह हो गई है जिसे हमारे पुराने लोग असभ्यता कहते। शारीरिक बनाव-सँवार और टीमटाम पुराने तर्ज़ की निगाहों में कभी अच्छी न समझी जाती थी। भोग-विलास के सामान इकट्ठा करना कभी पुरानी सभ्यता का लक्ष्य नहीं रहा। पुराने लोग सजावट और बनावट को घृणा की दृष्टि से देखते थे। उस समय सभ्य कहलाने के लिए यह ज़रूरी नहीं था कि आपका बैंक में इतना हिस्सा हो, आपके बाल एलबर्ट फ़ैशन के कटे हुए हों, आपकी दाढ़ी इटालियन या फ्रेन्च हो, आपका कोट शिकारी हो या टेनिस हो या कैम्ब्रिज हो या चीनी या जापानी हो, आपके जूते डर्बी या पम्प हों। आपकी शेरवानी या सलीमशाही जूते पर उनकी निगाह न जाती थी। वे उसे शान कहें, प्रदर्शन कहें, शेखी कहें लेकिन सभ्यता हर्गिज़ न कहते, सभ्यता के नाम को बट्टा न लगाते। सभ्यता से उनका अभिप्राय नैतिक, आध्यात्मिक, हार्दिक था। उस समय वह व्यक्ति सभ्य था जिसका आचार पवित्र हो, जो धैर्यवान हो, गंभीर हो, हँसमुख हो, विनयशील हो। बड़े-बड़े राजा-महाराजा संन्यासियों को देखकर आदरपूर्वक खड़े हो जाते थे। उनका सम्मान करते थे और केवल औपचारिक या प्रदर्शनपूर्ण सम्मान नहीं, हृदय से उनकी चारित्रिक शुद्धता और आध्यात्मिकता को सिर झुकाते थे, उनसे अपनी भेंट होने को ज़ीवन का एक बड़ा प्रसाद समझते थे। इसका असर उनके मन पर होना ज़रूरी था। सिद्धार्थ, अशोक, शिलादित्य, जनक की उपासना, वैराग्य, तपस्या इन्हीं सत्संगों का परिणाम थी। उन लोगों की आज़ादी को देखिये कि वे अपने सिद्धान्तों के सामने सिंहासन और मुकुट की परवाह न करते थे। और एक यह स्वार्थपरता का युग है कि राजा-महराजा पाँवों में ज़ंजीर होते हुए भी बादशाही के नाम पर मरते हैं। मिस्र, ईरान और यूरोप के पुराने इतिहासों में जनक और अशोक के उदाहरण मिलते हैं लेकिन आज अगर कोई अपना राज्य छोड़कर एकांतवास करने लगे तो लोग यह समझेंगे कि उसका दिमाग़ खराब हो गया है।

पुरानी सभ्यता सर्वजन-सुलभ, प्रजातांत्रिक थी। उसकी जो कसौटी धन

और ऐश्वर्य की आँखों में थी वही कसौटी साधारण और नीच लोगों की आँखों में भी थी। ग़रीबी और अमीरी के बीच उस समय कोई दीवार न थी। वह सभ्यता ग़रीबो को अपमानित न करती थी, उसको मुँह न चिढ़ाती थी, उसका मज़ाक़ न उड़ाती थी। ज्ञान और उपासना का, गंभीरता और सहिष्णुता का सम्मान राजा भी करता था और किसान भी करता था। उनके दार्शनिक विचार अलग-अलग हों लेकिन सभ्यता की कसौटी एक थी। पर आधुनिक सभ्यता ने विशेष और साधारण में, छोटे और बड़े में, धनवान और निर्धन में एक दीवार खड़ी कर दी है। किसी बिसाती की दूकान पर जाइये, किसी दवाफ़रोश या सौदागर की दूकान को देखिए और आपको मालूम हो जायेगा कि वर्तमान सभ्यता कितनी सीमित और सविशेष है। आपके साबुन, बिस्कुट, लवेन्डर की शीशियाँ, कुन्तल कौमुदी, दस्ताने, कमरबंद, टाई, कालर, बेग, ट्रंक और भगवान जाने विलास की और कौन कौन-सी सामग्रियाँ दूकानों में सजी नज़र आयेंगी, पेटेन्ट दवायें चुनी हुई हैं, लेकिन आपके कितने देशवासी उनसे लाभान्वित होते हैं? आपका आधुनिक शिक्षा से वंचित भाई आपको इस ठाट में देखता है और यह समझता है कि यह आदमी हममें से नहीं है, हम उनके नहीं हैं। फिर आप चाहे कितनी बुलंद आवाज़ से राष्ट्रीयता की हाँक लगायें वह आपकी ओर ध्यान नहीं देता। वह आपको पराया समझ लेता है। आपके सर्कस और थियेटर में वह सहज सौन्दर्य कहाँ है जो पुराने ज़माने के मेलों और तमाशों में होता था? आपके काव्य में वह आकर्षण कहाँ है जो पुराने ज़माने के भजनों में होता था जिन्हें सुनकर अमीर और ग़रीब, राजा और रंक सब के सब सिर धुनने लगते थे? आधुनिक प्रणाली ने जनसाधारण को अपनी परिधि से बाहर कर दिया है। उसने अपनी दीवार आडंबर पर खड़ी की है। भौतिकता और स्वार्थपरता उसकी आत्मा है। इसके बावजूद जनतांत्रिकता ही आधुनिक सभ्यता का सबसे प्रधान गुण कही जाती है।

वर्तमान सभ्यता का सबसे अच्छा पहलू राष्ट्रीयता की भावना का जन्म लेना है। उसे इस पर गर्व है और उचित गर्व है। लेकिन पुराने ज़माने में भी राष्ट्रीयता की भावना बिलकुल लुप्त न थी। यूनान और ईरान की लड़ाइयाँ, स्पेन और अरब की लड़ाइयाँ, हिन्द और अफ़गानिस्तान के झगड़े किसी न किसी हद तक राष्ट्रीयता के उदय और राष्ट्र-गौरव पर आधारित थे लेकिन आधुनिक सभ्यता ने इस भावना को एक संगठित, अनुशासित, एकताबद्ध और व्यवस्थित रूप दे दिया है। पुराने ज़माने में इसका बोध विशेष अवसरों पर होता था। किसी अपमान का बदला, किसी ताने की चुभन या केवल वीरता का प्रदर्शन और

विजयी बनने का उत्साह कुछ व्यक्तियों को एकता की डोर में बाँध देता था। एक उबाल था जो थोड़ी देरलि के ए दिल को हिला देता था, एक तूफ़ान था कि जो कुछ देर तक पानी की ठहरी हुई सतह में हलचल डाल देता था लेकिन उबाल के उतरते ही, तूफ़ान का ज़ोर खत्म होते ही अलग-अलग तत्व अपनी-अपनी स्वाभाविक स्थिति पर आ जाते थे और कुछ दिनों के बाद इन लड़ाइयों की याद भी खत्म हो जाती थी या ज़िन्दा रहती थी तो कवीश्वरों के कवित्तों में। बहुत बार धर्म के प्रचार के लिए ज़बान से खंजर की मदद ली जाती थी। पुरानी रवायतें आज तक नारए तकबीर व नकफ़ीर से गूँज रही हैं मगर वे अस्थायी, क्षणिक उद्गार होते थे। उन्होंने सल्तनतें तबाह कर दीं, राष्ट्रों को ग़ारत कर दिया, प्रलय के दृश्य खड़े कर दिये, संस्कृति के चिन्ह मिटा दिये मगर इससे इन्कार नहीं किया जा सकता कि वे वैयक्तिक और अस्थायी चीज़ें थीं। इसके विपरीत आधुनिक राष्ट्र एक स्थायी, टिकाऊ, सामूहिक और अनिवार्य भावना है। उसकी बुनियाद न व्यक्तिगत सत्ता पर है न धार्मिक प्रचार पर बल्कि निश्चित समुदायों की भलाई और सेवा, शांति और दृढ़ता पर। वह पारिवारिक, सांस्कृतिक या धार्मिक संबंधों से पृथक् है। वह वाह्यतः भौगोलिक सीमा पर आधारित है और आन्तरिक रूप से उद्देश्यों की एकता पर। वह शहद और दूध की नदी अपने क़ब्जे में रखना चाहती है और किसी दूसरे को उसका एक घूँट भी देना नहीं चाहती। वह खुद आराम से अपना पेट भरेगी चाहे दुनिया भूखों मरे, खुद हँसेगी चाहे दुनिया खून के आँसू रोये। अगर उसे लाल कपड़े पहनने की धुन हो जाये और लाल रंग खून से निकलता हो तो उसे दूसरों का खून करने में भी झिझक न होगी। अगर इंसान के दिल का टुकड़ा उसके शरीर को ताक़त पहुँचानेवाला हो तो निश्चय ही हज़ारों आदमी उसके खंजर के नीचे तड़पते नज़र आयेंगे। उसे अपना अस्तित्व संसार में आवश्यक मालूम होता है। बाक़ी दुनिया मिट जाये, उसे इसकी परवाह नहीं। स्वार्थपरता उसका धर्म, उसकी पुस्तक, उसका रास्ता सब कुछ है। सारी मानवीय भावनायें, सारे नैतिक प्रश्न इस हवस के पुतले के आगे सिर झुका देते हैं। यह कल और मशीन का युग है और राष्ट्र इस युग को सबसे स्पष्ट अभिव्यक्ति है। यह देव-जैसी मशीन दिन रात पागलों जैसी तेज़ी मगर सिपाहियों जैसी पाबन्दी के साथ चलती रहती है। कोई इसके घेरे में आ जाय यह उसे देखते-देखते निगल जायेगी, उसे पीस डालेगी। वह किसी पर दया नहीं करती, किसी के साथ रिआयत नहीं करती। वह एक भीमकाय रोलर है जिसमें व्यापार और प्रभुत्व की दो लाल-लाल आँखें घूर-घूरकर बेख़बर लोगों को चेतावनी देती हैं कि खबरदार सामने न आना वर्ना

पलक झपकते भर में मारे जाओगे। इस आधुनिक राष्ट्र ने संसार में एक रक्ताक्त जीवन-संघर्ष छेड़ दिया है। जिन मानव समुदायों ने अभी तक राष्ट्र का रूप नहीं ग्रहण किया वे उसके अत्याचारों का क्षेत्र हैं। वह अफ्रीका में जाती है और वहाँ के जंगलों और घाटियों को काले रंग के काफ़िरों से पाक कर देती है। वह एशिया में आती है और सभ्यता व शिक्षा का नारा बुलंद करती है। उसके नेक इरादों में शक नहीं। वह किसी को गुलामी का तौक़ नहीं पहनाती, मर्दों और औरतों को गुलाम नहीं बनाती, शहरों को जलाकर खाक नहीं करती मगर एक विचित्र-सा संयोग है कि जो "अ-राष्ट्र" प्रदेश इस राष्ट्र के हाथों बंदी हुआ, उसका जीवन निराशा और अपमान की भेंट चढ़ जाता है।

प्राचीन युग को अंधकार युग कहा जाता है मगर उस अंधकार युग में सैनिक सेवा हर एक व्यक्ति की स्वेच्छा पर निर्भर थी। बादशाह किसी को ज़बर्दस्ती लड़ने पर मजबूर न कर सकता था। बहादुरी के मतवाले कर्तव्य या मित्रता या विशुद्ध लालच की पुकार सुनकर खड्ग-हस्त हो जाते थे लेकिन इस प्रकाशवान युग ने हर व्यक्ति को हत्या के लिए तत्पर बना दिया है। नारा व्यक्ति-स्वाधीनता का बुलंद किया जाता है लेकिन सच तो यह है कि राष्ट्र ने व्यक्ति को मिटा दिया, व्यक्ति का अस्तित्व राष्ट्र या स्टेट में समाहित हो गया है। हम अब रियासत के गुलाम हैं। उसको अधिकार है चाहे हमको क़त्ल व खून पर मजबूर करे चाहे झगड़े-फ़साद पर। लंका में विभीषण ने अपने भाई रावण के खिलाफ़ रामचन्द्र की मदद की थी मगर विभीषण पूरी आज़ादी के साथ लंका में रहता था। रावण को कभी इतना साहस न हुआ कि वह विभीषण का एक बाल भी बाँका कर सके। आज लड़ाई के ज़माने में इस तरह का राजद्रोह कोर्टमार्शल का कारण बन जाता। विदुर कौरवों से वज़ीफ़ा पाता था लेकिन एलानिया पांडवों का साथ देता था। तो भी कौरवों ने, यद्यपि वे कर्तव्य भावना से रहित कहे जाते हैं, इस निर्भीक स्पष्टता के लिए विदुर को मार डालने के योग्य नहीं समझा। मगर आप कुछ भी कहें वह अँधेरा युग था, गुलामी और बदहाली से घायल और दुखी। और यह ज़माना जब दुश्मन की खूबियों को स्वीकार करना भी कुफ्र है, जब राष्ट्रीय धर्म से जौ भर भी इधर-उधर होना अक्षम्य पाप है, प्रकाशवान, रौशन! अगर रोशनी का मतलब बिजली या गैस की रोशनी है। लेकिन अगर रोशनी का मतलब आत्मिक स्वतंत्रता, बौद्धिक और सामाजिक शांति है तो वह अँधेरा युग इस रौशन ज़माने से कहीं अधिक प्रकाशवान था। "राष्ट्र" की शक्ति और प्रभुत्व पर ये सब पतिंगे न्योछावर हैं! और क्या यह व्यापार और कल-कारखानों की उन्नति, तरह-तरह के यन्त्रों का आविष्कार, जिस पर नये युग को इतना गर्व है, विशुद्ध

सौभाग्य है जब कि सिगरेट कौड़ियों के मोल बिकता है, बटन और टीन के खिलौने मारे-मारे फिरते हैं मगर दूध और घी, मकई और ज्वार का स्थायी अकाल पड़ा हुआ है, जबकि देहात उजड़ते जाते हैं और शहरों की आबादियाँ बढ़ती जाती हैं, जबकि प्रकृति की दी हुई सम्पदा को लात मार कर लोग बनावटी नुमायशी ढकोसलों पर जान दे रहे हैं, जब कि आदम के बेशुमार बेटे बदबूदार और अँधेरी कोठरियों में जिन्दगी बसर करने के लिए मजबूर हैं, जबकि लोग अपनी बिरादरी और पड़ोसियों की सीख न मानकर वासना के शिकार होते जाते हैं, जब कि बड़े-बड़े व्यावसायिक नगरों में सतीत्व आवारा और परीशान रोता फिरता है (लंदन में चालीस हज़ार से ज़्यादा वेश्याएँ हैं और कलकत्ते में सोलह हज़ार से ज़्यादा) जब कि आज़ाद मेहनत की रोटी खानेवाले इन्सान पूँजीपतियों के गुलाम होते जाते हैं, जब कि महज़ पैसेवाले व्यापारियों के नफ़े के लिए खूनी लड़ाइयों में कूदने से भी लोग बाज़ नहीं आते, जब कि विद्या और कला और आध्यात्मिकता भी नफ़े-नुकसान के भँवर में फँसी हुई है, जब कि कुशल राजनीतिज्ञों का पाखंड और छल-कपट हंगामा बर्पा किये हुए है और न्याय और सच्चाई का शोर सिर्फ़ जुल्म के मारे हुओं की कमज़ोर पुकार को दबाने के लिए मचाया जाता है, नयी सभ्यता का कोई दीवाना भी इन मुसीबतों और गुलामी के दौर को खालिस बरकत कहने की हिम्मत नहीं कर सकता। इसमें शक नहीं कि देश के नेता इसके दोषों से परिचित हो गये हैं और इसके सुधार की कोशिशें की जा रही हैं लेकिन उस ज़हर को जो समाज-व्यवस्था में घुल गया है, निकालने की कोशिश नहीं की जाती, सिर्फ़ उसके ऊपरी प्रभावों, ऊपरी विकृतियों को छिपाने और मिटाने में लोग लगे हुए हैं। कोढ़ी जिस्म को रंगीन कपड़ों से ढँका जा रहा है।

नये ज़माने ने मानवीय सद्गुणों का भी मनमाना विभाजन कर दिया है। पुराने ज़माने में भी श्रेणियों और हैसियतों का विभाजन था मगर नैतिक सिद्धान्तों में विशेष और साधारण, विजेता और विजित का कोई भेद न था। नम्रता और सहिष्णुता, शर्म और हया, सदाचार और मुरव्वत—इन गुणों का सब आदर करते थे चाहे वह मुग़ल हों या तुर्क, ब्राह्मण हों या शूद्र। लेकिन आज हालत कुछ और है। ये निर्बलों के गुण हैं। नम्रता को आज निर्बलता की स्वीकृति समझा जाता है। लाज-शर्म नामर्दों के गुण हैं। मीठा बोलना, सुन्दर आचरण और आँख का लिहाज़ इस नई टकसाल के फेंके हुए सिक्के हैं। दया और प्रार्थना, संयम और नर्मी को कायरता और पस्तहिम्मती समझा जाता है। अब डींग मारने और शेखी बघारने का ज़माना है। गुस्सा, नफ़रत, घमंड, ज़बान

का कड़ग्रापन—ये मर्दाना खूबियाँ हैं। अगर किसी से इन्कार करना है तो मुलायमियत से कहने की ज़रूरत नहीं, साफ़ और बेलाग कहिए। इसमें अक्खड़पन जितना ही ज़्यादा हो उतना ही अच्छा। नाक पर मक्खी न बैठने पाये, तलवार हमेशा म्यान के बाहर रहे, ज़रा कोई बात तबीयत के खिलाफ़ हो, बस, जामे से बाहर हो जाइये। गुस्सा एक मर्दाना जौहर है। उसे रोकना बुज़दिली की दलील है। आप को चाहे किसी खास बात में ज़रा भी दखल न हो मगर ज़बान से कहिए कि मैं इस फ़न का अरस्तू हूँ। मुरव्वत और इंसानियत और लिहाज़ को पास न फटकने दीजिए। ये ग़रीब और मजबूर लोगों के गुण हैं। आप अपने बर्ताव में दिलेराना साफ़गोई से काम लीजिए। आपको किसी की भावनाओं से कोई प्रयोजन नहीं, और शर्म का तो नाम लेना भी गुनाह है। यह हैं इस नये ज़माने की खूबियाँ।

हम यह नहीं कहते कि वह पुरानी बातें सब की सब तारीफ़ करने के क़ाबिल हैं मगर वह कितना ही बुरा क्यों न हो और कितने ही ताने उसे क्यों न दिये जायँ, वह इस नई स्वार्थपरता, घमंड और आडंबर से कई गुना अच्छा है। मज़ा यह है कि बचपन ही से इन नैसर्गिक गुणों को मिटाने की कोशिश की जाती है। यह मर्दाना गुण लड़कों को उनके दूध के साथ पिलाये जाते हैं। नये ज़माने का राग अलापने वाला कहेगा यह इकतरफ़ा तस्वीर है। देखिए आज राष्ट्रीय मेल-जोल ने मानव संबंधों को कितना दृढ़ बना दिया है। एक अंग्रेज़ व्यापारी के साथ चीन में कोई बेइन्साफ़ी होती है और सारे इंगलिस्तान में शोर मच जाता है। खून की क़ीमत और क़ानूनी जंग की दुहाई मचने लगती है। एक फ्रांसीसी अखबार का प्रवेश किसी राज्य में बंद कर दिया जाता है और फ्रांसीसी दुनिया में उथल-पुथल मच जाती है। यह हमदर्दी, यह एकता कभी पहले भी थी ? राजपूत मुसलमानों की मातहती में राजपूतों का खून करते थे, मुसलमान सिक्खों के कन्धे से कन्धा मिलाकर मुसलमानों का क़त्ल करते थे। निस्संदेह यह नये युग का एक अच्छा पहलू है। इसके ज़ोर पर हम दुनिया के हर कोने में चैन से रह सकते हैं, हर प्रदेश में व्यापार कर सकते हैं। मगर सच्चाई यह है कि यह एकता और सहमति इंसानियत की बनिस्बत राष्ट्रीय प्रभुत्व पर अधिक निर्भर है वर्ना क्या वजह है कि किसी दूर-दराज़ मुल्क में एक आदमी की तकलीफ़ या बेइज़्ज़ती क़ौम के दिल को हिला देती है मगर अपने ही पड़ोसी और अपने दोस्तों की भूख और ग़रीबी पर ज़रा भी दिल नहीं पसीजता ? क्या वजह है कि यूरोपियन पूँजीपति धन और ऐश्वर्य की शानदार नैया पर बैठा हुआ उन अनाथों की परवाह नहीं करता जो ग़रीबी और बदहाली के भँवर में पड़े हुए हैं ? यही कि स्वार्थपरता,

इंद्रिय-परायणता राष्ट्र की आत्मा है।

वह विशुद्ध सांसारिकता है, सुन्दर भावनाओं से रहित, जिसने दिलों को कठोर और संकीर्ण और भावना-शून्य बना दिया है। वह पैसोंवालों का एक जत्था है जो नैतिक, भावनात्मक, आत्मिक वस्तुओं को व्यावसायिक लाभ और हानि की दृष्टि से देखता है, जिसके निकट वही नेकी आचरण करने योग्य है जो दौलत के ढेर में कुछ वृद्धि करे, वही भाव अच्छे हैं जो अपना प्रभुत्व बढ़ायें। वह आत्मा को भी तराज़ू के पलड़ों पर तौलता है। उसे जनतंत्र कहना ग़लती है। बराबरी और भाईचारे को उसने पैरों तले इस तरह रौंदा है कि अब उसकी शक्ल भी पहचानी नहीं जाती। इंसान की क़ीमत उसके नज़दीक इतनी ही है कि वह एक रुपया कमाने का साधन है। वह क़साई की तरह इंसान के गोश्त और खाल का अंदाज़ा करके उसकी क़ीमत लगाता है। कहने का मतलब यह है कि पुराना ज़माना अमीरों और सुल्तानों का ज़माना था और नया ज़माना बनियों और व्यापारियों का ज़माना है। इसने दौलत के पहाड़ खड़े कर दिये, दौलत की तलाश में जल-थल को छानता हुआ आसमानों के छोर तक जा पहुँचा और अब सारी दुनिया उसका कार्यक्षेत्र है।

इस नये ज़माने में एक ऐसा रौशन पहलू भी है जो उन काले दाग़ों को किसी हद तक ढँक देता है और वह है 'बेज़बानों की ताक़त का ज़ाहिर होना।' हाल के योरोपीय महायुद्ध ने इस पहलू को और भी उजागर कर दिया है। स्वार्थपरता के तूफान ने बड़े-बड़े गरान्डील पेड़ों को ही नहीं सोये हुए और लुटे हुए हरे भरे मैदानों को भी जगा दिया है। अब एक फ़ाकाकश मज़दूर भी अपनी अहमियत समझने लगा है और धन-दौलत की ड्योढ़ी पर सिर झुकाना पसन्द नहीं करता। उसे अपने कर्तव्य चाहे न मालूम हों लेकिन अपने अधिकारों का पूरा ज्ञान है। वह जानता है कि इस सारे राष्ट्रीय वैभव और प्रभुत्व का कारण मैं हूँ। यह सारा राष्ट्रीय विकास और उन्नति मेरे ही हाथों का करिश्मा है। अब वह मूक संतोष और सिर झुकाकर सब कुछ स्वीकार कर लेने में विश्वास नहीं रखता।

यह उन चीज़ों की मंदी का युग है और वह भी उन्हें हाथ नहीं लगाता। वह भी आराम, निश्चिन्तता और खुशहाली की माँग करता है। वह भी अच्छे मकानों में रहना चाहता है, अच्छे खाने खाना चाहता है और मनोरंजन के लिए अवकाश की माँग करता है। और वह अपने दावों को ऐसे प्रभावशाली ढंग से प्रकट करने लगा है कि अधिकारी वर्ग उससे नख़रे नहीं कर सकता। वह पूँजी का दुश्मन है, व्यक्तिगत सम्पत्ति की जड़ खोदने वाला और व्यापारियों की जत्थेबन्दी

का हत्यारा। यह सच है कि वह भी अपने प्रभाव का क्षेत्र भौगोलिक सीमाओं के अन्दर रखना चाहता है मगर अपनी अमलदारी में बराबरी और सच्चाई का समर्थक है। वह अपने राष्ट्र को एक अकेली सत्ता बनाना चाहता है। हर व्यक्ति के लिए एक जैसा अवसर, एक जैसी सुविधाओं, एक जैसे उन्नति के साधनों की माँग करता है। सब की एकता उसका जेहाद का नारा है। वह ऊँच-नीच को मिटाकर सारी ज़मीन को समतल बनाने की कोशिश करता है। वह ऐसी राज्य-व्यवस्था स्थापित करना चाहता है जो धनोपार्जन के समस्त साधन अपने हाथ में रक्खे और हर व्यक्ति को उसकी मेहनत और योग्यता के अनुसार बराबर बाँटे। वह ज़मीन्दारों को एक गंदी और बेकार चीज़ समझता है और उनकी सम्पत्ति को उनके क़ब्जे से निकाल कर जनता के क़ब्जे में रखना चाहता है। संक्षेप मे, वह सारी सम्पत्तियों, कारखानों, रेलों, जहाजों पर एक विशेष व्यवस्था के द्वारा जनता के अधिकार की माँग करता है और कौन कह सकता है कि यह काम बेहद मुश्किल नहीं है। व्यक्तिगत अधिकार का विचार मनुष्य के स्वभाव का अंग हो गया है। यह उसकी सबसे सशक्त प्रेरक शक्ति है। इसी पर उसके ज़िन्दगी के सारे मनसूबे, सारे इरादे, सारी इच्छायें क़ायम हैं। "व्यक्ति" की सत्ता मिटाना दुष्कर है। पूँजी और सम्पत्ति से खूनी लड़ाइयाँ लड़नी पड़ेंगी (कुछ देशों में जारी हैं) और यद्यपि रंग-ढंग से मालूम होता है कि उसकी इस लड़ाई में हार हो गई लेकिन उसका असर ज़िन्दा है और बढ़ता जायेगा। पूँजी उसे अपने क़ाबू में रखने के लिए कुछ और रिआयतें करेगी, कुछ बल खायेगी, कुछ नाज़ उठायेगी, उससे लड़ाई करके अपनी हस्ती ख़तरे में न डालेगी।

जनता की यह हलचल और माँगें चाहे नाजुक कानों को कितनी ही नागवार मालूम हों लेकिन वह उस निस्तब्ध मौन की तुलना में कहीं अधिक जीवन-दायक हैं जो पुराने युग की अपनी विशेषता थी और जो अभी तक कुछ एशियाई देशों में चल रही है, जो आग में जल कर, तलवार की चोट खा कर भी उफ़ नहीं करती, सहना और तड़पना जिसकी विशेषता है। नये ज़माने के इस सबसे ताज़ा पहलू ने यूरोप और अमेरिका वग़ैरह देशों में शूद्रों का ख़ात्मा कर दिया है। अब वहाँ कोई ऐसा नहीं जिसके छूने से ब्राह्मणों का पवित्र अस्तित्व कलंकित हो जाये, कोई ऐसा नहीं जो क्षत्रियों के अत्याचार की फरियाद करे, जो वैश्यों के स्वर्ण-सिंहासन को ढोनेवाला बने।

मगर यह ख़याल करना कि जनतंत्र का यह नया पहलू अपनी भौगोलिक परिधि से बाहर निकल कर निर्बलों और अनाथों को हिमायत करेगा या पूँजीपति 'राष्ट्र' की बनिस्बत 'अ-राष्ट्रों' के साथ ज़्यादा इंसानियत और हमदर्दी का बर्ताव

करेगा, शायद ग़लत साबित हो। उसे राज-सिंहासन और स्वर्ण मुकुट से प्रेम नहीं लेकिन राजकीय अधिकार-भावना और राज्य-संचालन की वासना से वह भी मुक्त नहीं। बहुत संभव है कि 'अ-राष्ट्रों' पर इस जनतंत्र का अत्याचार पूँजीपतियों से कहीं अधिक घातक सिद्ध हो। जब कुछ थोड़े से पूँजीपतियों की स्वार्थ-परता दुनिया को उलट-पलट कर रख दे सकती है तो एक पूरे राष्ट्र की सम्मिलित स्वार्थपरता क्या कुछ न कर दिखायेगी। वह भी जत्थेबंदी की एक सूरत है, ज़्यादा ठोस। वह अपने देश के व्यक्तिगत प्रभुत्व को मिटाकर उसके बदले जनता के प्रभुत्व का झंडा लहरायेगी मगर यह स्पष्ट है कि उसका आधार भी स्वार्थपरता है और जब तक उसके पैरों से यह ज़ंजीर दूर न होगी वह इस इंसानी भाईचारे की मंजिल से एक जौ भी और क़रीब न होगी, जो संस्कृति का लक्ष्य है।

लेकिन नये ज़माने की इस खींचतान और आपसी होड़, अहंकार और भौतिकता के संसारव्यापी अंधकार में आशा की एक किरण दिखाई दे रही है। वह प्रेसीडेंट विल्सन की प्रस्तावित लीग़ आफ नेशन्स या राष्ट्र संघ है। हम अपनी अनाथ और बेबस आँखों से उस किरण की ओर खड़े ताक रहे हैं। हमारे पैरों की कमज़ोरी हमें उस तरफ़ बढ़ने नहीं देती। हमारा दिल उम्मीद से भरा हुआ है। यह किरण हमारी कठिन मंज़िल के किसी आश्रयस्थल का पता दे रही है या केवल मरीचिका है, आनेवाली घड़ियाँ जल्दी ही इसका फ़ैसला कर देंगी। लेकिन अगर वह मरीचिका ही हो तो क्या हमें शिकायत का कोई मौक़ा है? यह उन राष्ट्रों का संघ होगा जिन्होंने जनतंत्र का स्थान प्राप्त किया है, जहाँ बहुत से लोग मुट्ठी भर लोगों के हाथों लुटते नहीं, जहाँ ब्राह्मण और शूद्र का विचार या भेद नहीं है। हम अभी राष्ट्रीयता के लक्ष्य तक भी नहीं पहुँचे, जनतंत्र की तो बात ही करना व्यर्थ है। ऐसी हालत में अगर हम इस संघ में दाखिल किये जाने के क़ाबिल न समझे जाँय तो हमें ताज्जुब या शिकायत न करनी चाहिए। जब इंगलिस्तान को इस संघ में आने के लिए अपना घेरा बहुत फैलाना पड़ा यहाँ तक कि अब उसकी स्त्री जाति को भी राजनीतिक अधिकार मिल गये, जब आस्ट्रिया और जर्मनी जैसे देश जिनकी राजनीतिक स्थिति हमसे कहीं अच्छी है इस संघ में केवल इसलिए प्रवेश पाने के योग्य नहीं समझे जाते कि वहाँ अभी तक व्यक्तिगत प्रभाव सिद्धान्तों पर भारी पड़ता है और विशाल जनता थोड़े से लोगों के अधीन है तो हिन्दुस्तान किस मुँह से इस संघ में शरीक होने की माँग कर सकता है जहाँ जनता एक बेजान और बेहिस ढेर से ज़्यादा कुछ नहीं। इस बर्बादी का इल्ज़ाम हम गवर्नमेन्ट के सिर नहीं रख सकते। गवर्नमेन्ट की कार्य-प्रणाली अब तक हमेशा जबर्दस्तों की हिमायत करती आयी है। जनता को इस जड़ता की

स्थिति में रखने का सारा दोष शिक्षित और सम्पन्न लोगों पर है। हमारे स्वराज्य के नेताओं में वकील और ज़मीन्दार ही सबसे ज़्यादा हैं। हमारी कौंसिलों में भी यही दो समुदाय आगे-आगे दिखाई पड़ते हैं। मगर कितने शर्म और अफ़सोस की बात है कि उन दोनों में से एक भी जनता का हमदर्द नहीं। वे अपने ही स्वार्थ और प्रभुत्व की धुन में मस्त हैं। वह अधिकार और शासन की माँग करते हैं और धन और वैभव के इच्छुक हैं, जनता की भलाई के नहीं। कितने बड़े-बड़े ताल्लुक़ेदार, बड़े-बड़े ज़मीन्दार, पैसेवाले रईस लोग उन बेज़बान करोड़ों काश्तकारों के साथ हमदर्दी, इंसानियत और देशभाईपने का बर्ताव करते हैं जिन्हें संयोग या गवर्नमेन्ट की ग़लती या खुद जनता की बेज़बानी ने उनकी तक़दीर का मालिक बना दिया है। आप स्वराज्य की हाँक लगाइये, सेल्फ़ गवर्नमेण्ट की माँग कीजिए, कौंसिलों को विस्तार देने की माँग कीजिए, उपाधियों के लिए हाथ फैलाइये, जनता को इन चीज़ों से कोई मतलब नहीं है। वह आपकी माँगों में शरीक नहीं है बल्कि अगर कोई अलौकिक शक्ति उसे मुखर बना सके तो वह आज ज़ोरदार आवाज़ में, शंख बजाकर आपकी इन माँगों का विरोध करेगी। कोई कारण नहीं है कि वह दूसरे देश के हाकिमों के मुक़ाबले में आपकी हुकूमत को ज्यादा पसन्द करे। जो रैयत अपने अत्याचारी और लालची ज़मीन्दार के मुँह में दबी हुई है, जिन अधिकार-सम्पन्न लोगों के अत्याचार और बेगार से उसका हृदय छलनी हो रहा है उनको हाकिम के रूप में देखने की कोई इच्छा उसे नहीं हो सकती।

इसकी क्या ज़मानत है कि आपके पंजे में आकर उनकी हालत और भी बुरी न हो जायेगी? आपने अब तक इसका कोई सबूत नहीं दिया कि आप उनकी भलाई चाहनेवाले हैं। अगर कोई सबूत दिया है तो उनकी बुराई चाहने का, स्वार्थ का, लोभ का, कमीनेपन का। आप स्वराज्य की कल्पना का मज़ा ले ले कर खूब फूलें और बग़लें बजायें मगर अधिकारों के साथ-साथ कर्तव्यों का ध्यान रखना भी ज़रूरी है। जाहिल रईसों या ज़मीन्दारों से हमें शिकायत नहीं। उनकी आँखें उस वक्त खुलेंगी जब उनकी गर्दनें जनता के हाथों में होंगी और वह बेबस निगाहों से इधर-उधर ताक रहे होंगे। शिकायत हमें उन लोगों से है जो पढ़े-लिखे हैं और ज़मीन्दार हैं, वकील हैं और ज़मीन्दार हैं। वह अपने दिल से पूछें कि वह प्रजा के साथ अपना कर्तव्य पूरा कर रहे हैं? कभी-कभी अपने कृत्यों और कमियों के बारे में अपने दिल से पूछना जरूरी होता है। उनका दिल साफ कहेगा कि तुम इस तराजू पर तौले गये और ओछे निकले। ज़रा शहर के शान्तिपूर्ण कोने से निकलकर वहाँ जाइये जहाँ जनता की आबादी है,

जहाँ आपके नब्बे फ़ी सदी देशवासी बसते हैं। उस तड़प का आपके दिल पर एक निहायत रौशन असर पड़ेगा। आपकी आँखें खुल जायेंगी। अन्याय और अत्याचार के दृश्य आपका दिल हिला देंगे।

क्या यह शर्म की बात नहीं कि जिस देश में नब्बे फ़ी सदी आबादी किसानों की हो उस देश में कोई किसान सभा, कोई किसानों की भलाई का आंदोलन, कोई खेती का विद्यालय, किसानों की भलाई का कोई व्यवस्थित प्रयत्न न हो। आपने सैकड़ों मदरसे और कालेज बनवाये, यूनिवर्सिटियाँ खोलीं और अनेक आन्दोलन चलाये मगर किसके लिए ? सिर्फ़ अपने लिए, सिर्फ़ अपना प्रभुत्व बढ़ाने के लिए। और शायद अपने राष्ट्र की जो कसौटी आपके दिमाग़ में थी उसको देखते हुए आपका आचरण ज़रा भी आपत्तिजनक न था। मगर नये ज़माने ने एक नया पन्ना पलटा है। आनेवाला ज़माना अब किसानों और मज़दूरों का है। दुनिया की रफ्तार इसका साफ़ सबूत दे रही है। हिन्दुस्तान इस हवा से बेअसर नहीं रह सकता। हिमालय को चोटियाँ उसे इस हमले से नहीं बचा सकतीं। जल्द या देर से, शायद जल्द ही, हम जनता को केवल मुखर ही नहीं अपने अधिकारों की माँग करनेवाले के रूप में देखेंगे और तब वह आपकी क़िस्मतों की मालिक होगी। तब आपको अपनी बेइंसाफ़ियाँ याद आयेंगी और आप हाथ मल कर रह जायेंगे। जनता की इस ठहरी हुई हालत से धोखे में न आइये। इनक़लाब के पहले कौन जानता था कि रूस की पीड़ित जनता में इतनी ताक़त छिपी हुई है ? हार के पहले कौन जानता था कि जर्मनी का एकछत्र स्वैराचारी शासन जनता के ज्वालामुखी पर बैठा हुआ है। निकट भविष्य में हिन्दुस्तान के लाखों मज़दूर और कारीगर फ्रांस से वापस आयेंगे, लाखों सिपाही लड़ाई के बाद अपने-अपने घर लौटेंगे। क्या आप समझते हैं कि उन पर उन आज़ाद देशों की आबोहवा का कुछ भी असर न होगा ? अगर क़ौम में इन्सानियत और लाज-शरम नहीं है तो खुद अपनी भलाई का तक़ाज़ा है कि हम अभी से जनता के दिल को अपने बस में करने की कोशिश करें। इस बात में हमारे ताल्लुकेदार और ज़मीन्दार, चाहे वे अँधेरे अवध के हों या उजाले बंगाल के, सबसे ज़्यादा दोषी हैं। उचित है कि वे तात्कालिक हानि की चिन्ता न करके किसानों की भलाई और सुधार की कोशिश करें, स्वेच्छा से उन अधिकारों से हाथ खींच लें जो उन्हें किसानों पर प्राप्त हैं। उनसे बेगार लेना छोड़ दें, उनके साथ आदमियत का बर्ताव करें, इज़ाफ़ा और बेदखली से परहेज़ करें, ताकि जनता के दिलों में उनकी इज़्ज़त और उनके प्रति श्रद्धा हो। हमारे कौंसिलरों और राजनीतिक नेताओं का कर्तव्य है कि वे अपने प्रस्तावों की परिधि को फैलायें और

जनता (यानी काश्तकारों) की हिमायत का एक प्रोग्राम तैयार करें और उसे अपनी कार्य-प्रणाली बना लें। स्वराज्य की बेकार और बेमतलब सदाओं पर तकिया करके बैठने का वक़्त अब नहीं क्योंकि आनेवाला ज़माना अब जनता का है और वह लोग पछतायेंगे जो ज़माने के क़दम से क़दम मिलाकर न चलेंगे।

—ज़माना, फ़रवरी १६१६